स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

MAAH-107N/MAHY-111&112N

इतिहास दर्शन एवं इतिहास लेखन : सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियाँ

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

सन्देश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति श्रीमती आनंदीबेन पटेल जी की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षाा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावाा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। कोविड-19 संक्रमण काल ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जबकि कोविड-19 के संक्रमण काल में तथा कोविड-19 के बाद भी मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो रही है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश, परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ायाा गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकाायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, बेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी है। वर्तमान की विषम परिस्थितियों के दृष्टिगत विश्वविद्यालय ने मुख्यमंत्री तथा प्रधानमंत्री राहत कोष में अंशदान देने का भी प्रयास किया है।

भौतिक अधिसंरचना की दृष्टि से विश्वविद्यालय निजी स्रोतों से ही निरन्तर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा है। विश्वविद्यालय के शिक्षकों, परामर्शदाताओं, क्षेत्रीय समन्वयकगण, अध्ययन केन्द्र समन्वयकगण तथा कर्मचारियों की एकता व कर्मठता ही वह ऊर्जा पिण्ड है जिसके बल पर विश्वविद्यालय जीवंत व प्रकाशवान है। मुझे विश्वास है कि इसी ऊर्जा पिण्ड की सहायता से यह विश्वविद्यालय देश, प्रदेश तथा समाज को अपनी सेवाओं व योगदान प्रदान कर और अधिक समृद्ध, सुदृढ़ और गौरवशाली बनाने में अपनी भूमिका अदा कर सकेगा। मैं समस्त विश्वविद्यालय परिवार के प्रति आदर व आभार व्यक्त करती हूँ।

प्रो. सीमा सिंह
कुलपति

MAAH-107N/MAHY-111

इतिहास दर्शन एवं लेखन
सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियां

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

खण्ड
1

इतिहास के आयाम एवं इतिहास लेखन

इकाई- 1

इतिहास की अवधारणा, प्रवत्ति एवं प्रकृति 3

इकाई- 2

इतिहास चिन्तन की परम्परा का विकास एवं क्षेत्र महत्व 13

इकाई- 3

इतिहास के स्त्रोत: प्राथमिक एवं द्वितीयक 23

इकाई- 4

इतिहास के साहित्यिक एवं गैर - साहित्यिक स्त्रोत 30

इकाई- 5

शोध विधि और इतिहास लेखन 43

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 पी0पी0 दूबे — कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार — निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (1,2,3 खंड)

प्रो0 एम0पी0 अहिरवार — आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी
इकाई–1,2,3,4,5 (5खंड)

डॉ. रमाकान्त सिंह — सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (4,6 खंड)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव — आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, म0जो0फुले रु0वि0वि0, बरेली
(इकाई 1–30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष – 2022

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–2810 03

इकाई : 01 – इतिहास की अवधारणा, प्रवृत्ति एवं प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 विषयगत अवधारणा

1.3 देश–धर्मगत अवधारणा

1.4 कलागत अवधारणा

1.5 विचारगत अवधारणा

1.6 इतिहास की प्रकृति एवं प्रवृत्ति

1.7 इतिहास की भारतीय अवधारणा

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 बोध प्रश्न

1.11 सहायक ग्रन्थ

1.0 उददेश्य–

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेगे–

- इतिहास की विभिन्न अवधारणाओं के विषय में।
- इतिहास की परम्परा का विकास के विषय में।

1.1 प्रस्तावना

इतिहास शब्द इति+ह+आस से मिलकर बना है जिसका अर्थ निश्चित रूप से ऐसा हुआ था। आचार्य दुर्ग ने अपने निरूक्त में इतिहास की परिभाषा इस प्रकार की है–**इतिहैवमासीदिति तथ्य कथ्यते च इतिहासः**। इतिहास की परिभाषा एवं अर्थ को लेकर इतिहासकारो में मतभेद है। इतिहास की अवधारणा काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहा है। समस्त विषयों में प्रायः सर्वप्रथम उस विषय के प्रति मन में उत्पन्न विचारो की ओर ध्यान जाता है, इसे ही उस विषय के प्रति चिन्तकों लिए भी विद्वानों के मन में तरह–तरह की अवधारणा उत्पन्न हुई थी और उन्होने अपने–अपने चिन्तन के आधार पर इतिहास के विभिन्न तत्वों का समावेश किया था। कतिपय अवधारणाओं ने इतिहास को निश्चित रूप में मानव समाज के जीवन का संकलन, व्यक्ति समूह की परिस्थितियों का अध्ययन, महान व्यक्तियों की आत्म–कथा, मानव जीवन के महान कार्यो एवं असाधारण सफलताओं का संकलन मानवीय विचारों, आदर्शो एवं महत्वाकांक्षाओं द्वारा निर्मित मनुष्य के सामाजिक जीवन का अध्ययन माना है। इतिहास को जिस तरह से विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से देखा, समझा और प्रस्तुत किया था। उसी तरह से उसे विभिन्न विषयों के सातत्य से भी देखा तथा जाना गया था। इसके विषय में भारतीय एवं पाश्चात्य विचारों में भी अन्तर था। यही नहीं पाश्चात्य देशों में भी विभिन्न धर्म–सम्प्रदायों की पृथक–पृथक मान्यताओं के आधार पर इतिहास के प्रति लोगों की भिन्न–भिन्न अवधारणायें बनी हुई थी। विभिन्न कालो में इसके प्रति लोगों के अनेक तरह के विचार–भाव थे।

1.2 विषयगत अवधारणा

इतिहास में समय, व्यक्ति, स्थान और घटना को महत्वपूर्ण स्थान हैं। कुछ विद्वान इनको ही इतिहास का अध्ययन–विषय भी मानते हैं और उनके अनुसार जिस विषय में इनका उल्लेख नहीं होता उसे इतिहास नहीं मानते है, जो विद्वान इतिहास में विज्ञान और कला का सन्निवेश पाते हैं, वे उसे

इतिहास कहते है। उदाहरणार्थ–पुराणों, महाकाव्यों आदि को आधुनिक इतिहासकार इसी आधार पर इतिहास मानने से पीछे हटते हैं। धर्मशास्त्र, नीतिशस्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विषयों के साथ इतिहास का सम्बन्ध स्थापित किये जाने के आधार पर भी कुछ विद्वान यह कहते है कि इतिहास एक ऐसा विषय है जिसका क्षेत्र बहुत व्यापक है, इतना व्यापक कि यह सभी विषयों का मुख्य स्रोत माना जा सकता है। इसके विपरीत कुछ इतिहासकारों की अवधारणा यह भी है कि आरम्भ में इतिहास केवल राजनीति के अध्ययन का आधार था, जबकि अन्य लोगों ने उसे निश्पक्ष एवं सम्पूर्ण अध्ययन कहा है। वर्तमान समय में तो स्थिति यह हो गयी है कि इतिहास केवल घटनाओं के सामाजिक, सांस्कृतिक अध्ययन का ही विषय नही रह गया है अपितु वह एक ऐसा सामाजिक विज्ञान बन गया है जिसमें दर्शन को भी खोजा जाने लगा है। इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि जैसे–जैसे ज्ञान–विज्ञान का विकास होता जाएगा, इतिहास की विषयगत अवधारणा का स्वरूप भी बदलता जाएगा।

1.3 देश–धर्मगत अवधारणा

इतिहास के प्रति अवधारणा की एक विशेषता यह भी है कि आरम्भ में उसे केवल पश्चिमी विद्वानों से ही सम्बद्ध किया गया था, जबकि भारतीय इतिहासकारों के विषय में यह भ्रान्ति थी कि उनके पास कोई ऐतिहासिक दृष्टिकोण है नही है। पौराणिक कथाओं के प्रमाण से उन्हें अत्यधिक काल्पनिक एवं तिथिक्रम–ज्ञानरहित इतिहासकार माना गया था। लोएस डिकिंसन ने तो यह ज्ञात स्पष्टतः प्रसारित की थी कि हिन्दू इतिहासकार नही थे। उनका समर्थन डॉ0 हीरानन्द शास्त्री एवं विरोध डॉ0 गोविन्दचन्द्र पाण्डे ने किया है। डॉ0 झारखण्डे चौबे ने कहा है कि प्राचीन काल से वर्तमान तक भारतीयों में इतिहास की एक अवधारणा रही है, जिसके अनुसार प्रकृति से प्रभावित तथा दुःखों से विक्षिप्त लोगों के लिये चार आश्रम और पुरूषार्थ के

चार साधन नियत किये गये थे ताकि वे जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकें। इस तरह भारतीय इतिहास का स्वरूप व्यक्तिवादी है।

1.4 कालगत अवधारणा

इतिहास में समय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। समय के अनुसार इतिहास की अवधारणा भिन्न–भिन्न रही है, किन्तु उसका स्वरूप उद्देश्यपरक रहा है। भारतीय अवधारणा के अनुसार इतिहास एक निरन्तर चलायमान युग–चक्र है। मानव जीवन इसी चक्र द्वारा नियन्त्रित होता है। प्रत्येक चक्र चार युग में विभक्त है। (कृत, अथवा सत, त्रेता, द्वापर, कलियुग) और ब्रहा द्वारा युग–चक्र की सृष्टि होती है। युग–चक्र निरन्तर चलता रहता है। जब धर्म की अवनति और सधर्म का प्रसार होने लगता है तो ईश्वर अवतार लेकर स्थिति को सामान्य बना देता है। यह अवतारवाद भारतीय इतिहास की अवधारणा है। अवतार को यदि धर्म से अलग कर दें तो ईश्वर को हम साधारण मानव के रूप में पायेगें इसमें कर्म को प्रधान, धर्म को महत्ता कर्म और सब कुछ का अभीष्ट मोक्ष माना गया है। यूनानी रोमन अवधारणा भी भारतीय अवधारणा की तरह अपने लिए युगचक्र सिद्धान्त में मान्यता देती है, उसमें स्वर्णयुग, रजतयुग, कांस्ययुग और लौह युगों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के परिवर्तन की चक्रात्मक प्रक्रिया चलते रहने को स्वीकृत किया गया।

1.5 विचारगत अवधारणा

इतिहास के प्रति भिन्न–भिन्न लोगो के विचार रहे है। आर.जी. कालिंगवुड ने कहा है कि सम्पूर्ण इतिहास विचारों का होता है। मनुष्य का कार्य विचारपूर्ण होता हैं। उन विचारों का स्वतन्त्र और स्पष्ट अध्ययन करने पर भी हमें इतिहास के प्रति उनकी अवधारणा को समझने में सहायता मिलती है। भारतीय विद्वान ईश्वर, प्रकृति, धर्म–कर्म, मोक्षादि के प्रति निष्ठावान थे। हेसियड ने धातु–चक्र पर इतिहास को विवेचित करते हुए

उसका उद्देश्य भी पीढी के लिये अतीत के मानवीय कार्यो को सुरक्षित रखना माना है। हेरोडोटस ने ईश्वर– प्रकृति के नियमों को मानवीय क्रियाओं के सन्दर्भ में लिया और वे इतिहास के जन्मदाता कहलाये। क्रोचे ने घटनाओं पर आधारित सभी इतिहासों को समसामयिक कहा। थ्यूसीडाइडीज ने मनोवैज्ञानिक इतिहास को जन्म दिया जिसमें आदर्शवाद भाग्यवाद को नकारते हुए मानव इच्छा को माना गया था। रोमन इतिहासकार पोलिवियस ने इतिहास के सार्वभौमिक स्वरूप को स्वीकार किया और कहा कि अतीत का वर्तमान में सातत्य ही इतिहास हैं लिवी ने इतिहास में नैतिकता पर बल दिया। टेसीटस ने अच्छे तथा बुरे तत्वों का प्रतिनिधित्व कहने वाले व्यक्तियों के संघर्ष को प्रस्तुत किया और कहा कि नैतिक क्रान्तियाँ भी सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप होती है, साथ ही ऐतिहासिक घटनाएँ भी परिवर्तनशील प्रकृति के ऋतु–परिवर्तन की तरह होती है।

1.6 इतिहास की प्रकृति एवं प्रवृत्ति

सामान्यतः यह माना जाता है कि प्रकृति और प्रवृत्ति में कोई अन्तर नहीं है। वर्ण्य विषयों के आधार पर भी यदि हम विवेचना करें तो इतिहास की प्रवृत्ति के विषय में यह कह सकते है। कि उसकी प्रकृति अथवा प्रवृत्ति एक विज्ञान की है, एक कला की है और एक दर्शन की है तो ऐसा कहना कोई हास्यास्पद नहीं होगा। फिर भी शाब्दिक आधार पर कुछ विद्वान प्रकृति और प्रवृत्ति में अन्तर देखते हैं। अतीत की घटनाओं का अध्ययन–विषय होने के कारण कुछयह कहते है कि इतिहास में घटनाओं की पुनरावृत्ति होती है। ऐसे विद्वान लोग अपने कथन की पुष्टि में युद्व और क्रान्तियों का उदाहरण देते हैं और यह कहते हैं कि युद्व भूतकाल में हुए थे, युद्ध वर्तमान में और भविष्य में भी हो सकते हैं। इसी प्रकार क्रान्तियाँ हुई थी, होती हैं और होगी भी। वास्तव में यदि शब्दिक भावनाओं पर ध्यान दिया जाये तो ऐसा लगेगा कि इतिहास की पुनरावृत्ति अवश्य होती है, किन्तु यह सच नहीं है। यदि उन्ही उदाहरणों को ले तो हम पायेगें कि भूतकाल की तरह वर्तमान अथवा

भविष्य में युद्ध हो सकते है, किन्तु उनके कारण और स्वरूप दोनों पहले से भिन्न हो सकते हैं और उसका परिणाम भी पूर्व जैसा नहीं हो सकता। इसी तरह से यदि हम क्रान्ति को ले तो पहले की क्रान्ति का कारण और उसका परिणाम आवश्यक नही कि बाद की क्रान्ति जैसा ही हो। फ्रांस, रूस आदि देशो में हुई क्रान्तियाँ इसके लिये सशक्त उदाहरण है। अतः ये निराधार एवं निर्मूल बाते है कि इतिहास अपने को दुहराता है अपितु सच यह है कि इतिहास में पुनरावत्ति नहीं होती। आधुनिक इतिहास की प्रवृत्ति यह है कि उसमें प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृतियों का दर्शन होता है। यह एक अत्यन्त रूचिकर विषय है। यह अतीत के आलोक में वर्तमान व्यवस्था को समझने और भविष्य की दिशाओं का निर्देश करने की प्रवृत्ति रखती है। धर्म, राजनीति, समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था आदि सभी इसके ऐतिहासिक दर्शन में अभिरंक्षित हुए है। तथ्य बदलते रहते है व्याख्या बदलती रहती है, और उसी के साथ–साथ इतिहास का स्वरूप भी बदलता रहता है–यह इतिहास की अपनी प्रवृत्ति है। इसकी प्रवृत्ति की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह संसार के आध्यात्मिक और भौतिक प्रगति एवं विकास को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है और उस अभिव्यक्ति के माध्यम से एक अप्रत्यक्ष सन्देश भी देती है। उदाहरणार्थ–इतिहास हमें बतलाता है कि कुछ समय पूर्व हमें स्वयं तक का ज्ञान नही था, हम नवनावस्थ में वन्य जीवन व्यतीत करते थे। हम सभ्य हुए, सुसंस्कृत हुए, हमारा विकास हुआ, हमने अपनी आवश्यकता की वस्तुओ का अन्वेषण किया। हमारा चिन्तन विकसित हुआ और हमने ईश्वर की कल्पना की उसके निराकार स्वरूप को साकार बनाया, भौतिक ज्ञान वृद्वि के बल पर अपने ही समान अपने द्वीपों की खोज की सामुदिक यात्राऍ की एवरेस्ट–शिखर पर चढ़े, चन्द्रका तक हो आये, तलवारों को रख दिया और राकेट दागे इत्यदि। स्पष्ट है कि आगे भी हम जो करेंगे, वह सब भी इतिहास बन जायेगा। अतः यह भी इतिहास की एक प्रवृत्ति ही है कि वह हमारे कर्मो का प्रतिफल है। हेगेल ने इतिहास के स्वरूप को सामयिकता युक्त तर्क मानते हुए बतलाया है कि तार्किक प्रक्रिया के द्वन्द्वात्मक और

विरोधात्मक होने के कारण अर्थात वाद, प्रतिवाद और सामवाद के क्रम पर आश्रित होने के फलस्वरूप इतिहास की प्रक्रिया इसी प्रकार द्वन्द्वात्मक और विरोधात्मक होती है, जिसे डाइलेक्टिक कहते हैं। हेगल ने इतिहास के स्वरूप को एक बुद्धिसंगत प्रक्रिया के रूप में, किन्तु प्रकृति से भिन्न स्वरूप में स्वीकार किया है और कहा है कि इतिहास का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसमें प्रक्रिया रेखावत् चलती हो एवं आवृत्तियों में नवीनता भी पायी जाती हो। जॉन डिनी की मान्यतानुसार इतिहास का स्वरूप निरन्तर परिवर्तनशील और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार सदैव विकसित होता रहा है। विकासित होने पर जब वह विस्तुत हो जाता है तब अध्ययन की सुविधा के लिये उसके स्वरूप को छोटे–छोटे भागों में बॉटकर ही अध्ययन करने में सुगमता रहती है। इस आशय से वह इहिास के स्वरूप निर्माण में इतिहासकार की भूमि का को महत्वपूर्ण मानते है। आर.जी.कालिंगवुड कहते हैं–इतिहास का स्वरूप ऐसा होना चाहिये कि उसमें सुनिश्चित लक्ष्य एवं दिशा वाले बौद्धिक चिन्तन द्वारा प्रस्तुत विचारों को समाहित किया गया हो, किन्तु प्रत्येक विचार को नही वह केवल विज्ञान अथवा कला नही अपितु, दोनों है। ई.एच. कार ने इतिहास की प्रकृति को अतीत की घटनाओं एवं कारण और परिणाम के पारस्परिक सम्बन्धों को क्रम से प्रस्तुत किये जाने से सम्बन्ध किया है। डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल के अनुसार इतिहास का स्वरूप उसे यथावत् स्वीकार कर लेने से सम्बध न होकर घटनाओं के कारणो की वैज्ञानिक विधि से खोज से सम्बन्धित होता है। डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार ने इतिहास के स्वरूप को सत्य के अन्वेषण से संबद्ध मानते है। डॉ.डी0डी0 कौशाम्बी के अनुसार–इतिहास का स्वरूप उत्पादन के संसाधनों में उत्तरोत्तर परिवर्तनों के तिथिक्रमानुसार प्रस्तुतिकरण से संबन्ध होता है। आचार्य नरेन्द्र देव की दृष्टि में इतिहास का स्वरूप सत्याचरण एवं सुसंस्कारयुक्त मानव समाज से सबंद्ध है। वह इतिहास के राष्ट्रीय समाजवादी स्वरूप को विशेष आदर देते थे और लोकतंत्र में संघर्ष से भी अनुराग रखते थे। किन्तु पं0 जवाहरलाल नेहरू ने इतिहास के स्वरूप को विश्व इतिहास की एक झलक

में ही देखने का यथा सम्भव प्रयास किया था। कतिपय इतिहासकारों एवं विद्वानों द्वारा इतिहास के स्वरूप को जिस प्रकार परिभाषित किया गया है उसकी यदि समीक्षा की जाए तो हम पायेगें कि किसी ने इसके स्वरूप को कहानी एवं सामाजिक विज्ञान जैसा बदलाया है तो किसी ने इसके स्वरूप को ज्ञान, समसामयिक विचार और अतीत वर्तमान के मध्य सेतु जैसा माना है। कुछ न प्रमुखच घटनाओं का संग्रह अथवा संसार का सार्वभौम परिचय कहा है।

1.7 इतिहास की भारतीय अवधारणा

भारतीय इतिहास की अवधारणा एवं चिन्तन परम्परा के विषय में पाश्चात्य विद्वानों का विचार है कि भारत में इतिहास की कोई परम्परा नहीं थी। वे घटनाओं के तिथिक्रम में ध्यान नहीं देते थे। तथ्यों को कल्पित एवं पौराणिक कथाओं के आधार पर प्रस्तुत करते थे। भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के मर्मज्ञ डॉ.गोविन्दचन्द्र पाण्डे ने पाश्चात्य दृष्टिकोण का खण्डन किया है। उनका तर्क है कि भारतीयो ने वर्तमान जीवन को कभी भी नगण्य नहीं माना है। यदि इतिहास कर्म–प्रधान रहा है तो भारतवर्ष सदैव महापुरूषों की कर्मभूमि रहा है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय इतिहास की अवधारणा भारतीय संस्कृति में निहित मूल्यों एवं परम्पराओं के अनुसार रहा है, जिसकी सार्थकता एवं निहितार्थ का मूल्यांकन इसके सम्यक चिन्तन एवं मनन के बाद किया जा सकता है। इसलिए भारतीय इतिहास की अपनी अवधारणा है जिसका स्वरूप प्रारम्भ से ही उद्देश्यपरक एवं सार्थक रहा है।

1.8 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इतिहास मानवीय अनुभवों, घटनाओं का क्रमबद्व एवं वैज्ञानिक अध्ययन है। इतिहास की अवधारणा विभिन्न काल एवं परिस्थितियों के अनुसार अलग–अलग रही है। देश एवं काल के अनुसार इतिहास तथा ऐतिहासिक घटनाओं का प्रभाव समाज एवं

व्यक्ति पर पड़ता है। प्रत्येक काल की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप इतिहास की अवधारणा बदलती रही है। इसलिए भारतीय इतिहास की अपनी अवधारणा है जिसका स्वरूप प्रारम्भ से ही उद्देश्यपरक एवं सार्थक रहा है।

1.9 शब्दावली

हिस्तोरे

हिस्टोरिका

लोगोग्राफी

1.10 बोध प्रश्न

1. इतिहास के विषय में विभिन्न अवधारणाओं का वर्णन करे।

....

....

....

....

....

....

....

2. इतिहास के प्रकृति एवं प्रवृत्ति पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

....

3. इतिहास मानवीय घटनाओं का संकलन है। इस कथन पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

....

4. इतिहास की भारतीय अवधारणा का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

1.11 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डे, गोविन्द चन्द, इतिहास, स्वरूप एवं सिद्वान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर

2. चौबे, डॉ. झारखण्डे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी

3. सिंह, डॉ.परमानन्द, इतिहास–दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

इकाई : 02 – इतिहास चिन्तन की परम्परा का विकास एवं क्षेत्र तथा महत्व

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 इतिहास चिन्तन परम्परा का विकास

2.3 इतिहास चिन्तन की परम्परा के विविध आयाम

2.4 इतिहास चिन्तन की परम्परा के प्रति विद्वानों का दृष्टिकोण

2.5 भारत में इतिहास चिन्तन की परम्परा

2.6 इतिहास क्षेत्र का विस्तार

2.7 इतिहास का महत्व

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 बोध प्रश्न

2.11 सहायक ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगे कि –

- इतिहास की परम्परा का विकास किस प्रकार काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित एवं परिवर्धित रहा है।
- चिन्तन परम्परा के विभिन्न आयामों के विषय में जान सकेगें।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास चिन्तन परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। चिन्तन की परम्परा का स्वरूप एवं प्रकृति विभिन्न कालों में अलग–अलग रही है। यह परिवर्तन कई आयामों में दृष्टिगत होता है। भारतीय इतिहास चिन्तन की परम्परा के विषय में कुछ लोग यह स्वीकार करते है कि इतिहास–चिन्तन परम्परा का अनुसरण पश्चिम के कतिपय देशों ने किया है। यूनानी सभ्यता को पुरातन मानने वालो का मत है कि वहाँ इसका उदगम बौद्धिक कार्य–व्यापार के महान उद्वेग की एक अभिव्यक्ति के रूप में हुआ था। 'हिस्तोरे' शब्द का अर्थ वह विशेषज्ञ होता था जो वाद–विवाद का निर्णय करता था। हिस्ट्री शब्द का प्रयोग करने वाला प्रथम व्यक्ति हेराडोटस (इतिहास का जनक) था। उसने इस शब्द का आशय खोज (अनुसंधान) माना था। उसने यूनानी इतिहास–चिन्तन की आधारशिला का निर्माण किया था। इतिहास के वैज्ञानिक जनक थ्यूसीडाइडीज ने उस चिन्तन परम्परा को सशक्त एवं मजबूत आधार प्रदान किया और अरस्तू ने उसे दार्शनिक चिन्तन का स्वरूप प्रदान किया। भारतीय चिन्तन परम्परा मूल्यों,परम्पराओं,मानवीय मूल्यों तथा पुरूषार्थ चतुष्टय धर्म,अर्थ,काम तथा मोक्ष के सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित है।

2.2 इतिहास चिन्तन की परम्परा का विकास

मानव का अपने अतीत के प्रति लगाव उसकी स्वभाविक प्रवृत्ति होती है। प्राचीन काल के लोगों में अतीत के प्रति एक जीवंत चेतना थी। यद्यपि यह एक सांसारिक, मानवीय, ऐतिहासिक अतीत बोध के रूप में विकसित नहीं हो पाई। इतिहास की एक वाचिक और मौखिक परम्परा है। जैसे की गाथा और नाराशंसी के रूप में दिखता है। ऋग्वैदिक काल में भी एक अस्पष्ट और अव्यवस्थित रूप में अस्तित्व में थी। उत्तरवैदिक काल और उसके बाद अर्द्ध ऐतिहासिक घटनाओं के आख्यान, इतिवृत्त, वंश और वंशानुचरित, पुराण और इतिहास जैसे अन्यान्य रूपों का आर्विभाव हुआ। यदा–कदा गाथा और

नाराशांसी को परस्पर संयोजित करके आख्यान में समाविष्ट कर दिया जाता था जिसका सरल अर्थ ब्राह्मण साहित्य में वार्णित देवासुर और परिप्लावनी जैसे ऐतिहासिक वृत्तांत थे। इतिवृत्त जिसका अर्थ घटना है, पूर्ववर्ती काल के मनुष्यों तथा वस्तुओं का पारंपरिक विवरण है। वंश या शासकों की वंशावलियों और पुरोहितों के वंशवृक्ष प्राचीन जनश्रुति की एक अन्य कोटि है। इस प्रकार की कतिपय घटनाओं को जब संकलित और व्यवस्थित किया गया तो वे वंशानुचरित के रूप में विकसित हुए जिनसे उपलब्ध विवरणों के आधार पर परवर्ती काल में पुराणों के राजनैतिक अंशों की रचना हुई। मिथ, दंतकथा और इतिहास के इस भ्रामक संग्रह को धर्मतन्त्रीय और मिथकीय दोनो तरह का इतिहास कहा जा सकता है।

2.3 इतिहास चिन्तन की परम्परा के विविध आयाम

इतिहास चिन्तन परम्परा के क्षेत्र के विकास में विभिन्न आयामों एवं पक्षों का योगदान रहा है। धार्मिक आन्दोलन के अन्तर्गत यहूदी ईसाई धर्म के विकास ने इतिहासकारों को धार्मिक परिवेश में चिन्तन हेतु विवश किया इस परम्परा में इतिहास को मुख्यतः धार्मिक विषयों को परिभाषित करने वाला माना गया था और उसे क्रमशः करके ईश्वर के समीप पहुँचा दिया गया था। विशिष्ट घटनाएँ उसके साथ जोड़ दी गयी और कार्य–कारण परिणाम के अन्तर्गत उनका अध्ययन आरम्भ हो गया। 16वीं सदी को वैज्ञानिक युग भी कहा गया है। उस समय साक्ष्य तथा अनुभवों को ज्ञान का प्रामाणिक आधार माना गया था। इतिहासकार सत्ता और परम्परा का त्यागकर तथ्यों से संघर्ष करने को प्रस्तुत थे। साहित्य भण्डार भी पर्याप्त था इसलिये गवेषणा के लिये सामग्री की कमी नयी। उसको इतिहासकारों ने मूल्यांकन के सिद्धान्तो के आधार पर परिशुद्ध करके सम्पादित करना आरम्भ किया। वर्जिल तथा बेकन ने उसमें विशेष योगदान किया। इस ऐतिहासिक जागृति का रहस्य यूरोपीय संस्कृति की अन्तरात्मा में एक नवीन काल–चेतना का उन्मीलन था।

17वीं एवं 18वीं सदी में वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य आरम्भ हुआ और वैज्ञानिक बुद्धिवाद का मूल–सम्बर्द्धन हुआ। 17वीं सदी के वैज्ञानिक अनुसंधान ने बौद्धिक परिवर्तन की दिशाओं को निर्धारित किया। गैलीलियों तथा न्यूटन के विचारों की क्रान्ति को गति प्रदान की। 18वीं सदी में इतिहास चिन्तन के स्थान पर आलोचना को महत्व दिया गया। बुद्धिमान की शक्ति बढ़ने लगी थी। लोग परम्परागत विचारों को छोड़कर सत्य की खोज में जुट गये। सत्य ज्ञान के प्रति उनमें आकर्षण जागृत हुआ और इस तरह यूरोप में वैज्ञानिक बुद्धिवाद का साम्राज्य स्थापित हुआ।

2.4 इतिहास चिन्तन की परम्परा के प्रति विद्वानों का दृष्टिकोण

इतिहास दर्शन के जन्मदाता वाल्टेयर ने बुद्धिवादी विचारधारा को विकसित करने में अपना विशेष योगदान किया था। उन्होने मनुष्य और प्रकृति दोनों को एक साथ लेकर अध्ययन किया था। गार्डिनर के अनुसार, एक सुसम्बद्ध सार्व भौतिक इतिहास लिखने की अपेक्षा उसने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की कि एशिया भी यूरोप की ही भाँति सभ्य था। उसके अपने चिन्तन का मुख्य तत्व मनुष्य तथा प्रकृति के प्रति व्यापक जिज्ञासा, ज्ञान के प्रति समीक्षात्मक तथा तर्कशील दृष्टिकोण और उपदेशात्मक उद्देश्य रहा है।

हीगेल ने ऐतिहासिक व्यक्तियों के सन्दर्भ में बुद्धि की चतुराई की अवधारणा को स्थापित किया जो मानव अभिप्राय के रहते हुए कार्य करती है। हीगेल के अनुसार इतिहास विवेकपूर्ण अर्थपूर्ण तथा बोधगम्य है। इतिहास की गति इच्छात्मक है और उसका लक्ष्य स्वतन्त्रता की प्राप्ति है। इतिहास की द्वन्द्वात्मकता गति के बारे में हेगेल का मत है कि राष्ट्र तथा संस्कृति का उत्थान, पतन और अन्त होता है और उसी की पृष्ठभूमि पर नवीन राष्ट्र तथा संस्कृति का उत्थान, पतन और अन्त होता है। प्रत्येक राष्ट्र अथवा संस्कृति अपने विरोधी तत्व को जन्म देते हैं। इन दोनों के पारस्परिक संघर्ष से एक का अन्त और दूसरे का उदय होता है। यही इतिहास की द्वन्द्वात्मक गति है, जिसकी गवेषणा का एकमात्र श्रेय हीगेल को दिया जाता है।

2.5 भारत में इतिहास चिन्तन की परम्परा

भारतीय इतिहास चिन्तन का मूल आधार वस्तुतः धर्म ही था। पाश्चात्य विचारको की तरह यहाँ के विद्वानों ने भी अपनी चिन्तन धारा में परिवर्तन किया। आज इतिहास में दर्शन एवं विज्ञान के साथ–साथ अलगाववाद, क्षेत्रवाद, राष्ट्रवाद, आतंकवाद, विश्वयुद्ध, परमाणु युद्ध आदि से निवृत्ति एवं विश्व शान्ति की स्थापना के अभिप्राय से इतिहास के सार्वभौम स्वरूप को परिवर्तित किया जाने लगा है। भारत में यूनान, एशिया, यूरोप, अमेरीका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, चीन, जापान, आदि देशो का भी इतिहास पढ़ाया जाता है। भण्डारकार, डा. ए.के कुमारस्वामी, डा. के.पी. जायसवाल, डा. आर.सी. मजूमदार डा.डी.डी. कौशाम्बी, आचार्य नरेन्द्रदेव, जवाहर लाल नेहरू, डॉ. राम मनोहर लोहिया, डा. यदुनाथ सरकार जैसे भारतीय इतिहासकारों ने इतिहास के अध्ययन–अध्यापन को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित किया तथा सम्पूर्ण विश्व के लिये सुलभ कराने का प्रयास भी किया है जो भारतीय इतिहास की चिन्तन परम्परा का ही बोध कराता है। यह चिन्तन कितना विकसित होगा, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि भारतीय इतिहास–चिन्तन की परम्परा सदैव मूल्यपरक ,मौलिकता से युक्त के साथ विकासपरक रही है।

2.6 इतिहास क्षेत्र का विस्तार

समाज के विकास के साथ इतिहास के क्षेत्र में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इसके तीन महत्वूपर्ण पहलू हैं। प्रथम, उन घटनाओं का संकलन जो घटित हुई हैं। द्वितीय ये घटनाएँ क्यों और कब घटित हुई है और तृतीय ये घटनाएँ कैसे घटित हुई है। इतिहासकारों ने विभिन्न घटनाओं का उल्लेख केवल उनके वर्णन के द्वारा नहीं किया है अपितु आलोचनात्मक पद्धति को अपनाया है। राजवंशो के उत्थान–पतन के साथ–साथ उन्होने शासकों की जीवन–शैली एवं उपलब्धियों की भी व्याख्या करते हुए सामाजिक पहलुओ, रीति–रिवाजों और परम्पराओं का भी उल्लेख किया है। आज

इतिहासकार सामान्य व्यक्तियों का वर्णन भी करते है और इतिहास ने स्वयं अपना स्तर स्थापित कर लिया है। वस्तुतः इतिहाकारों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्तरोत्तर विस्तार होता जा रहा हैं इतिहास के जनक हेरोडोटस ने अतीत के मानवीय कार्यो एवं उपलन्धियों को कहानी के रूप में वर्णित किया है। मध्य युग में धर्म को महत्व दिये जाने के कारण इतिहास के क्षेत्र में धार्मिक मान्यताओं को भी स्थान दिया जाने लगा। प्रो. ई.एच.कार ने इस सन्दर्भ में उल्लेख किया है कि इतिहास विज्ञान के समान ही विस्तृत है जिसमें तथ्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। मानवीय जीवन के विभिन्न क्रियाकलापों को इतिहास के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाने के कारण भी उसके क्षेत्र का विस्तार हुआ है। वस्तुतः इतिहासकार का मुख्य आकर्षण मानव की उपलब्धियों का अंकन करना है चाहे वे विज्ञान, तकनीकी अथवा आविष्कार से सम्बन्धित हों। विभिन्न वंशो की भूमिका का निर्धारण करने के साथ–साथ अब इतिहासकार कला, विज्ञान और आर्थिक पहलुओं का भी वर्णन में ध्यान देते हैं। यही कारण है कि मानव जीवन का कोई पहलू अछूता न रहे जिसके कारण इतिहास के क्षेत्र में अत्यधिक विस्तार हुआ है। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि इतिहासकार दो प्रकार से इतिहास को प्रस्तुत कर रहे हैं। प्रथम वे घटना के सम्बन्ध में तथ्यों को एकत्रित करते है और द्वितीय वे घटना की व्याख्या और वर्णन करते है। प्रथम प्रकार से तात्पर्य ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठा से है और द्वितीय का आधार विषय–वस्तु के नाम से जाना जाता है। एम.जी.ट्रेवेलियन का मत है कि इतिहासकार से तीन कार्यो की अपेक्षा की जाती है कि उसमें वैज्ञानिक काल्पनिक और साहित्यिक पुट होना चाहिए। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकृति का अध्ययन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि बडे–बड़े पर्वतों, नदियों और भौगोलिक वातावरण भी मानव के उत्थान को प्रभावित करता हैं। अतः इतिहास–लेखन के समय इन तथ्यों को भी नकारा नहीं जा सकता। नवीन खोजों से उपलब्ध प्राचीन सिक्कों और अभिलेखों के कारण भी इतिहास के क्षेत्र में पर्याप्त विस्तार हुआ। 19वीं शताब्दी में जीव विज्ञान और पुरातत्व विज्ञान ने भी प्राचीन इतिहास के ज्ञान

में वृद्धि की है क्योंकि इनसे प्राचीन मानव की जीवन–शैली का विस्तृत ज्ञान उपलब्ध हुआ है। संसार के विभिन्न भागों में की गयी खुदाई एवं पुरातात्विक गतिविधियाँ इतिहास क्षेत्र के विस्तार में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है।

अब इतिहास का स्वरूप विश्वप्यापी हो गया है। पूर्व में इतिहास केवल राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक इकाइयों में विभाजित था और ये इकाइयाँ अपने आपको श्रेष्ठ समझती थी। चूँकि भारत चीन और ईरान की सभ्यताएँ अपने आपको औरों की तुलना में उच्च मानती थीं परन्तु विश्व के विभिन्न देशों के मध्य संचार साधनों के विकास के कारण अन्य देश भी एक–दूसरे के समीप आ गये थे। वे एक–दूसरे को जानते है तथा उनमें एकता की भावना का विकास हुआ है। जिसके कारण विश्वत्यापी स्तर पर एकात्मक संस्कृति का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। प्रो. एल्टन ने इस सन्दर्भ में लिखा है, ''अच्छा ऐतिहासिक लेखन ही विश्व इतिहास की दृष्टि से उचित है क्योंकि चाहे वह उसके किसी भाग का वर्णन करे वह विश्व व्यापकता का स्मरण करता है।''वर्तमान काल में व्यवस्थित ढंग से तथ्यों के संकलन तथा उनके मूल्यांकन के लिए आलोचनात्मक दृष्टिकोण को अपनाना होता है। 19वीं शताब्दी का इतिहास केवल राजनीतिक घटनाओं के अध्ययन तक सीमित था परन्तु अब इतिहास के अन्तर्गत सामाजिक, नैतिक, आर्थिक और लोगों के साहित्यिक जीवन का भी मूल्यांकन किया जाता है। अन्ततः सम्पूर्ण दृष्टिकोण परिवर्तित होकर जन साधारण के समीप केन्द्रित हो गया है। सापेक्षवाद की नवीन धारण के कारण इतिहास के क्षेत्र में अत्यधिक विस्तार हो गया हैं।

2.7 इतिहास का महत्व

कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि इतिहास का अध्ययन उचित नही हैं क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि व्यक्ति को अपने वर्तमान में सन्तुष्ट रहना चाहिए और मृतक अतीत के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने में समय को नष्ट नही करना चाहिए। इस सन्दर्भ में हेनरी फोर्ड ने भी लिखा है, इतिहास

एक लकड़ी का सन्दूक है। किन्तु हीगल यह उल्लेख करता है कि इतिहास से जो एकमात्र सबक सीखते है वह यह है कि इतिहास के पास देने के लिए कोई सबक नही है किन्तु इस दृष्टिकोण को विद्वानों ने अधिक मान्यता प्रदान नही की है। वस्तुत भूतकाल का भी उतना ही महत्व है जितना कि वर्तमान काल का बिना अपने अतीत को जाने हमारी स्थिति एक मूक पशु के समान होगी क्योंकि अपने समस्याएँ जो आज हमें अग्नि करती हैं उनके कारण अतीत में ही निहित हैं। अतः अतीत के अध्ययन का महत्व कदाचित वर्तमान से कम नही है। एक प्रसिद्ध विद्वान ने भी इस सन्दर्भ में यह उल्लेख किया है कि एक मनोचिकित्सक भी अतीत की जानकारी को प्राप्त किये बिना रोग मिटाने हेतु कोई दवा नही देता है। उसके लिए अपने रोगी के पूर्व इतिहास की जानकारी अत्यन्त आवश्यक होती है। क्योंकि व्यक्तित्व ही उसके अनुभवों को दर्शाता है। इसी प्रकार वर्तमान में राष्ट्रों का स्वरूप और उसकी संस्थाओं के द्वारा ही हम उसकी पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं। इतिहास के अध्ययन का इसलिए भी अत्यधिक महत्व है क्योंकि वह हमें बौद्धिक सन्तुष्टि प्रदान करता है। इस सन्दर्भ में प्रो. एल्टन की भी धारणा है 'अतीत के अध्ययन से हमें अपने बौद्धिक विकास हेतु प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है जो भावनात्मक सन्तुष्टि प्रदान करती है।

ऐतिहासिक ज्ञान हमें वर्तमान को भली प्रकार जानने की क्षमता प्रदान करता है और भविष्य के सम्बन्ध में दिशा–निर्देश देता है। यह मानव के अनुभवों के क्षेत्र में वृद्वि करता है और उनके परस्पर मानवीय व्यवाहर सम्बन्धों का भी निर्धारत करता है। साथ ही इतिहास मानव पर पड़ने वाले प्रभाव के कारणों एवं दशाओं की भी जानकारी देता हैं इतिहास मानव पर पड़ने वाले प्रभाव के कारणों एवं दशाओं की भी जानकारी देता है। इतिहास के अध्ययन से व्यक्ति की बुद्धि एवं चिन्तन के विकसित होने से तर्क शक्ति का भी उत्थान होता है। यह न केवल व्यक्ति को सत्य के अन्वेषण के लिए प्रेरित करता है अपितु अतीत के पुनर्निर्माण में भी सहायता प्रदान करता है। इतिहास के अध्ययन के महत्व पर बल देते हुए कालिंगवुड ने भी लिखा है

कि ''इतिहास का अध्ययन मानव जीवन के लिए उपयोगी है क्योंकि परिवर्तन की लय स्वयं को दोहराती रहती है क्योंकि उसी प्रकार की घटनाएँ और समान परिणाम अवसर दृष्टिगोचर होते है। यह न केवल घटित होने वाली घटनाओं की और संकेत करता है अपितु उन संकटों से भी अवगत कराता है जो आने की सम्भावना होती है। सर टॉमस मूर की भी इतिहास के महत्व के सन्दर्भ में यह धारणा है कि इतिहास के कुछ पृष्ठों का अध्ययन मानव मस्तिष्क को इतनी गहनता, सहजता से प्रदान करता है जितनी कि वह आध्यत्मिक विषयों पर प्रकाशित अनेक ग्रन्थो से भी प्राप्त नहीं कर सकता है। इसी प्रकार लेके ने भी इस सन्दर्भ में लिखा है कि वह जिसने सच्चे चरित्र को समझना सीख लिया है तथा आने वाले समय की प्रवृत्ति को जान लिया है तो वह स्व्यं को अनुमानित करने में गलती नहीं करता है। वस्तुतः इतिहास हमें निम्नलिखित पहलुओं की विराट जानकारी में सहायता प्रदान करता है–यह हमें उन प्राकृतिक नियमों की जानकारी देता है जिस पर मानवीय आधारित है।

2.8 सारांश

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय परम्परा में चिन्तन का अत्यन्त ही सारगर्भित तथा उल्लेखनीय योगदान रहा है। भारतीय चिन्तन परम्परा का सूत्रपात भारत की ऋषि–मुनि की चिन्तन परम्परा में दृष्टिगत होता है। क्योकि भारतीय चिन्तन परम्परा व्यष्टि से समष्टि के कल्याण पर केन्द्रित है। यही भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं चिन्तन पराम्परा की विशिष्टता है।

2.9 शब्दावली

हिस्तोरे' का अर्थ वह विशेषज्ञ होता था, जो वाद–विवाद का निर्णय करता था।

2.10 बोध प्रश्न

1. भारतीय चिन्तन परम्परा के विषय में वर्णन करें।

....

....

....

....

....

....

2. भारतीय चिन्तन परम्परा के विभिन्न आयामों का वर्णन करें।

....

....

....

....

....

....

3. भारतीय चिन्तन परम्परा में इतिहास के महत्व का वर्णन करें।

....

....

....

....

....

2.11 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डे, गोविन्द चन्द, इतिहास, स्वरूप एवं सिद्वान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर

2. चौबे, डॉ. झारखण्डे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी।

3. सिंह, डॉ.परमानन्द, इतिहास–दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

इकाई : 03 – इतिहास के स्रोतः प्राथमिक एवं द्वितीयक

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 प्राथमिक स्रोत

- 3.2.1 सामयिकी ग्रन्थ
- 3.2.2 शासकीय दस्तावेज
- 3.2.3 गोपनीय प्रतिवेदन
- 3.2.4 सार्वजनिक प्रतिवेदन
- 3.2.5 जनमत संग्रह
- 3.2.6 प्रश्नावली
- 3.2.7 साहित्य
- 3.2.8 लोकगीत तथा लोकोक्तियाँ

3.3 द्वितीयक स्रोत

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 बोध प्रश्न

3.7 सहायक ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- इतिहास के प्राथमिक स्रोत के विभिन्न पक्षों के विषय में।
- इतिहास के प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत के अन्तर के विषय में।

3.1 प्रस्तावना

इतिहास में स्रोतों की सर्वाधिक महत्ता तथा विश्वसनीयता होती है। इसके आधार पर अतीत की संरचना होती है। इतिहास में प्रत्येक स्रोत की अपनी–अपनी महत्ता एवं उपयोगिता होती है। ऐतिहासिक रूप से स्रोतों को दो भागों में विभाजित किया जाता हैं–प्राथमिक एवं द्वितीयक। इतिहासकार के लिए दोनों स्रोत महत्वपूर्ण होता है। लेकिन अध्येता को द्वितीयक स्रोतों का भी अध्ययन करना चाहिए। द्वितीयक स्रोत प्रधानतः प्राथमिक स्रोत पर आधारित होता है। इतिहास मानवीय अनुभवों एवं उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत करता है। इतिहास न केवल अतीत की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करता बल्कि विभिन्न के आधार पर मानव को भविष्य के लिए मार्गदर्शन भी प्रदान करता है। इतिहास के विभिन्न स्रोतों के विभिन्न वर्गो में विभाजित किया गया है। यह स्रोत विभिन्न प्रकार की सूचनाएं प्रदान करते हैं।

3.2 प्राथमिक स्रोत

3.2.1 सामयिकी ग्रन्थ–

समसामयिक ग्रन्थ को प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। समकालीन ग्रन्थ को एक महत्वपूर्ण अभिलेख के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस प्रकार के ग्रन्थ में सम्बन्धित व्यक्ति को अपने कार्य को पूर्ण करने के लिए निर्देश दिये जाते है। इसमें अनुंदेश ,अभिलेख,युद्ब भूमि से सम्बन्धित आदेश आदि आदेश आते है। इसमें आशुलेखन एवं ध्वनिलेखन को

महत्वपूर्ण माना जाता है। व्यापार एवं कानून से सम्बन्धित हुण्डी,विधेयक,आदेश,रेहन,फर्म आदि के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। व्यक्ति अपने उपयोग के लिए नोटबुक,स्मरण पत्र आदि रखते है। इसको ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

3.2.2 शासकीय दस्तावेज–

शासकीय दस्तावेज को प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत माना जाता है। इसे इतिहासकार के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। इससे विभिन्न कार्यक्रमों,गतिविधियों के साथ–साथ अनेक सरकारी नीतियों एवं योजनाओं के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते है। सरकारी दस्तावेजों में विभिन्न निकायों ,कर प्रणाली,जनगणना के आकड़े, वित्तीय प्रावधानों,आर्थिक वैज्ञानिक तथा जनांकीय आदि के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते है।

3.2.3 गोपनीय प्रतिवेदन–

यह प्रतिवेदन सामन्य जन के लिए नही होती है। यह सैन्य एवं राजनैयिक संवाद तथा संस्मरण तथा व्यक्गित पत्रों के रूप में होती है। व्यक्तिगत पत्रों को इतिहास के लिए उपयोगी माना जाता है। पत्र में भी किसी परिवार या व्यक्ति से सम्बन्धित बातों का विवरण प्राप्त होता है। इसको ऐतिहाासिक स्रोत के रूप में प्रयुक्त करने से पूर्व उनकी सत्यता की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

3.2.4 सार्वजनिक प्रतिवेदन–

सार्वजनिक प्रतिवेदन जन सामान्य के लिए होती है। प्रायः तीन प्रकार के सार्वजनिक प्रतिवेदन होते है–1.समाचार पत्र और विज्ञाप्ति समाचार पत्र की रिर्पोट तथा प्रेषण की अधिक विश्वसनीयता उस एजेन्सी पर निर्भर करता है जो उसे अन्तिम रूप से प्रकाशित करता है। कभी–कभी किसी सच्ची घटना का विवरण कम विश्वसनीय समाचार–पत्र में प्रकाशित हो जाता है। पहले विशेष संवाददाताओं की नियुक्ति नही होती थी । समाचार–पत्र एक

दूसरे समाचार –पत्र की नकल किया करते थे। संस्मरण तथा आत्कथाएं दूसरी प्रकार के सार्वजनिक प्रतिवेदन है। संस्मरण कम विश्वसनीय होते है। विश्व इतिहास की अनेक घटनाओं का विवरण महत्वपूर्ण है। तृतीय प्रकार किसी व्यापारी घराने का इतिहास सार्वजनिक प्रतिवेदन के क्षेत्र में आता है। इस प्रकार सार्वजनिक प्रतिवेदनों के सम्य्क विवरण के आधार पर इतिहास का निरूपण किया जा सकता है।

3.2.5 जनमत संग्रह–

जनमत संग्रह को प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इतिहासकार के लिए जनमत अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक है। जनमत की अभिव्यक्ति विभिन्न माध्यमों जैसे–भाषणों, पुस्तिकाओं आदि के रूप में होती है।

3.2.6 प्रश्नावली–

प्रश्नावली को भी प्राथमिक स्रोत के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस प्रणाली में किसी भी विषय पर जन सामान्य की विचार की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यह प्रश्नकर्ता एवं उत्तर देने वाले के बीच गोपनीय सम्बन्ध होने चाहिए।

3.2.7 साहित्य–

साहित्य को भी एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत के रूप में मान्यता दी जा सकती है। इसके माध्यम से इतिहासकार स्थानीय स्थितियो,परम्पराओं,रीति–रिवाजों आदि के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। इसके अन्तर्गत समाज के विविध पक्षों का सम्य्क विवरण प्राप्त होता है। अनेक इतिहासकारों का मत है कि इतिहासकार को समकालीन साहित्य पर आश्रित नहीं होना चाहिए। उसे अनेक शासकीय अभिलेखों की सहायता लेनी चाहिए। इतिकासकार को

तत्कालीन साहित्य की उपेक्षा नही करनी चाहिए। उसका अध्ययन अत्यन्त सावधानीपूर्वक करनी चाहिए।

3.2.8 लोकगीत तथा लोकोक्तियाँ–

लोकगीत भारतीय परम्परा का एक अंग है। इसमें किसी नायक की कहानियों का आख्यान होता हैं जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत होता है। इस प्रकार के लोकगीत में किसी नायक के वीरोचित लक्षणों का आख्यान होता है। इससे किसी समाज में प्रचलित रीति–रिवाजों,परम्पराओं एवं अनेक अंध–विश्वासों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। भारत में आल्हा–उदल का आख्यान लोकगीतों की श्रेणी में आता है। लोकगीतों का सही उपयोग करने से पहले इतिहासकार को उस काल विशेष का इतिहास का गहन अध्ययन करना चाहिए। उसे इतिहास एवं आख्यान में अन्तर समझ में आना चाहिए। लोकोक्तियों से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इतिहासकार को सम्य्क प्रकार से परम्पराओं एवं रीति–रिवाजों का गहन अध्ययन होना चाहिए।

3.3 द्वितीयक स्रोत

द्वितीयक स्रोतों की सम्य्क जानकारी प्राथमिक स्रोतों के सम्य्क एवं सही उपयोग करने के बाद ही सम्भव है। इसके बाद ही समकालीन ग्रन्थों को सही स्थान पर रखा जा सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि द्वितीयक स्रोत का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

3.4 सारांश

इतिहास में स्रोतों की सर्वाधिक महत्ता तथा विश्वसनीयता होती है। इसके आधार पर अतीत की संरचना होती है। इतिहास में प्रत्येक स्रोत की अपनी–अपनी महत्ता एवं उपयोगिता होती है। ऐतिहासिक रूप से स्रोतों को दो भागों में विभाजित किया जाता हैं–प्राथमिक एवं द्वितीयक। इतिहासकार

के लिए दोनों स्रोत महत्वपूर्ण होता है। लेकिन अध्येता को द्वितीयक स्रोतों का भी अध्ययन करना चाहिए। द्वितीयक स्रोत प्रधानतः प्राथमिक स्रोत पर आधारित होता है।

3.5 शब्दावली

- संस्मरण –
- आत्मकथा –
- जनमत –
- लोकगीत –
- लोकोक्तियाँ –

3.6 बोध प्रश्न

1. इतिहास के प्राथमिक स्रोतों पर टिप्पणी लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

2. इतिहास के स्रोतों की महत्ता पर एक निबन्ध लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3.7 सहायक ग्रन्थ

1. इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक,ई.श्रीधरन,ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन,नई दिल्ली।

2. इतिहास दर्शन ,डा.परमानन्द सिंह,मोतीलाल बनारसीदास,वाराणसी।

3. इतिहास–दर्शन, कौलेश्वर राय,किताब महल एजेन्सीज,इलाहाबाद।

इकाई : 04 – इतिहास के साहित्यिक एवं गैर–साहित्यिक स्रोत

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 प्राचीन भारतीय इतिहास में स्रोतो का महत्व

4.3 धार्मिक एवं धार्मिकेत्तर साहित्य

4.3.1 वेद

4.3.2 वेदांग

4.3.3 ब्राह्मण ग्रन्थ

4.3.4 आरण्यक

4.3.5 रामायण एवं महाभारत

4.3.6 पुराण

4.3.7 बौद्व साहित्य

4.3.8 जैन साहित्य

4.3.9 ऐतिहाासिक ग्रन्थ

4.4 इतिहास के गैर–साहित्यिक स्रोत

4.4.1 अभिलेख

4.4.2 मुद्राएँ

4.4.3 स्मारक

4.4.4 मुहरें

4.5 विदेशी यात्रियों का विवरण

4.51. यूनानी इतिहास लेखक

4.5.2 चीनी इतिहास लेखक

4.5.3 मुस्लिम इतिहास लेखक

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 बोध प्रश्न

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगे–

- इतिहास जानने के विभिन्न प्रकार के स्रोतों के विषय में।
- इतिहास लेखन के विभिन्न आयामों के विषय में।
- इतिहास के विषय में विदेशी यात्रियों के विवरण के विषय में।

4.1 प्रस्तावना

अतीत काल में घटित घटनाओं का विवरण इतिहास की विषयवस्तु होती है। प्राचीन भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालने वाले विवरण विभिन्न रूपों में प्राप्त होते है। प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर व्यवस्थित एवं क्रमबद्व अध्ययन का कार्य पाश्चात्य इतिहासकारों के द्वारा किया गया है। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा है। दुर्भाग्यवश हम प्राचीन इतिहास को सामग्री के अभाव में पूर्णतः पुनर्निर्मित करने में अक्षम अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार के इतिहास लेखक यूनान, रोम आदि

देशो में हुए हैं। हमारे यहाँ उनका सदा अभाव रहा है। वास्तव में प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत बहुतायत में हैं। इनका अगर उचित रूप से वर्गीकरण कर दिया जाए तो प्राचीन भारतीय इतिहास को समझने में अति सुविधा होगी। भारतीय विद्वानों ने गहन अध्ययन के पश्चात् इन एकत्रित स्त्रोतों का वर्गीकरण किया है और इन स्त्रोतों के आधार पर भारतीय इतिहास को क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक स्त्रोतों को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जाता है–प्रधान (Primary) और गौण (Secondary) प्रधान स्त्रोतों में साक्षात के साक्ष्य, मौलिक दस्तावेज आदि हैं। इतिहासकार बिखरे हुए प्रधान स्त्रोतों को इकठ्ठा कर उन्हें गौण स्त्रोत बना देता है। अधिक महत्व प्रधान स्त्रोतों को दिया जाता है। दूसरी ओर, गौण स्त्रोत उस व्यक्ति का साक्ष्य है जो घटना के समय मौजूद नहीं था। दोनों के अन्तर को बतलातें हुए प्रो. मार्विक ने कहा है, ''प्रधान स्त्रोत अप्रकाशित स्त्रोत, है जो कुशल इतिहासकार के लिए अधिक महत्वपूर्ण होते हैं, गौण साधन प्रकाशित पुस्तके, निबन्ध आदि हैं।'' विद्वानों द्वारा वर्णित इन प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों को मूल रूप से निम्न भागो में बाँटा जा सकता है।

(1)पुरातात्विक स्रोत (2) साहित्यिक स्रोत

4.2 प्राचीन भारतीय इतिहास में स्रोतो का महत्व

प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनिर्माण में स्रोतो का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इतिहासकार स्रोतो के आधार पर इतिहास की व्याख्या कर समाज की यथार्थता का प्रस्ततीकरण करता है। स्रोतो का विभाजन निम्नलिखित प्रकार है।

साहित्यिक स्रोत–साहित्यिक स्रोत को धार्मिक साहित्य तथा धार्मिकत्तेर साहित्य के अन्तर्गत विभाजित किया जाता है।

4.3 धार्मिक एवं धार्मिकेत्तर साहित्य

साहित्यिक स्त्रोतो के अन्तर्गत प्राचीन धार्मिक साहित्य के अर्न्तगत वैदिक एवं वैदिकोत्तर साहित्य यथा बौद्ध एवं जैन साहित्य आदि आते हैं। ये सम्पूर्ण साहित्य प्राचीन भारतीय इतिहास के विषय में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत वेद, वेदांग, ब्राहाण, आरण्यक, रामायण, महाभारत तथा पुराण आदि आते हैं। ये धार्मिक साहित्य प्राचीन भारतीय इतिहास के विषय में अनेक महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं।

4.3.1 वेद

इनकी संख्या चार है–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद वेदों में ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन है। इस ग्रन्थ से प्राचीन आर्यो के सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन के विषय में विशद जानकारी प्राप्त होती है।

4.3.2 वेदांग

इनकी रचना वैदिक काल के अन्त में हुई। ये वेदों के ही अंग हैं। इनकी संख्या 6 है। ये वेदांग हैं–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त छंद और ज्योतिष।

4.3.3 ब्राहाण ग्रन्थ

ऋषियों द्वारा वेदों की गद्य में की गई सरल व्याख्या को ब्राहाण ग्रन्थ कहा जाता है। प्रत्येक वेद के अपने ब्राहाण ग्रन्थ हैं। कौषीतकी तथा एतरेय ऋग्वेद के ब्राहाण ग्रन्थ हैं। तैतरीय, कृष्ण यजुर्वेद का शतपथ, शुक्ल यजुर्वेद का ताण्डव पंचविश और जैमनीय सामवेद का तथा गोपध अथर्ववेद का ब्राहाण ग्रन्थ है। इन ग्रन्थो से तत्कालीन लोगों की सामाजिक राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन की विशद जानकारी प्राप्त होती है।

4.3.4 आरण्यक

इनमें आत्मा, मृत्यु तथा जीवन संबंधी विषयों का वर्णन किया गया है। चूँकि इनका पठन–पाठन वानप्रस्थी, मुनि तथा वनवासियों द्वारा वन में (जिसका अर्थ अरण्य होता है) किया जाता है। इसलिए इन ग्रन्थों को आरण्यक के नाम से जाना जाता है।

4.3.5 रामायण तथा महाभारत

महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखित रामायण तथा वेद व्यास द्वारा लिखित महाभारत हिन्दुओं के दो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं जो सम्भवतः ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित हैं परन्तु इन महाकाव्यों का रचनाकाल निश्चित नहीं है। इसीलिए इनसे किसी काल विशेष का इतिहास जाननाच संभव नही है।

4.3.6 पुराण

पुराण का अर्थ प्राचीन है। पुराण अठारह है। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य,गरूड़ तथा ब्रह्माण्ड। पुराणो के पाच लक्षण बताये गये है– सर्ग,प्रतिसर्ग,वंश,मन्वन्तर तथा वंशानुचरित। पार्जिटर नामक विद्वान ने सर्वप्रथम विद्वानों का ध्यान इसकी ऐतिहासिकता की ओर दिलाया था। ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए पुराण एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। इन पुराणों से प्राचीन राजवंशों तथा उनके क्रियाकलापों का ज्ञान प्राप्त होता है। ये पुराण वर्तमान रूप में सम्भवतः ईसा की तीसरी और चौथी शताब्दी में लिखे गए। यद्यपि इन पुराणों में दिया गया वंशानुक्रम भिन्न–भिन्न है, किन्तु फिर भी इनसे अनेक महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

4.3.7 बौद्ध साहित्य

भारतीय इतिहास के स्त्रोत के रूप में हिन्दू धार्मिक साहित्य की भॉति बौद्ध साहित्य का विशेष महत्व है। बौद्ध साहित्य के प्रमुख अंग है।

पिटक–पिटक का शाब्दिक अर्थ है–पिटारी। रीज डेविडस ने भी इसका अर्थ टोकरी माना है। कालान्तर में इसका प्रयोग परम्परा एवं सम्प्रदाय के अर्थ के रूप में होने लगा था। पिटक तीन है–विनयपिटक–इसके कुल पाच भाग है। यह मूलतः संघ के नियम एवं आचार विषयक विधान का संकलन है। सुत्तपिटक–इसके कुल तीन भाग है। इसमें मूलतः बुद्व के उपदेशों का संग्रह है। अभिधम्मपिटक–इसके कुल सात भाग है। इसमें बुद्व के उपदेशों की दार्शनिक व्याख्या है। इन त्रिपिटको से महात्मा बुद्ध के समकालीन शासकों तथा तत्कालीन भारत की राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। जातक साहित्य–जातक कथाओं का बौद्ध साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। जातक साहित्य में बुद्व के पूर्व जन्म की गाथाओं का संकलन है। जातको की संख्या 550 है। जातक कथाओं से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि अनेक पक्षों की जानकारी प्राप्त होती है। सांची एवं भरहुत के स्तूपों पर अनेक जातक कथाओं का अंकन मिलता है। मिलिन्दपहो–पालि भाषा में रचित इस ग्रन्थ में यूनानी राजा मिलिन्द एवं बौद्व विद्वान नागसेन के मध्य वार्ता का संकलन है। मिलिन्द के अनेक शंकाओं का समाधान नागसेन करते है। इस ग्रन्थ के कुल सात सर्ग है।

4.3.8 जैन साहित्य

प्राचीन भारतीय इतिहास के विषय में जैन साहित्य से भी अनेक महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। अनेक ऐसे तथ्यों का वर्णन जैन साहित्य में मिलता है, जिनका वर्ण ब्राहाण एवं बौद्व साहित्य में या तो किया ही नहीं गया है या फिर बहुत कम किया गया है। जैन साहित्य को आगम कहा जाता है। इसमें 12 अंग, 12 उपांग, 10 प्रकीर्ण, 6 छंदसूत्र नन्दिसूत्र, अनुयोगद्वार और मूल सूत्र सम्मलित हैं।

4.3.9 ऐतिहासिक ग्रन्थ

अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों को प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोतों में स्थान दिया गया है। इन ऐतिहासिक ग्रन्थों से संबन्धित शासकों व राज्यों के विषय में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक अवस्था का यथोचित ज्ञान प्राप्त होता है। एतिहासिक ग्रन्थों में गार्मी संहिता, शुक्रनीतिसार, राजतरंगिणी, हर्षचरित, मुद्राराक्षस, पृथ्वीराजरासों, रसमाला, कीर्तिकोमुदी, प्रबन्ध चिन्तामणि, प्रबन्धकोष, विक्रमांकचरित, नवसाहसांक चरित्र, रामचरित, भोज प्रबन्धक, गोडवाहो, कुमार पाल चरित, हम्मीर काव्य आदि प्रमुख हैं।

4.4 इतिहास के गैर–साहित्यिक स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में पुरातात्विक स्रोतों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। पुरातत्व इतिहास के निर्माण में प्रतिपादक एवं समर्थक दोनो रूपों में कार्य करता है। प्रतिपादक के रूप में ऐसे तथ्य प्रकाशित किये जिनके विषय में हमें किसी अन्य साक्ष्य से कोई सूचना नहीं मिलती है। जैसे समुद्रगुप्त की विजय पर प्रयाग प्रशस्ति और खारवेल की उपलब्धियों पर हाथीगुम्फा अभिलेख ही प्रकाश डालते है। भारत में पुरांतात्विक सामग्री का भण्डार प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अनेक स्थानों पर किया गया उल्खनन कार्य इसका प्रमाण है। वास्तव में प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए पुरातात्विक सामग्री का अत्यधिक महत्व है। पुरातात्विक सामग्री के अन्तर्गत अभिलेख, मुद्राएं स्मारक भवन, मूर्तियाँ, चित्रकला तथा अवशेषों को रखा जाता है।

4.4.1 अभिलेख

इतिहास के जानने में अभिलेखों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अभिलेखों के अन्तर्गत उन सभी प्राचीन लेखों का सम्मिलित किया गया जाता है जो मिट्टी ,ईंट,पत्थर,धातु, अथवा लकड़ी आदि पर उत्कीर्ण है। भारत में अभिलेख स्तम्भ,शिलाओं गुफाओं मूर्तियों,पात्रों, ताम्रपत्रों आदि पर प्राप्त होते

है। डा. वी.ए.स्मिथ के अनुसार भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालने वाले स्रोतों में अभिलेखों को सर्वाधिक प्रामणिक और महत्वपूर्ण माना है। प्रो.रैप्सन के अनुसार अभिलेख जिस काल और स्थान के होते है। वे उस काल और स्थान के राजनीतिक,सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियो का ज्ञान कराने में अत्यधिक सहायक होते है। प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के लिए पुरातात्विक स्त्रोतों में अभिलेख सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विश्वसनीय हैं। सबसे प्राचीन अभिलेखों 1400 ई0पू0 में मध्य एशिया के बोगजकोई से प्राप्त अभिलेख हैं। इनसे ऋग्वेद की तिथि ज्ञात करने में सहायता मिलती है। अभिलेखों के अन्तर्गत गुफालेख, शिलालेख, स्तम्भ लेख, ताम्रपत्र आदि आते हैं।

4.4.2 मुद्राएँ

सिक्को के अध्ययन को मुद्राशास्त्र कहा जाता है। पुरातात्विक सामग्री में मुद्राओं का ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। ये मुद्राएँ, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास लिखने में बड़ी ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं। भारत में विभिन्न भागों से विभिन्न प्रकार की मुद्राएँ, जैसे स्वर्ण मुद्राएँ, रजत मुद्राएँ, तथा ताम्र मुद्राएँ, प्राप्त हुई हैं। मुद्राओं अथवा सिक्कों से तत्कालीन आर्थिक दशा, संबंधित सम्राट की राज्य सीमा, कला, धार्मिक दशा तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है। सिक्के विनिमय के माध्यम के रूप में काम में लिए जाते थे। सर्वप्रथम स्वर्ण मुद्राएँ कुषाण वंश के शासको के द्वारा प्रचलित किये गये थे।

4.4.3 स्मारक

पुरातात्विक सामग्री में अभिलेख और मुद्राओं के साथ ही स्मारको का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। राजनीतिक दृष्टिकोण से तो स्मारको का अधिक महत्व नही है, किन्तु धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से स्मारकों का बहुत अधिक महत्व है। स्मारकों के अन्तर्गत सभी प्रकार के भवन, मूर्तियॉ, इमारते, कलात्मक वस्तुऍ, मन्दिर, विहार, स्तूप आदि रखे जा सकतें है। ये

स्मारक तत्कालीन भारत की धार्मिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थिति के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। भारत में विभिन्न स्थलों पर हुए उत्खनन में प्रचुर मात्रा में अवशेष (बर्तन, हथियार, औजार, बटखरों, खिलौनें आदि) प्राप्त हुए है। इन अवशेषों से प्रागैतिहास तथा आद्य इतिहास के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। मूर्तियों से संबंधित काल एवं क्षेत्र के जनसाधारण के धार्मिक आस्थाओं एवं कला के प्रति प्रेम के विषय में विशद जानकारी प्राप्त होती है।

4.4.4 मुहरें

मुहरें भी प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के मुख्य स्त्रातों में आती हैं। इन मुहरों से प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उत्खनन से प्राप्त मुहरों ने प्राचीन भारत का इतिहास लिखने में इतिहासकारों की बहुत मदद की हैं।

4.5 विदेशी यात्रियों का विवरण

प्राचीन काल से ही भारत का विश्व के अनेको देशों के साथ राजनीतिक, सामाजिक, व्यापरिक तथा धार्मिक सम्बन्ध रहा है। भारत में समय–समय पर अनेक विदेशी यात्रियों ने भ्रमण किया और अपने यात्रा विवरण में भारत के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी दी है जो इतिहास जानने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत है। भारत में आने वाले विभिन्न विदेशी यात्रियों का विवरण निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर जानकारी प्रदान की जा सकती है।

4.51. यूनानी इतिहास लेखक

प्रारम्भिक यूनानी लेखकों में स्काइलैक्स तथा हिकेटियस मिलेट्स का महत्वपूर्ण स्थान है। ये दोनो लेखक भारत की सिन्धु सभ्यता के विषय में जानकारी प्रदान करते है। इतिहास के जनक हेरोडोटस ने अपने ग्रन्थ

हिस्टोरिका में अनेक देशों के साथ भारत का विवरण दिया है। वह भारतीय सीमा प्रान्त ओर फारसी साम्राज्य के राजनीतिक सम्पर्क का वर्णन करता है। टेसियस नामक लेखक ने भारत के विषय में विवरण दिया है। सिकन्दर के साथ अनेक विद्वान एवं लेखक भारत आये थे जिनके विवरण अत्यन्त प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है। इन लेखकों में निर्याकस,एरिस्टोबुल तथा ओनेसिक्रिटस उल्लेखनीय है। इनके द्वारा लिखित विवरण मूल रूप में उपलब्ध नही है। लेकिन स्ट्रैबो,प्लिनी तथा एरियन आदि के उद्वरण से प्राप्त होते है।

सिकन्दर के बाद आने वाले यूनानी लेखकों में मेगस्थनीज,डाइमेकस तथा डायोनिसियस महत्वपूर्ण है। मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक इण्डिका में मौयकालीन स्थिति का वर्णन किया है। यह चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में सेल्यूकस के द्वारा भेजा गया राजदूत था। उसकी पुस्तक मूल रूप में उपलब्ध नही है। उसके विवरण परवर्ती लेखको जैसे एरियन,जस्टिन आदि के उद्वरण से प्राप्त होते है।

डाइमेकस सीारियाई शासक अन्तियोकस के द्वारा बिन्दुसार के काल में भारत आया था। इसका विवरण प्राप्त नही होता है। स्ट्रैबो के उद्वरण में इसका विवरण मिलता है। डायोनिसियस मिस्री शासक टालेमी फिलाडेल्फस के द्वारा मौर्य शासक अशोक के काल में भारत आया था। पेट्राक्लीज नामक यूनानी सेल्यूकस एवं एण्टिओकस प्रथम के किसी पूर्वी भाग का अधिकारी था,जिसके पूर्वी देशो के भूगोल नामक ग्रन्थ में भारत का विवरण मिलता है। ई.पू.100 में पेरीप्लस ऑफ दि इरीथ्रियन सी नामक पुस्तक की रचना किसी यूनानी यात्री ने की थी। लेखक ने अपने वर्णन में भारतीय बन्दरगाहों के नाम क्रमशः यथा–भृगुकच्छ, प्रतिष्ठान, सोपारा, कल्याण, नोरा, टिण्डीस, सुचिरीपत्तन तथा नीलकण्ठ से आयात–निर्यात किये जाने वाली वस्तुओं का उल्लेख किया है। एलियन दूसरी शताब्दी ई.का यूनानी लेखक था जिसने ए कलेक्शन ऑफ मिसलेनसियस हिस्ट्री और आन दि पिक्यूलियारटिजीस ऑफ

एनिमल्स नामक दो महत्वपूर्ण ग्रन्थो में भारतीय इतिहास एवं भारतीय पशु वर्ग की अनेक महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। कासमास एलेक्जेन्ड्रिया का एक यूनानी लेखक था,जिसने क्रिशिचयन टोपोग्राफी में पश्चिमी देशों से भारत के व्यापार के विषय में वर्णन किया है।

4.5.2 चीनी इतिहास लेखक

यूनानी लेखकों की तरह चीनी साहित्य से भी भारतीय इतिहास के निर्माण में सहायता मिलती है। चीन का प्रथम इतिहासकार सुमाचीन है। प्रथम शताब्दी ई.पू. में इसके द्वारा लिखित पुस्तक में भारत के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। फाहयान चीनी यात्री जो कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में भारत आया था। हवेनसांग यह हर्षवर्धन के काल में भारत आया था। इसका भारत सम्बन्धी विवरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके यात्रा का विवरण सी–यू–की के नाम से जाना जाता हैं। इत्सिंग नामक चीनी यात्री सातवी सदी में भारत आया था। हुईली रचित युवान च्वांग की जीवनी और मात्वानलीन की रचनाओं से भी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। तिब्बती लेखक लामा तारानाथ की रचनाओं से भी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

4.5.3 मुस्लिम इतिहास लेखक

यूनानी एवं चीनी लेखको के विवरणों की तरह मुस्लिम लेखकों के विवरणों से भी इतिहास के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इसमें अल्बरूनी की पुस्तक तहकीक–ए–हिन्द में राजपूत काल की भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। यह महमूद गजनवी के काल में भारत आया था। इसके अलावा अलविलादुरी, सुलेमान, अलमसूदी, अलइस्तखरी, मिनहाजुद्दीन, फरिश्ता आदि अन्य लेखको के विवरण से भारतीय इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

4.6 सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास के जानने के विभिन्न प्रकार के स्रोत प्रचलित है। जिनके आधार पर प्राचीन भारतीय इतिहास के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों की सम्यक् जानकारी प्राप्त की जा सकती है। साहित्यिक स्रोत की अपेक्षा पुरातात्विक स्रोत की विश्वसनीयता ज्यादा अधिक प्रतीत होती है। सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनिर्माण में दोनो स्रोतों की अपनी–अपनी महत्ता एवं उपयोगिता है।

4.7 शब्दावली

4.8 बोध प्रश्न

1. प्राचीन इतिहास के पुरातात्विक स्रोतों के महत्व का वर्णन कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

2. इतिहास के निर्माण में सिक्कों एवं महत्व का वर्णन कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

....

....

3. इतिहास के जानने में पुराणों की ऐतिहासिकता के महत्व का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

4.9 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डे, गोविन्द चन्द, इतिहास, स्वरूप एवं सिद्वान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर

2. चौबे, डॉ. झारखण्डे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी

3. सिंह, डॉ.परमानन्द, इतिहास–दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

इकाई : 05 – शोध विधि और इतिहास लेखन

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 विषय का चयन

5.3 परिकल्पना

5.4 विषय की रूपरेखा

5.6 शोध सामग्री का स्रोत

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 मूल स्रोत एवं प्रकार

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11 बोध प्रश्न

5.0 उद्देश्य

- इस इकाई में शोध विषय के विभिन्न आयामों एवं पहलुओं के विषय में जानेगें।
- इतिहास लेखन एवं शोध के सम्बन्धों के विषय में शिक्षार्थी जानेगें।

5.1 प्रस्तावना

शोध एक ऐसा विषय है जिसके विषय में अनेक प्रकार की अवधारणाएं एवं परिकल्पनाएं मान्य एवं प्रचलित है। शोध को एक ऐसे क्रिया–कलाप के

रूप में वर्णन किया जा सकता है जिसका उद्देश्य किसी वस्तु के नवीन पक्षों एवं पहलुओं को प्रकाशित करना है। किसी भी शोध का मूल होता है कि शोधार्थी का निष्कर्ष समाज के लिए कितना नवोन्मेषी तथा लाभदायक है। इतिहासकार बी शेख अली के अनुसार 'शोध वह क्रिया है जिसके द्वारा किसी नवीन विचार या ज्ञान विस्तार के लिए कुछ नवीन प्रयास किये जाते है। यह एक प्रयास है जिसके द्वारा सुसंगठित, सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्वता के चरणों को घ्यान में रखते हुए नवीन तथ्यों की खोज की जाती है या पूर्व ज्ञात तथ्यों के सन्दर्भ में नवीन अवधारणाएँ प्रतिपादित की जाती है।'

5.2 विषय का चयन

शोध करने वाले शोधकर्ता को सर्वप्रथम विषय एवं क्षेत्र का निर्धारण करना परम आवश्यक होता है। विषय को शोधकर्ता को अपनी रूचि एवं क्षमता के आधार पर चयन करना चाहिए। ज्ञान के विविध क्षेत्र है। और प्रत्येक क्षेत्र में शोध की आपार सम्भावनाएं रहती है। इतिहास के शोधकर्ता के लिए इतिहास के सम्बद्व विभिन्न आयाम हो सकते है। इस विषय में विभिन्न विश्वविद्यालयों में हुए शोध कार्यो की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। प्राप्त जानकारी के आधार शोध कार्य को आसानी से निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है। विषय का चयन हो जाने के बाद शोधकर्ता को तत्सम्बन्धी प्रकाशित–अप्रकाशित सामग्री का मनोयोगपूर्वक अध्ययन करना चााहिए। इससे उसकी रूपरेखा तथा स्पष्ट परिकल्पना का निर्धारण हो सकेगा। परिकल्पना विषय के सम्बन्घ में शोधकर्ता की इस धारणा को स्पष्ट करती है कि वह किस तथ्य या पक्ष को उद्घाटित करना चाहता है।

5.3 परिकल्पना

परिकल्पना एक विचार है जो परानुभव से उत्पन्न होता है। परिकल्पना के निर्माण के विभिन्न स्रोत हो सकते है।

5.4 विषय का रूपरेखा

विषय की परिकल्पना का निर्धारण करने के बाद उसकी रूपरेखा निर्धारण का कार्य आता है। रूपरेखा तो सम्बद्व साहित्य के अध्ययन के उपरान्त स्पष्ट होती है। शोधकर्ता अपने आवेदन पत्र के अस्थायी रूपरेखा प्रस्तुत करता है। जिसमें वह अध्यायो के शीर्षक और उसमें वार्णित प्रसंगों का उल्लेख करता है। कही–कही शोध प्रबन्ध जमा करने के साथ ही रूपरेखा दिये जाने का प्रावधान होता है। रूपेरखा विषय के शीर्षक के अनुसार तैयार की जाती है। प्रत्येक अध्याय केवल शीर्षक मात्र न होकर उसकी विषय वस्तु का निर्देशक भी है। रूपेरखा तैयार करने से पूर्व विषय पर प्रकाशित कार्य के अध्ययन से यह विदित होता है कि उस विषय पर कितना कार्य हो चुका है। और कितना किस दृष्टिकोण से कार्य होना शेष है। इस प्रकार के अध्ययन से शोध का लक्ष्य स्पष्ट हो जायेगा और रूपरेखा भी स्पष्ट रूप से तैयार की जा सकेगी।

5.6 शोध सामग्री के स्रोत–

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 मूल स्रोत एवं प्रकार

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

MAAH-107N/MAHY-111

इतिहास दर्शन एवं लेखन सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियां

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon Open University

खण्ड 2

इतिहास लेखन की परम्पराएँ

इकाई- 1

यूनानी इतिहास लेखन 49

इकाई- 2

इतिहास चिन्तन की परम्परा का विकास एवं क्षेत्र तथा महत्व 61

इकाई- 3

ईसाई इतिहास लेखन 69

इकाई- 4

भारतीय इतिहास लेखन 75

इकाई- 5

20 वीं शताब्दी से वर्तमान तक का इतिहास लेखन 84

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 पी0पी0 दूबे	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (1,2,3 खंड)
प्रो0 एम0पी0 अहिरवार	आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी इकाई–1,2,3,4,5 (5खंड)
डॉ. रमाकान्त सिंह	सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (4,6 खंड)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, म0जो0फुले रु0वि0वि0, बरेली (इकाई 1–30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष – 2022

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–2810 03

इकाई : 01 –यूनानी इतिहास लेखन

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 यूनानी इतिहास लेखन की परम्परा

1.3 यूनानी इतिहास लेखन की विशेषताएं

1.4 लोगोग्राफी का उदय

1.5 प्रमुख यूनानी इतिहासकार

1.5.1 हिकेटियस

1.5.2 हेराडोटस

1.5.3 थ्यूसीडाइडीज

1.5.4 पोलिबियस

1.5.5 जेनोफोन

1.5.6 हेसियड

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 बोध प्रश्न

1.9 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

- यूनानी इतिहासकारों के विषय में जानकारी प्राप्त करेगें।
- इतिहास लेखन के क्षेत्र में यूनानियों के दृष्टिकोण को जानेगें।
- इतिहासकारों के इतिहास लेखन की दृष्टि का भी अवलोकन करेगें।

1.1 प्रस्तावना

विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में यूनान की संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। इतिहास लेखन में यूनानियों का महत्वपूर्ण योगदान है। इतिहास मानव विकास यात्रा का क्रमबद्व संकलन है। इतिहास में सामाजिक आवश्यकताओं एवं मूल्यों के अनुसार परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यूनानी लेखकों का ध्यान समकालीन लेखन के साथ साहित्यिक रचना पर ज्यादा केन्द्रित था।

1.2 यूनानी इतिहास लेखन की परम्परा

इतिहास लेखन की परम्परा एवं प्रविधियाँ प्रत्येक देश और काल में सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं मूल्यों के आधार पर विकसित होती रही है। विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में यूनान की संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। इतिहास लेखन के क्षेत्र में उनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतीत के सम्बंध में यूनानियों की रूचि एक लम्बे समय तक ट्रोजन युद्ध तथा उस युद्ध से जुड़े नायको के बारे में प्रचलित आख्यानों और मिथको तक ही समिति थी। अनेक लेखकों ने इन गाथाओं को व्यवस्थित रूप देने का भी प्रयास किया। इतिहास को लिपिबद्ध करने की जागरूकता जब यूनानियों में उत्पन्न हुई तब अपना प्रारम्भिक इतिहास उन्होने पूर्णताः निश्चित रूप से यूनानियों में इतिहास लेखन प्रारंम्भ किया यह कहना कठिन है। 600ई0पू0 के अन्त के पहले सम्भवतः किसी व्यक्ति में भी ऐतिहासिक घटनाओं को लिपिबद्ध करने का प्रयास नहीं किया एवं प्रथम इतिहास ग्रंथ जो आज पूर्णतः सुरक्षित है।

यूनान में हिस्तोरे शब्द का प्रयोग आपसी विवाद को निपटाने के अर्थ में प्रयोग हुआ है। यूनान में काल्पनिक ज्ञान को डोक्सा एवं वास्तविक ज्ञान को एपिस्टोमी कहा जाता था। यूनान की इतिहास परम्परा का विकास इन्ही परम्पराओं के आधार पर विकसित एवं प्रचलित रहा है। यूनानी इतिहास परम्परा में हेसियड नामक इतिहासकार ने युग चक्र का सिद्वान्त का प्रतिपादन का आधार चार धातुओं के आधार पर किया था जिसका विवरण निम्नवत है–

1. **स्वर्ण युग**– यह वह युग था क्रोनोस का स्वर्ग में शासन स्थापित था। मानव एवं देवताओं के मध्य समन्वय एवं साथ–साथ कार्य किये जाने का विवरण प्राप्त होता है।

2. **रजत युग**– यह युग हीनता की ओर अग्रसर हो रहा था। मानव पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। मानव के मन–मस्तिष्क में देवताओं के प्रति उदासीनता का भाव पैदा होने लगा था।

3. **कांस्य युग**– यह युग मानवीय मूल्यों एवं गुणों के पतन का काल था। मानव के मन में दया,करूणा आदि जैसे मूल्यो का अभाव था।

4. **लौह युग**–यह युग ट्राय एवं थेबीज के युद्वों में लोगों ने प्रतिभाग किया था। इस युग का मानव दुःखों से युक्त नही था।

युगचक्र का यह सद्वान्त एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह सिद्वान्त लगभग सभी संस्कृतियों में कुछ परिवर्तनों के साथ प्राप्त होता है। भारतीय परम्परा में यह सिद्वान्त कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग नामक चार युगों में विभाजित है।

1.3 यूनानी इतिहास लेखन की विशेषताएं–

1.4 लोगोग्राफी का उदय

विश्व इतिहास में छठी शताब्दी ई.पू. एक महान क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए प्रसिद्व है जिसमे यूनानी चिन्तन कल्पना प्रधान के स्थान पर चिन्तन प्रधान की ओर अग्रसर होने लगा था। यूनानी परम्परा में पुरोहितों, न्यायाधीशों, एवं उच्च अधिकारियों की तालिकाओं, राजाओं की वंश परम्परा आदि लेखों को सुरक्षित एवं संरक्षित रखने की प्रवृति प्रबल होने लगी थी। यूनानी चिन्तन परम्परा में प्राचीन विश्वासों को तर्को के आधार पर परीक्षण करने की प्रक्रिया का सूत्रपात दिखाई देता है। लोगों में तर्क एवं सत्य के आधार पर घटनाओं को स्वीकार करने की प्रबल प्रवृति दिखाई देती है। यह काल निश्चित रूप से अनेक दृष्टियो से बौद्विक परिवर्तन का काल था, जहाँ प्राचीन मूल्यों एवं मान्यताओं के स्थान पर तर्क एवं वैज्ञानिकता पर बल दिया गया था। यूनान में प्रत्यक्ष अनुसंधान के महत्व पर बल दिया गया एवं इतिहास के मूल अर्थ पर बल दिया गया, जो सरल गद्य में नगरों, लोगों, मंदिरों आदि के अनुभव से संबंधित मौखिक परंपराओं और जनश्रुतियों को प्रस्तुत करते है। इस शैली में लिखने वाले को लोगोग्राफर कहा जाता था। हेकाटियस, हेलेनिकस शारोन और डायोनिसियस महत्वपूर्ण लोगोग्राफर हुए। लोगोग्राफर मिथक से इतिहास में संक्रमण के बिंदु पर स्थित है। उनकी प्रस्तुति का विषय स्थानीय मिथक होता था। सार्वजनिक उत्सवों के अवसर पर लोगोग्राफर की कलात्मक रचनाओं का सार्वजनिक एवं कलात्मक शैली में वाचन होता था। पांचवी सदी ई.पू. में हेरोडोटस और थ्यूसीडाइडिस के कार्यो में लोगोग्राफी पूर्ण इतिहास के रूप में विकसित दिखाई देती है।

1.5 प्रमुख यूनानी इतिहासकार

1.5.1 हिकेटियस

मिलेटस के हेकेटियस का जन्म ई.पू. 549–466 में हुआ था। उसके द्वारा लिखित प्रथम कृति 'विश्व का पर्यटन' है जिसमें फारस यात्रा का वर्णन है। उसकी द्वितीय कृति 'स्थानीय वंशावालियों' का ग्रंथ में प्राचीन आख्यानों की आलोचना प्रस्तुत की गयी है। इसकी दोनों पुस्तकें उसके द्वारा प्रतिपादित इतिहास लेखन के दो सिद्धान्त (i) सच्चाई। (ii) पारम्परिक आख्यानों का आलोचनात्मक परीक्षण। हेकेटियस के स्वयं के शब्दों में, "मैं उसी चीज को लिखता हूँ जिसे मैं सत्य समझता हूँ क्योंकि यूनानियों की अनेक कहानियाँ है जो मुझे हास्यास्पद लगती है" वस्तुतः हेकेटियस की उक्त दोनों कृतियां मूलतः इतिहास के रूप में प्रतिस्थापित भले ही न हो पाई हो मगर इतिहास तत्व की रक्षा इसमें निहित है। हेकेटियस यूनान का पहला इतिहासकार है जिसने इतिहास लेखन में आधुनिक इतिहास लेखन का मार्ग प्रशस्त किया। उसने पद्य की अपेक्षा गद्य में इतिहास लेखन के महत्व को बल प्रदान किया है। उसने इतिहास लेखन को एक नई दिशा प्रदान किया।

1.5.2 हेरोडोटस

यूनानी चिन्तन परम्परा एवं इतिहास के जनक हेरोडोटस का जन्म 480 ई.पू. एशिया माइनर के हेलिकारनेसस के एक उच्च्व परिवार में हुआ था। उच्च्व कुलीन परिवार में जन्म होने के बाद भी उन्हे देश से निष्कासित कर दिया गया था। उसने सर्वप्रथम हिस्ट्री शब्द का प्रयोग अनुसंधान अथवा गवेषणा के अर्थ में किया था। यूनानी जाति की अद्ष्य ज्ञान पिपासा और अनुसंधित्सा हिस्ट्री की परिभाषा से प्रथम बार प्रस्फुटित हो उठी। उसने अपने ऐतिहासिक विवरण में संसार के भिन्न–भिन्न राष्ट्रो के इतिहास का विवरण दिया है। उसकी इतिहास सम्बन्धी अवधारणा मानववादी थी। वह कार्यो के पीछे मानवीय क्रिया–कलापों के महत्व को स्वीकार करता है। आर.जी.

कालिंगवुड के अनुसार हेरोडोटस ने प्राकृतिक नियमों को इतिहास में प्रधानता दी। उन्होनें मानवीय कार्य व्यापार को प्रकृति, भौगोलिक परिस्थिति एवं वातावरण के सापेक्ष में भी देखने की कोशिश की। अपने विवरणों को अधिक सरल बनाने के लिए उसने कथा, कहानियाँ एवं आख्यानों का भी सहारा लिया था। यही कारण है कि आज भी हेरोडोटस को कथात्मक इतिहास का विद्वान तथा आदर्श माना जाता है। उन्होने अपने ग्रंथ हिस्टोरिका का मुख्य विषय यूनानियों द्वारा महान पारसीक साम्राज्य का पराजय चुना। इस विषय की विस्तारपूर्वक विवेचना के लिये वह युद्ध से साठ वर्ष की घटनाओं के वर्णन से इतिहास प्रारंभ करता है। ग्रंथ के प्रथम अर्द्धभाग में पारसीक साम्राज्य के उदय के वर्णन के साथ–साथ एशिया, मिस्त्र, मध्य एशिया और लीबिया में निवास करने वाली विभिन्न जातियों की रीति–रिवाजों का भी उल्लेख मिलता है। ग्रंथ के दूसरे भाग में उसने 499 ई0पू0 के आयोनियन विद्रोह से लेकर 479ई0पू0 में पर्शियन राजा जरक्सीज के यूनान आक्रमण तक पारसीक यूनान संघर्ष का विवरण मिलता है। विभिन्न रीति–रिवाजों अनुष्ठानों धार्मिक विश्वासों आदि के सम्बंध में जो भी सूचनाएँ उसे प्राप्त होती थी। वह उन्हे वैसा ही सामान्यतः प्रस्तुत कर देता था। एक स्थल पर वह कहता है कि यह मेरा कर्तव्य है कि जो भी सूचनाएँ मुझे दी जाती है, मैं उन्हे आपके समझ प्रस्तुत करूँ एवं उस पर विश्वास किया जाये अथवा नहीं उससे मुझे कुछ लेना–देना नहीं है। वह भारत की एक जनजाति का विवरण देता है जिनके इतने बड़े कान होते थे जिससे वे अपने सम्पूर्ण शरीर को लपेट लेते थे। मानव के द्वारा किये गये कार्यो के पीछे विद्यमान कारणों की खोज उसके इतिहास लेखन में दृष्टिगत होता है। उसने तथ्यों की छानबीन किये बिना मात्र कानों से सुनकर घटनाओं का संकलन किया। उसकी दृष्टि आलोचनात्मक थी।

1.5.3 थ्यूसीडाइडीस

यूनान की इतिहास लेखन परम्परा में थ्यूसीडाइडिस का महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय स्थान है। उसकी इतिहास दृष्टिकोण हेरोडोटस से अलग थी। उसने इतिहास लेखन में काव्यगत एवं अलौकिकता का अभाव दृष्टिगत होता है। यही कारण है कि यूनानी इतिहास लेखन की परम्परा में थ्यूसीडाइडीस को हेरोडोटस का उत्तराधिकारी नहीं माना जाता है। आर.जी. कालिंगवुड के अनुसार हेरोडोटस इतिहास के जन्मदाता हो सकते है। मगर मनोवैज्ञानिक इतिहास के जनक थ्यूसीडाइडिस ही है। उसने तथ्यो की यथार्थता पर बल देते हुए इतिहास में विश्वसनीयता लाने का आग्रह किया। जहाँ इतिहास के जनक हेरोडोटस का आग्रह रोचक विधि से घटनाओं के प्रस्तुतिकरण में था, वही थ्यूसीडाइडिस ने इतिहास के शिक्षात्मक पहलू पर जोर दिया। इतिहास लेखन की परम्परा में थ्यूसीडाइडिस का सर्वप्रमुख योगदान यह है कि उसने अपने इतिहास लेखन में एक प्रणाली विज्ञान का अनुप्रयोग किया। वह स्वयं को मुख्य विषय पर केन्द्रित रखता था, तथ्यों का संकलन कर मुख्य विषय से सम्बद्ध तथ्यों का चयन करता था। प्रो. शाटवेल के अनुसार ''थ्यूसीडाइडिस तथ्यों के जगत में परिभ्रमण करता था।'' वस्तुतः आज भी कई विद्वान तथ्य को इतिहास मानते हैं। 19वीं शताब्दी तो तथ्यों की दृष्टि से महान थी, उस समय तो एक 'तथ्य सम्प्रदाय' ही अस्तित्व में था। वर्तमान में भी तथ्यो के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। ऐसे में आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व थ्यूसीडाइडिस द्वारा इतिहास लेखन में तथ्यों को प्रधानता देना निश्चित रूप से सराहनीय है। उसने अपना ध्यान पूर्णतः समकालीन इतिहास लेखन पर केन्द्रित किया। विभिन्न महत्वपूर्ण स्रोतों से सामग्री एकत्रित करके उसने स्पार्टा और एथेंस के मध्य हुये पेलोपोनेशियन युद्ध के प्रथम बीस वर्षो का विवरण दिया। इतिहास लेखन के अपने उद्देश्य के विषय में लिखता है कि कथा कहना मेरा उद्देश्य नही है। उसके अभाव में सभवतः पढ़ने वाले को मेरी रचना रोचक न लगे। कितु यदि मेरी कृति का मूल्यांकन एक भी ऐसे व्यक्ति के द्वारा किया जाता है जो घटी हुई घटना की सत्यता की गहराई में

जाने के साथ–साथ यह भी जानने के लिये उत्सुक है कि भविष्य में वही परिस्थितियों पुनश्य उत्पन्न होने पर क्या होगा। मैं अपने परिश्रम को सार्थक स्वीकार करूँगा। पेलोपोनेशियन युद्ध के प्रारम्भ के समय थ्यूसीडाइडीज एथेंस में था। एथेंस की ओर से समुद्री सेना के नायक के रूप में भी लड़ा था। पेलोपोनीशियन युद्ध के दौरान स्पार्टा के सेनापति ब्रासिदास ने बिना किसी विरोध के सरलता से ऑफीपोलिस पर अधिकारी स्थापित कर लिया था। एथेसवासियों ने इस पराजय के लिये दोषी थ्यूसीडाइडीज को ठहराया जो उस समय अपनी नौसेना के साथ थोसोस में था। 424ई0पू0 में उसे निर्वासित कर दिया गया। लगभग 20 वर्ष तक वह इधर–उधर घूमता रहा। निर्वासन काल ने उसे पेलोपोनेसियन युद्ध में एथेंस के शत्रु स्पार्टा और उसके सहयोगी राज्यों की यात्रा का अवसर प्रदान किया। इस अवसर का लाभ थ्यूसीडाहडीज ने अपने इतिहास ग्रन्थ की सामग्री संलकन के लिये उठाया। उस प्रकार पेलोपोनेसियन युद्ध में भाग लेने वाले दोनों पक्षो के दृष्टिकोण को निकटता से जानने के कारण तथ्यों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करने में उसे सहायता मिली। हेरोडोटस ने जहॉ अपने इतिहास ग्रन्थ में होमर की परंपरा को अपनाकर सरल सुग्राहा और रोचक वर्णन को प्राथमिता दी। थ्यूसीडाइडीज ने दार्शनिकों, वक्ताओं और समकालीन नाटककारों का अनुसरण कर सारगार्भित शैली को प्रधानता दी। उसका उद्देश्य घटना के कारण विकास और परिणाम को प्रस्तुत करना था। परिणाम को वह भाग्य और देवी कारणों से नहीं बल्कि ऐतिहासिक कारणों से जोड़ता था। हेरोडोटस ने विभिन्न मानव समुदायों की संस्कृति पर भी लिखा किन्तु थ्यूसीडाइडीज के बल राजनीतिक और सामारिक घटनाओं के वर्णन से संतुष्टि था। दोनों इतिहासकारों को इतिहास लिखने में अपने निर्वासन का लाभ मिला। आधुनिक युग के मानदण्ड से भी थ्यूसीडाइडीज एक वैज्ञानिक इतिहासकार माना जायेगा।

1.5.4 पालिबियस

पालिबियस इतिहास लेखन की ग्रीको–रोमन परम्परा का प्रमुख प्रतिनिधि था। उसका जन्म 198 ई0 पू0 यूनान के मोगालोपोलिस नामक स्थान पर हुआ था। कालान्तर में 168 ई0 पू0 पिडना के एक युद्व में युद्धबन्दी के रूप में उसे रोम ले जाया गया। रोम में पहुँचकर सीपियो के सम्पर्क में आने के पश्चात ही उसे इतिहास लेखन की प्रेरणा प्राप्त हुई। एवं इतिहास रचना का कार्य प्रारम्भ किया। उसने अपनी कृति 'इतिहास जो कि 40 जिल्दों में है, में 164 ई0 पू0 तक रोमन साम्राज्य के इतिहास और संवैधानिक विकास पर अपना यह ग्रन्थ इतिहास लिखा है। इसमें रोम एवं यूनान दोनो राज्यों के तथ्यपरक एवं निष्पक्ष इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। उसके लेखन में तथ्य एवं सत्य पर बल दिया गया है। तथ्यो की प्रामाणिकता एवं तटस्थता का भाव उसके लेखन में दिखाई देता है। पालिबियस ने इतिहास की अवधारणा को सार्वभौमिक माना है। उसका मानना था कि अतीत की घटनाओं से शिक्षा लेकर मनुष्य अपने चरित्र से सुधार कर सकता है। वह भाग्य के स्थान पर मानवीय इच्छाशाक्ति की प्रबलता में विश्वास करता था। उसके अनुसार जीवन में सुख–दुःख काल एवं परिस्थितियों पर आधारित होता है। वह इतिहास में युग चक्रवादी सिद्वान्त के महत्व को स्वीकार करता है।

1.5.5 जेनोफोन

जेनोफोन एक महत्वपूर्ण इतिहास लेखक हुआ। उसकी प्रमुख रचना एनाबेसिस है जिसमे संस्मरण का विवरण प्राप्त होता है। उसके द्वारा लिखित पुस्तक हेलोनिका में 411ई. से 363ई. तक की घटनाओं का वर्णन है। जेनोफोन ने अनेक ग्रथं लिखे। राजनीतिक इतिहास के क्षेत्र में उसकी रचना अनावासिस का उल्लेख किया जा सकता है। इस ग्रथं में उसने पोखोपीनी सोस युद्ध का वर्णन जहॉ थ्यूसीडाइडीज ने छोड़ा था वहॉ से प्रारम्भ कर 362ई0पू0 तक की घटनाओं का उल्लेख किया है। उसका यह ग्रथं नीरस

इतिवृत्त के रूप में है जिसमें मात्र युद्धों की अविछिन्न श्रृखंला तथा विजयों और पराजय का वर्णन है।

1.5.6 हेसियड

हेसियड यूनान का महत्वपूर्ण लेखक है जिसके अध्ययन का मुख्य विषय धर्म रहा है। उसने ईश्वर के जन्म एवं जनता के प्रति व्यवहार का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है। उसने सर्वप्रथम चार धातुओं के आधार चार युग चक्र सिद्वान्त की परिकल्पना किया था। इतिहासकारों की कृतियों के साथ–साथ यूनान के प्रारम्भिक इतिहास की रचना के लिये हेसियड द्वारा रचित दो काव्य ग्रंथों तथा अनगिनत अवशिष्ट काव्याशों का उल्लेख किया जा सकता है। इस रचना से हमें सातवी शताब्दी ई0पू0 की यूनानी मानसिकता का पता चलता है।

1.6 सारांश

यूनान का इतिहास–लेखन के क्षेत्र एक अद्वितीय योगदान है। यूनान में बौद्विक क्रियाकलापों की अभिव्यक्ति के साधन के रूप में इतिहास नामक ज्ञान की एक श्रृंखला की उत्पत्ति हुई। लेखन की परम्परा अनेक इतिहासकारों के काल में विकसित हुई। इतिहासकारों ने इतिहास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों एवं घटकों का वर्णन किया है।

1.7 शब्दावली

- **हिस्तोरे**– आपसी विवाद को निपटाने के अर्थ में प्रयोग हुआ है।
- **डोक्सा**–काल्पनिक ज्ञान
- **एपिस्टोमी**–वास्तविक ज्ञान

1.8 बोध प्रश्न

1. यूनान में इतिहास लेखन परम्परा के विभिन्न आयामों का वर्णन करें।

....

....

....

....

....

2. इतिहास लेखन मे यूनानियों के योगदान का वर्णन करें।

....

....

....

....

....

....

3. हेरोडोटस के इतिहास–लेखन की दृष्टिकोण का वर्णन करें।

....

....

....

....

....

....

4. थ्यूसीडाइडीज के इतिहास दर्शन का वर्णन करें।

....

....

....

....

....

5. पालिबियस के इतिहास लेखन पर टिप्पणी लिखें।

....

....

....

....

....

1.9 सहायक ग्रन्थ

1 श्रीधरन, ई. इतिहास लेख, ओरियन्ट ब्लैकश्वान,नई दिल्ली, 2011

2. बुद्वप्रकाश,इतिहास दर्शन,प्रयाग,1962

3. सिंह परमानन्द,इतिहास दर्शन,मोतीलाल बनारसी दास,नई दिल्ली,2000

4. पाण्डे,गोविन्द चन्द्र,इतिहासःस्वरूप और सिद्वान्त,राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर,1973

5. कार,ई.एच.,इतिहास क्या है,अनु.अशोक चक्रधर मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड,नई दिल्ली,1993

इकाई : 02 – चीनी इतिहास लेखन

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 चीनी इतिहास लेखन की परम्परा

2.3 चीनी इतिहास लेखन की विशेषताएं

2.4 प्रमुख चीनी इतिहासकार

2.4.1 कन्यूसियस

2.4.2 सूमा चियन

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 बोध प्रश्न

2.8 सहायक ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

शिक्षार्थी अध्ययन के उपरान्त जान सकेगें–

- चीनी इतिहास लेखन की परम्परा के विषय में।
- चीनी इतिहास लेखन के प्रमुख तत्वों के बारे में।
- प्रमुख चीनी इतिहासकारों के विषय में।

2.1 प्रस्तावना

चीन की सभ्यता संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक मानी जाती है। चीनी चिन्तन परम्परा में ली की अवधारणा अत्यन्त प्रासंगिक है। ली का प्रयोग प्रारम्भ में केवल अनुष्ठानात्मक कार्यो के लिए किया जाता था। बाद में इसका अर्थ अनेक सन्दर्भो में लिया जाने लगा था। सुखी एवं व्यवस्थित जीवन के लिए ली का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। चीन के इतिहास में दो प्रमुख तत्वों का विशेष स्थान है (1) उपयोगितावादी चीनी दर्शन (2) चीनी संस्कृति का केन्द्र मनुष्य तथा समाज। चीनी संस्कृति में अतीत के प्रति अत्यन्त प्रबल आस्था का संकेत मिलता है। उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य को अपनी परम्परा तथा मूल्य से परिचित होना चाहिए। चीनी परम्परा में यह मान्यता है कि मनुष्य के अन्दर दो प्रकार की आत्माएं निहित है। (1) पो–यह शव के साथ कब्र में रहती है। (2) हुन–यह थ्यान के महत्व की ओर बढ़ती है। चीनी संस्कृति की प्रकृति तथा समाज विषयक दृष्टिकोण ऐतिहासिक है। थ्यान के आदेश तथा उनके अनुसार चिन तथा याड़ की प्रक्रियाएं इतिहास में गतिमान होती है। कन्फ्यूशियस ने इतिहास की पृष्ठभूमि में अपनी विचारधारा को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार प्रकृति तथा समाज की विकासशील व्यवस्था इतिहास में परिलक्षित होती है। चीनी दृष्टि के अनुसार इतिहास एक नैतिक प्रक्रिया है। प्रत्येक राजवंश ने अपना पूर्ण वृत्त सुरक्षित रखा है। चीनी इतिहास लेखन में किसी प्रकार का बाहरी प्रभाव दृष्टिगत नही होता है। चीनी विचारधारा को प्रभावित करने और इतिहास के व्यवहार के अनुकूल बनाने में परिस्थितियों की बहुत भूमिका रही है।

2.2 चीनी इतिहास–लेखन की परम्परा

चीनी चिन्तन परम्परा में ली की अवधारणा अत्यन्त प्रासंगिक है। ली का प्रयोग प्रारम्भ में केवल अनुष्ठानात्मक कार्यो के लिए किया जाता था। बाद में इसका अर्थ अनेक सन्दर्भो में लिया जाने लगा था। सुखी एवं व्यवस्थित जीवन के लिए ली का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। चीनी इतिहास लेखन के

स्रोत एवं प्रणाली अत्यन्त प्रामणिक तथा प्रासंगिक है। इन स्रोतों के आधार पर चीन के इतिहास तथा संस्कृति का सम्यक् निरूपण किया जा सकता है। चीन सभ्यता संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं में एक है जिसकी परम्परा एवं अतीत के प्रति एक प्रबल आस्था एवं विश्वास दृष्टिगत होता है। तत्कालीन अनेक अभिलेखों एवं साहित्यिक स्रोतों के आधार पर इतिहास लेखन में सहायता मिलती है। अभिलेख से जहाँ एक ओर राजाओं की साम्राज्य–विस्तार की जानकारी प्राप्त होती है, वही दूसरी तरफ उनके विचारो की भी जानकारी प्राप्त होती है। यूरोपीय इतिहास लेखन की परम्परा पर चीन की साहित्यिक परम्परा अत्यन्त मानक के रूप में दृष्टिगत होती है। बिल डयूरा ने लिखा है कि चीन में इतिहास उद्योग से उठकर कला का दर्जा नही पा सका। सू–मा–चियन आदि जैसे अनेको चीनी इतिहासकारों ने शैली की सुदरता की चिन्ता नही की और उन्हे अपनी ऊर्जा सत्य पर खर्च की सुदरता वे लिए कुछ नही छोड़ा। शायद यह सोच कर कि इतिहास को विज्ञान होना चाहिए। कला नहीं।

2.3 चीनी इतिहास लेखन की विशेषताएं

चीनी इतिहास लेखन की परम्परा अत्यन्त प्रबल रही है। इतिहास लेखन के क्षेत्र में अनेक विविध विधाओं एवं पद्वतियों का समावेश दिखाई देता है। इतिहास लेखन के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन एवं प्रकार दृष्टिगत होते है।

2.4 प्रमुख चीनी इतिहासकार

2.4.1 कनफ्यूशियस (551–478ई0ई0)

चीनी प्राच्य विद्या का जनक सू–मा–चियन को माना जाता है। इसका जन्म 145 ई.पू. में हुआ था। उसका पिता वू–ती के दरबार में ज्योतिषी के रूप में कार्य करता था। वह बचपन से ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्वि का बालक था। उसे बचपन से ही प्राचीन ग्रन्थों एवं पुस्तकों को पढ़ने का शौक था जिसके कारण उसने प्राचीन धर्म ग्रन्थों को कंठस्थ कर लिया था। उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उसके पिता की मृत्यु के बाद उसे वू–ती के दरबार

में ज्योतिषी के रूप में नियुक्त किया गया। उसने 100 ई.पू. में इतिहासकारों का दस्तावेज नामक एक ग्रन्थ का प्रणयन किया। इस ग्रन्थ के प्रणयन में उसने अनेक प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त ज्ञान किया तथा यात्रा–भ्रमण के दौरान प्राप्त अनुभवों के आधार पर इस ग्रन्थ को अन्तिम रूप दिया। इस ग्रन्थ में उसने चीन के प्रारम्भिक काल से लेकर अपने समय तक की घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में राजनीतिक इतिहास तथा आर्थिक तत्वों के साथ महत्वपूर्ण व्यक्तियों के जीवन गाथाओं का वर्णन किया गया है। चीनी लोग अपना इतिहास 300ई0पू0 तक पुराना होने का दावा करते है, लेकिन 776ई0पू0 के पहले की घटनाएँ पूर्णतया प्रमाणिक नही मानी जा सकती। अतीत के लिए श्रद्धा बढ़ाने और पूर्वजों द्वारा प्रस्तुत उदाहरण के प्रति सम्मान पैदा करने के लिए कनफ्यूशियस ने इतिहास की महत्ता पर विशेष बल दिया। उसके पाठ्यक्रम में विषय थे, इतिहास, काव्य और नैतिक शिष्टाचार के नियम आदि सम्मिलित थे। उसने स्वलिखित और संपादित फाइव चिंग या धर्म वैधानिक सिद्धान्त नामक ग्रन्थ विरासत के रूप में छोड़ा, जिन्हे अब भी स्वर्ण युग को प्रतिबिम्बित करने वाला ग्रन्थ माना जाता है। इनमें दो पुस्तको को पाँचवी व छठी का ऐतिहासिक कृति माना जाता है। चौथी पुस्तक चुन चिय या स्प्रिंग एंड और ऐनल्स कनफ्यूशियस के अपने राज्य लू0 में 722–484 ई0पू0 की अवधि में जिनमें बारह डयूको के शासन काल का संक्षिप्त वृतात है। ऐनल्स नैतिक शिष्टचार की दिशा निर्देशक पुस्तक भी थी। पाँचवी पुस्तक शूचिंग या बुक ऑफ हिस्ट्री या बुक ऑफ डॉक्युमेटस राजकीय भाषणों आदेश पत्रों संस्मृतियों, सामंती अभिलेखों आदि का संग्रह है। इसके आधार पर महान गुरू ने अपने शिष्यों को प्रारम्भिक शासनों की महत्वपूर्ण घटनाओं के लिए प्रेरित करने की कोशिश की थी। कन्फ्यूशियस की दृष्टि में इसी युग में वीर और निःस्वार्थी नायको ने चीन में एकता स्थापित कर उसे सभ्य बनाया जैसे महान राजा बनाया जिसने सौ साल तक राज किया। लेकिन कन्फ्यूशियस को ऐसा इतिहाससकार नही माना जा सकता जो अतीत का वर्णन करता हो क्योंकि वह अपने लेखन में

नैतिक और बुद्धिमानी को प्रोत्साहन देने के लिए काल्पनिक भाषाणों और कहानियों का सहारा लेता था। वह जनश्रुति और इतिहास को जान बूझकर चुनी हुई कहानिये के जरिये अपने शिष्यों को प्रेरित करने के भाव से देश के अतीत का आदर्श चिन्तन वाला शिक्षक था। लेकिन इतिहास की प्रतिष्ठा बढ़ाकर उसने उसके अध्ययन और लेखन को बढ़ावा दिया। चीन में इतिहास लेखन एक प्रतिष्ठित गतिविधि बन गया था। और कनफ्यूशियस तथा महान स्जूमा चियन के बीच के 400 सालो में उसमें तीव्र प्रगति हुई। इस काल के दो कार्यो का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें पहला व्जो–चुआन है जो कनफ्यूशियस की मृत्यु के 100 साल बाद उसकी **बुक ऑफ हिस्ट्री** को समझाने और जीवंत बनाने के लिए लिखी गई टिप्पणी है। दूसरी किताब **पैपल ऑफ द बम्बू बुक्स** बेई के एक राजा के मकबरे में मिली।

2.4.2 सू–मा–चियन

सु–मा–चियन को चीनी इतिहास का जनक कहा जाता है। उसका जन्म 145 ई.पू. में हुआ था। वह बचपन से ही प्राचीन शास्त्रों के प्रति अत्यन्त आकृष्ट था। उसने इतिहासकार का दस्तावेज नामक ग्रन्थ लिखा था। इस ग्रन्थ में उसने राजनीतिक घटनाओं, आर्थिक तत्वों सहित अनेक महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डाला है। कन्फ्यूशियस ने चीनी इतिहास को एक उच्च नैतिक स्थान तथा स्वर दिया जिसने नव–कनफ्यूशियस दार्शानिको को प्रेरित किया कि निकट अतीत के यथार्थ की कीमत पर नैतिक मानदण्डों पर जोर दे। इसके विपरीत अतीत के यथार्थ और इतिहास एवं नौकरीशाही के संबंध में शाक्तिग्रहण करने वाला इतिहासकार होता था। कनफ्यूशियस के अनुसार नौकारशाही और शासक समूह के स्वार्थो की सेवा करने वाला इतिहास घातक हो सकता है। लेकिन सावधान संगठन और सामग्रियों के बचाव पर नौकरशाही के जोर देने से हमारे पास व्यौरेवार सुगठित स्रोत शेष रह पाए है। स्जूमा चियन अतीत के यथार्थ पर आधारित इतिहास की का जनक थी।

हान सम्राट वू के दरबार में प्रतिष्ठित इतिहासकार ज्योतिषी स्जूमा तान का बेटा सूमा चियन था। प्रशासनिक सेवा में प्रवेश के पूर्व युवा स्जूमा ने अनेक यात्राएं की। प्रमुख इतिहासकार ज्योतिषी के रूप में वह अपने पिता का उत्तराधिकारी बना। उसके पिता की अन्तिम अंतिम इच्छा थी कि उसका बेटा उसके द्वारा आरम्भ किए गए ऐतिहासिक अभिलेख को पूरा करें। लेकिन तब संकट आ पड़ा जब एक पराजित सेनापति की सहायता के कारण उसे सम्राट वू के क्रोध का शिकार बनना पड़ा। मृत्यु के एवज में स्जूमा चियन ने बधियाकरण की सबसे खराब सजा कबूल की ताकि वह शिह ची को पूरा करने के लिए जीवित रह सके। उसने पहले पंचांग मे ंसुधार कि और जब जो कार्य पिता ने सौपा था उसे पूरा करने में जुट गया। उसके सर्वश्रेष्ठ कार्य शिह जी (ऐतिहासिक अभिलेख) में 5,26,000 चीनी चित्र लिपि इकाईयां है जिन्हे बाँस की तख्तियों पर धैर्यपूर्वक उकेरा गया है।

2.5 सारांश

चीनी की तरह किसी अन्य देश ने अतीत का इतना विशाल निरंतर विविधि और यथा तथ्य व्यौरा की तरह नही रखा है। इसमें शाही इतिहास, स्थानीय और राजवंशो के इतिहास गजर, चीन पर निर्भर राज्यों के इतिकृत चीन में बसे गैर चीनी लोगों के इतिहास विदेश संबधों के इतिहास और चीनी जीवन के विभिन्न पक्षो के विशेषज्ञ इतिहास शामिल है। फिर भी ऐतिहासिक मामलों में तुलना के लिए ही सही यूरोपीय इतिहासकारों और इतिहास के दार्शनिक ने चीन पर विचार करने की कृपा नही की हीगेल की फिलॉस की ऑफ हिल्टी 1830 ने पूर्व की शाश्वत जड़ता की चर्चा कर चीनी सभ्यता की जड़ और अप्रगतिशील प्रकृति के बारे में पश्चिम की थीसिस को क्लासिक अभिव्यक्ति दी। रैंक ने चीन को इतिहास के दायरे से यह कुछ कर बहिष्कृत कर दिया कि चीनी स्रोत मिथकीय अप्रामाणित, द्वितीयक या आश्रित और चीनी भाषा नही जानने वाले लोगों के लिए अनुपलब्ध है।

2.6 शब्दावली

हुन–यह थ्यान के महत्व की ओर बढ़ती

शिह जी (ऐतिहासिक अभिलेख)

2.7 बोध प्रश्न

1. चीनी इतिहास लेखन के विभिन्न चरणो का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2. इतिहास लेखन पर सू–मा–चियन के दृष्टिकोण का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

3. चीनी इतिहास लेखन की वर्तमान स्थिति का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2.8 सहायक ग्रन्थ

1 श्रीधरन, ई. इतिहास लेख, ओरियन्ट ब्लैकश्वान,नई दिल्ली, 2011

2. बुद्वप्रकाश, इतिहास दर्शन,प्रयाग,1962

3. सिंह परमानन्द, इतिहास दर्शन,मोतीलाल बनारसी दास,नई दिल्ली,2000

4.पाण्डे,गोविन्द चन्द्र,इतिहासः स्वरूप और सिद्वान्त,राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर,1973

5.कार, ई.एच.,इतिहास क्या है,अनु.अशोक चक्रधर मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड,नई दिल्ली,1993

इकाई : 03 – ईसाई इतिहास लेखन

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा

3.3 ईसाई इतिहास लेखन की विशेषताएं

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 बोध प्रश्न

3.7 सहायक ग्रन्थ

3.0 उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें–

- ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा के विषय में।
- ईसाई इतिहास लेखन के प्रमुख तत्वों के विषय में।
- प्रमुख इसाई इतिहासकारों के विषय में।

3.1 प्रस्तावना

ईसाई इतिहास लेखन परम्परा का आरम्भ यूनान के इतिहास लेखन से माना जाता है। ईसाई इतिहास लेखन में ओल्ड टेस्टामेंट का महत्वपूर्ण स्थान है। ईसाई धार्मिक परम्परा में इस ग्रन्थ को अत्यन्त पवित्र एवं पूज्यनीय माना जाता है। ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार के फलस्वरूप इसका स्थान धर्म

में ग्रहण कर लिया। ईसाई परम्परा का इतिहास लेखन यहूदियों के इतिहास लेखन की अपेक्षा काफी उच्चकोटि का था। किन्तु विधर्मी संस्कृति की निन्दा के बावजूद भी ईसाई उनके ऐतिहासिक दर्शन से काफी प्रभावित थे। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि ईसाई धर्म में परिवर्तन के पहले उनकी शिक्षा–दीक्षा विधर्मी संस्कृति में हुई थी। कुछ ईसाई पादरी शास्त्रीय भाषा का प्रयोग भी करते थे।

3.2 ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा

प्रारम्भिक ईसाई लेखको ने इतिहास की प्रक्रिया में एक दैवीय योजना की कल्पना की जिसमें मनुष्य और देवता समान रूप से भाग लेते थे। उन्होंने उसमें एक वास्ताविक गरिमा की कल्पना की जिसमें मानव की सृष्टि से लेकर उसके विमोचन तक की अवधि का अध्ययन किया जाता है। संत आगस्तायन ने अपनी पुस्तक देवनागरी में नेकी और बदी की शक्तियों के बीच संघर्ष की चर्चा की वस्तुतः उसने इसके माध्यम से विधर्मियों और ईसाईयों के बीच का संघर्ष बतलाया। उसका विचार था कि इस संघर्ष में ईसाईयों की विजय होगी। ईसाई इतिहासकारों ने यूनानी और रोमन इतिहासकारों की प्रणलियों को त्याग दिया। उन्होंने कागजातों को देखने में यूनानीयों की आलोचनात्मक पद्वति को नही अपनाया और गहन अर्थ की व्याख्या के लिए धार्मिक साहित्य का सहारा लिया। दूसरे शब्दो में उन्होंने इतिहास की व्याख्या में रूपक कथा का सहरा लिया। इस पद्धति कें मूलपाठ और अर्थ में विभिन्नता होती है। इस कोटि में ग्रेगोरी की पुस्तक Commentary on the book of Job और इसीडोर की पुस्तक Alegorial quaedam sacrae scripture का उल्लेखनीय है। इन ईसाई लेखकों में ऐतिहासिक दस्तावेजों की दो भागों में पवित्र और अपवित्र विभक्त किया है। इन्हें हम धार्मिक व धर्म–निरपेक्ष भी कहते है। ईसाई लेखको ने धार्मिक इतिहास पर अधिक ध्यान दिया। धार्मिक इतिहास के विवरण में देवी धरनाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। प्रो. शॉट वेल ने कहा है, "यह

दुःखद घटना थी कि इतिहास–लेखन में दैवी घटनाओं को स्थान दिया गया। इसमें वैज्ञानिक पद्धति का दम घुट गया। 19वी शाताब्दी में ही पुनः अपनाई गई" ईसाई इतिहासकारों ने यहूदियों के पवित्र ग्रंथो को सराकरी दस्तावेज के रूप में ग्रहण किया। उसके सामने ईसाई धर्म की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने की समस्या 36 खड़ी हुई। अतः उन्होंने अतीत के इतिहास का अध्ययन करने और गैर–यहूदी इतिहासकारों द्वारा धर्म की अपेक्षा करने के प्रश्नों पर ध्यान दिया।

3.3 जोसेफस

3.4 टैसिटस

3.5 सेक्सटस जूलियस एफीकैनस

3.6 सन्त अगस्तायन

आगस्तायन चौथी सदी के उत्तरार्द्ध और पांचवी सदी के पूर्वार्द्ध में एक महत्वपूर्ण ईसाई इतिहासकार था। पहले उसकी रूचि कविता में थी लेकिन बाद में धर्मग्रन्थ में अभिरूचि लेने लगा। वह एम्ब्रोस के प्रभाव में आकर ईसाई चर्च में शामिल हो गया। उसकी प्रमुख कृति देवनगर है। यद्यपि यह कोई ऐतिहासिक कृति नही है। यथपि इसमें इतिहास लेखन की विधि के बारे में बतलाया गया है। उसने 413ई0 में इस पर काम शुरू किया। उसने

यह बतलाया कि रोम में पतन के कारण रोम के देवताओं का अनादर और धर्मपरायणता का अभाव नही है। यह कृति बाईस ग्रन्थों में लिखी गई। इसमें उसने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि दुनिया का शासन देव–दानव द्वारा होता है जिसे उसने देव राज्य और दावन राज्य कहा है। उसने दोनों की उत्पत्ति क्रमशः Cain Abel बतलायी तथा कहा कि अंत में देव राज्य की विजय होगी। वस्तुतः उसने इस रूपक द्वारा यह स्पष्ट करना चाहा कि सत्य की विजय और असत्य की पराजय होती है।

आगस्तायन ने धर्मग्रन्थो को सहायता से अपनी कृति की रचना की। उसने चारो की पुरातन अनुश्रुति, सिसेरो के धर्म और दर्शन के सर्वेक्षण, लिवि की राम पर कृति और सालुस्ट के रोमन समान के विवरण की भी सहायता ली। यद्यपि आगस्तयन की कृति चर्च के महान पादरियों की महान कृति कही जाती है। तथापि प्रो0 शॉट बेल ने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसके कुछ दोषी की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इसमें ऐतिहासिक प्रवाह नही है। आगस्ताथन ने घटनाओं को उस रूप में नही देखा जिस रूप में वे घटती है अपितु उस रूप में देखा जिस रूप में वे उसकी योजना के अनुरूप होती है। उसकी कलतः शानदार छल–योजना स्पष्ट हो जाती है।

3.7 पॉलस ओरोसिपस

सन्त आगस्ताइन के बाद इतिहास लेखन में पालस ओरोसियस का स्थान महत्वपूर्ण है। वह सन्त अगस्ताइन का शिष्य था। उसकी मान्यता थी कि ईश्वर के द्वारा मनुष्य के भाग्य का निर्धारण होता है। वह पाँच वर्षो तक उसका शिष्य बना रहा। वह आगस्तायन के इतिहास के भाग्यवादी सिद्वान्त से काफी प्रभावित थां। आगस्तायन का विचार था कि गैर–यहूदी ईसाई आदि सभी के सभी ईश्वर द्वारा नियत्रित होते है। ओरोसिपस ने अपनी कृति की रचना हेरोडोटस पोलिवियस, लिवी आदि की कृतियों की सहायता ली है। उसने 411 और 418 के बीच अपनी प्रसिद्ध कृति अपने गुरू के सुझाव पर **सेवेन बुक्स आफ हिस्ट्री अगेन्स्ट दि पैगन्स** की रचना की थी। उसने विश्व

के भौगोलिक विवरण से अपनी रचना शुरू की। प्रो. वार्ने का कथन है कि उसके मानव इतिहास में अनेक देशो के इतिहास का कोई उल्लेख नही है। आरोसियस को गैर यहूदी संस्कृति का कोई ज्ञान नही था। उसने युद्ध विभीषिकाओं, दुर्भिक्ष, भूकम्प और बाढ़ के प्रकोप आदि का वर्णन किया है।

3.8 सन्त जेरोमे

सन्त जेरोमे का जन्म 340ई0 में दालमेशिया में हुआ था। लगभग तीन वर्ष की अवस्था में वह धर्म की ओर अग्रसर हो गया। और सन्यासी बना गया। उसने अपनी साधना काल में अध्ययन और धार्मिक ग्रंन्थो की अध्ययन की। 1391ई0 में उसने अपनी प्रसिद्ध कृति De viris illustrious sive de seribtoribus eeclesiastilicis की रचना की। इसमें उसने 130 ईसाई लेखको की आत्मकथा लिखी है। इस तरह उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि ईसाई धर्म में भी महान लेखक हुए है। 380 ई0 के बाद उसने यूसेबियस की पुस्तक क्रोनिकल का अनुवाद किया।

3.9 मार्क औरेलियस कैसीडोर

3.10 वेनरेबिल बेडे

3.11 ईसाई इतिहास लेखन की विशेषताएँ—

1. ईसाई इतिहासकारों ने विश्वजनीन इतिहास की रचना की है। यह गैर यहूदी विद्वानों के संकलन से भिन्न था। इस संकलन की पृणभूमि में यह दिखलाना था कि विविध तिथि परक घटनाओ ने ईसा के जन्म का प्रतिमान प्रस्तुत किया। ईसा के जन्म के पूर्व और पश्चात तिथिपरक घटनाओं का विवरण किया जाने लगा।

2. ईसाई इतिहासकारों की कृतियों में परमात्मा का विधान एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ये किसी कारण की व्याख्या मानवीय विवके के आधार पर नही अपितु घटनाओं के पूर्व–निर्धारण के आधार पर करते है। प्रो0 कॉलिगवुड ने इसे बड़े ही अच्छे ढंग से कहा है देवी इतिहास को ईश्वर कृत एक नाटक बदलाता है लेकिन यह एक ऐस नाटक है जिसका कोई पात्र प्रेणता का प्रिय पात्र नही है।
3. ईसाई लेखक ईसा के जीवन पर विशेष महत्व देते है और सारी घटनाओं को इससे जोड़ते है। उन्होने ईसा पूर्व और पश्चात् की घटनाओं की ईसा के जन्म से जोड़ा है। इसी आधार पर उन्होने इतिहास को अंधकार–युग और प्रकाश–युग में विभक्त किया है।
4. इतिहास को दो भागों में विभक्त करने बाद उन्होने इसे कई अन्य युगों या कालों में विभक्त किया प्रत्येक युग व काल की अपनी–अपनी विशेषताएँ है।

3.12 सारांश

3.13 शब्दावली

3.14 बोध प्रश्न

3.14 सहायक ग्रन्थ

इकाई : 04 – भारतीय इतिहास लेखन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा

4.2.1 वैदिक परम्परा

4.2.2 पुराण – इतिहास

4.2.3 महाकाव्य परम्परा

4.2.4 बौद्ध साहित्य

4.2.5 जैन साहित्य

4.3 प्रमुख इतिहासकारो का इतिहास लेखन के प्रति दृष्टिकोण

4.3.1 वाणभट्ट

4.3.2 विल्हण

4.3.3 संध्याकर नन्दिन

4.3.4 सोमेश्वर तृतीय

4.3.5 जगनिक

4.3.6 चन्द्रबरदाई

4.3.7 कल्हण

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 बोध प्रश्न

4.7 सहायक ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगे कि–

- भारत में इतिहास लेखन की परम्परा के विभिन्न आयामों के विषय में।
- भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा के विषय में विभ्मिन प्राचीन इतिहासकारो का दृष्टिकोण।

4.1 प्रस्तावना

अतीत कालीन घटनाओं का क्रमबद्व एवं व्यवस्थित विवरण इतिहास कहलाता है। भारत में इतिहास को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक अनुशासन के रूप में स्वीकार किया जाता है। इतिहास शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अथर्ववेद में प्राप्त होता है। जहाँ उसे परम सत्ता से जोड़कर देखा जाता है। भारत में इतिहास की अपनी सशक्त परम्परा रही है। यूरोपीय इतिहासकारो के साथ–साथ कुछ इतिहासकारो के एक वर्ग का मत है कि प्राचीन भारत में इतिहास चेतना का अभाव था। भारतीय मनीषी इतिहास–लेखन के प्रति उदासीन थे। वे आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवन की ओर ज्यादा उन्मुख थे। यही कारण है कि प्राचीन यूनान के हेरोडोटस या प्राचीन रोम के लिवी के समान प्राचीन भारत में कोई इतिहासकार नही मिलता। किन्तु यह कथन आंशिक सत्य है। किन्तु इस आधार पर यह कह देना गलत होगा कि भारत का अतीत ऐतिहासिक घटनाओं से शून्य था। .ए. के.वार्डर ने अपनी पुस्तक भारतीय इतिहास–लेखन का परिचय में कहा है ''वैदिक काल से आधुनिक काल तक भारतीय इतिहास में तारतम्यता है। अभी भी प्राचीन भारत का इतिहास पाडुलिपियों में बिखरा पड़ा है।'' डॉ.रमेश चन्द्र मजूमदार ने यह स्वीकार किया है कि प्राचीन भारतीय इतिहास–लेखन काल से सर्वथा अपरिचित नही थे। उदाहरण स्वरूप कल्हण की राजतरंगिणी में कश्मीर का इतिहास लिखा है। इस पुस्तक को लिखने के पहले उसने कश्मीर पर उचित न केवल ग्यारह इतिहास की पुस्तको का अध्ययन किया

बल्कि उसमें वर्णित ऐतिहासिक तथ्यों की अशुद्धियों को भी दूर किया। उसने राजाओ के अध्यादेशो और प्रशस्तियों का अध्ययन किया तथा तद्नुरूप ऐतिहासिक तथ्यों में सुधार किया। उसने यह भी बतलाया कि इतिहाकार को पूर्वाग्रहों से बचना चाहिए और निष्पक्ष ढंग से ऐतिहासिक तथ्यों का निरूपण करना चाहिए। इस तरह उसने इतिहास लेखन के क्षेत्र में एक मानक एवं सिद्धान्त को स्थापित किया।

4.2 प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा

4.2.1 वैदिक परम्परा

4.2.2 पुराण –इतिहास

इतिहास–पुराण को पंचम वेद कहा गया है। पुराणों के रचनाकार लोहर्षण को माना जाता है। अमरकोश नामक ग्रन्थ में पुराणों के पाच लक्षणों का वर्णन है–सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुचरित एवं मन्वन्तर । पुराणों की ऐतिहासिकता पर सर्वप्रथम विद्वानों का ध्यान पार्जिटर ने आकृष्ट किया था। पुराणों से अनेक राजवंशों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। पुराण एक तरह से उपन्यास है जिनमें प्रणेता अपने पाठको में विश्वास उत्पन्न करने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों का हवाला देते है। इसमें दो मत नही है कि पुराणो में प्राचीन राजवंशो की वंश–वृक्षावली दी हुई है। इनमें शिशुनागवंश, नंदवंश मौर्यवंश, शुगवंश आध्रवंश, गुप्तवंश का परिचय मिलता है। पुराणों की संख्या पर्याप्त है फिर भी उनमें बह्मा, पद्रा, विष्णु शिव, भागवत, अग्नि, स्कन्द, मत्स्य, गरूड, वायु आदि अठारह पुराण महत्वपूर्ण है।

4.2.3 महाकाव्य परम्परा

महाकाव्य के अन्तर्गत रामायण और महाभारत सम्मिलित है। इनमें माध्यम से भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की झाकी प्राप्त होती है। बाल्मीकि

द्वारा रचित रामायण को आदि काव्य व महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत को इतिहास माना गया है। महाभारत में सिथियन, यूनानी, बैक्ट्रियन व हूणो का उल्लेख मिलता है। महाभारत के शान्तिपर्व को इतिहास माना गया है। प्राचीन भारत के राजाओं के दरबार में सूत होते थे जो अपने संरक्षकों का सरकारी रिकार्ड रखते थे। उसका पद प्रायः पैत्रक होता था। और प्रायः ब्राह्मण ही इस पद पर थे। बाद में योद्धा वर्ग के लोग भी इस पद पर आने लगे।

4.2.4 बौद्ध साहित्य

प्राचीन भारतीय इतिहास जानने में बौद्ध साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें प्रथम स्थान जातक साहित्य का है जिनमें बुद्ध के पूर्वजन्म की गाथाएँ संकलित है। जातक साहित्य की संख्या 550 है। दूसरा स्थान त्रिपिटक साहित्य का है जिसमें बुद्ध के सिद्धान्तो व उपदेशो का वर्णन है। त्रिपिटक तीन है–सुतपिटक, विनयपिटक तथा अभिधम्मपिटक। मिलिदपन्हो नामक ग्रन्थ में बौद्व विद्वान नागसेन व राजा मिलिन्द के मध्य हुए दार्शनिक संवाद संकलन है। महावंश, ललितविस्तर, बुद्धचरित आदि ग्रन्थों से भारतीय इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

4.2.5 जैन साहित्य

भारतीय इतिहास के निर्माण के लिए जैन साहित्य बहुत उपयोगी है। उनमें से जैन आगम सर्वोपरि है। जैन आगम में प्रसिद्ध स्थान बारह अंगो का है। जैन सूत्रो में आचारांगसूत्र कृतांग उत्तराध्ययन, कल्पसूत्र महत्वपूर्ण है। आचार्य हेमचन्द्र की रचनाओं में सर्व प्रसिद्ध कल्पसूत्र है। पद्मचरित में राम की कथा का वर्णन है जो बाल्मीकि के रामायण से विल्कुल भिन्न है। इसमें रावण को राक्षस कहने से इंकार किया गया है। और उसे एक जादूगर बताया गया है। इसमें रावण को जैन बताया है। जैन इतिहासकारों ने भी उपाख्यानों पर आधारित इतिहास की रचना की है। इसमें कालकाबार्षा कथानक है जो एक अज्ञान इतिहासकार द्वारा लिखा गया है। इनमें

विक्रमादित्य का कथानक है। इनमें शक व सिथियन का उल्लेख है जिन्हे विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय ने परचित किया था। विशाखदत्त ने अपने नाटक देवीचन्द्रगुप्त में शको की पराजय के कारणो का उल्लेख किया है।

4.3 प्रमुख इतिहासकारो का इतिहास लेखन के प्रति दृष्टिकोण

4.3.1 बाणभट्ट

भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा में वाणभटट् का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय स्थान है। उसने हर्षचरित्र में अपने संरक्षण हर्ष का जीवन चरित्र लिखा है। यहॉ यह ध्यान देने की बात है कि हर्ष भार्गव था और इतिहास लेखन कला उसे अपने परिवार विरासत के रूप में मिली थी उसका हर्षचरित्र केवल एक इतिहास ही नही अपितु सहित्य भी है और उसे काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसमें वाणभट्टा में ने हर्ष की जीवन घटनाओं का क्रमबद्ध उल्लेख नही किया । और साथ ही हर्ष के समग्र जीवन का वृतान्त भी नही है। उसने जन्म काव्य साहित्य की तरह इसमें तथ्य सुन्दर वर्णन का समन्वय प्रस्तुत किया है। इसकी कथावस्तु के मूल में मौखरियों पर आक्रमण है जिसमें मौखरि सम्राट की मृत्यु हो जाती है। हुश्मनों को निकाल बाहर करने के लिए हर्ष सेना के साथ आगे बढ़ता है। और अपनी बहन राज्यश्री की जान बचाता है। जो विन्ध्य पर्वत की ओर भागकर चिता में जल भरने की तैयारी कर रही था।

4.3.2 बिल्हण

इतिहास–लेखन में विल्हण ने भी बड़ा योगदान दिया है। उसने अपने सरंक्षक विक्रमादिय छठा का जीवन चरित लिखा है। विल्हण 1040ई0 कश्मीर में पैदा हुआ था। विल्हण के संरक्षण ने उसे विद्यपीत की पदवी दी। उसने कर्णसुन्दरी नाटक की रचना की जिसमें उसने अन्हिवाड़ के राजा कर्ण देव का मायामल्लदेव के साथ विवाह का वर्णन किया है। किन्तु उसकी सबसे महत्वपूर्ण कृति विक्रमदेव–चरित्र है। जिसमें विक्रमादिय छ के एतिहासिक

तथ्यों का उल्लेख किया गया है। II का चरित्रांकन एक खलनायक के रूप के किया है। व विक्रमादित्य को नायक बताया हैं किन्तु विल्हण के कथन की पुष्टि अन्य ऐतिहासिक तथ्यों के लारा नही की जाती है।

4.3.3 संध्याकर नन्दिन

दरबारी कवि संध्याकर नन्दिन ने पालवंशीय राजा रामपाल के शासन काल की घटनाओं का उल्लेख किया है। उसने अपनी कृति रामचारित्र में दो कथाओं को एक में करने की विधि अपनाई है। एक तो इसमें सूर्यवंशी राजा राम की कथा–वस्तु है जिसमें राम ने रावण को पराजित कर अपनी पत्नी सीता को प्राप्त किया। दूसरी ओर इसमें रामपाल की कथा है जिसने अपने शत्रु भीम को पराजित किया और अपना राज्य हासिल किया जिसे भीम ने हड़प लिया था।

4.3.4 सोमेश्वर तृतीय

सोमेश्वर तृतीय एक अन्य इतिहासकार था। उसने मानसोल्लाश की रचना की। इसमें राजा के कर्तव्यों व उसके गुणों का वर्णन है। उसकी एक अन्य कृति अपने पिता का अधूरा जीवन–चारित्र विक्रमोद्धद्य है इसमें तृतीय अध्याय है। प्रथम अध्याय मे कर्नाटक के भूगोल व वहां के लोगो का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में कल्याण के ऐश्वर्य के बारे में है। तृतीय अध्याय में चालुक्य राजवंश का वर्णन है। सोमेश्वर देव की रचनाओं में ऐतिहासिक तथ्यों का भी समावेश हुआ है। उसे शाही नायकों तथा तेलपा द्वितीय को विक्रमादित्य छवे को विष्णु का अवतार माना है।

4.3.5 जगनिक

जगनिक एक अन्य लेखक था जिसने पृथ्वीराज विजय काव्य लिखा। इसमें उसने उत्तरी राजस्थान के चाहमान शासक पृथ्वीराज क शौर्य का उल्लेख किया है। जगनक कश्मीर का रहने वाला था। उसे संभवतः वाल्मीकि

की रामायण ने पृथ्वीराज विजय की रचना की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। संभवतः उसने 1191 व 1193 के बीच इसकी रचना पूर्ण की थी। जगनक ने अपने को वाल्मीकि का अवतार बतलाने का प्रयास किया है। और कहा कि जिस प्रकार वह्मा के कहने पर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की उसी प्रकार माँ शारदा के कहने पर उसने पृथ्वीराज विजय की रचना की है।

4.3.6 चन्द्रबरदाई

चन्द्रबरदाई के पृथ्वीराजरासो महाकाव्य में भी यह उल्लिखित है कि गहडवाल राज कुमारी संयोगिता पृथ्वीराज के शौर्य–वीर्य के काकी प्रभावित थी और उनसे ब्याह करना चाहती थी किन्तु उनके पिता जयचन्द्र की पृथ्वीराज से दुश्मनी थी और वह ऐसा नही चाहता था अंततोगत्वा पृथ्वीराज संयोगिता से विवाह करने में सफल रहे। पृथ्वीराज के दरबार के इसरे कवि चन्द्रबरदाई ने पृथ्वीराजरासो की रचना की। इसमें चौहान राजपूतों की उत्पत्ति और उनके साहसिक कार्यों का उल्लेख है।

4.3.7 कल्हण

प्राचीन भारत में सबसे उन्नत इतिहास कल्हण ने लिखा। वह कश्मीर का ब्राह्मण था। वह कश्मीर के राजा हर्ष के मंत्री चंपक का पुत्र था। उसने 1148 ई0 में लिखना शुरू किया और उसे दो वर्षों में पूरा किया। उसकी कृ ति राजतरंगिणी में कश्मीर का इतिहास है। इसमें किसी विशेष राजवंश का उल्लेख नही मिलता है। इसकी रचना करते समय कहल्ण ने समसायिक दस्तावेजो, शिलालेखो, मुद्रा, प्राचीन स्मारको आदि का गहरा अध्ययन किया था। इससे पता चलता है कि वह आधुनिक इतिहास लेखन कला से परचित था। राजतरंगिणी में लगभग 8000 संस्कृत छन्द है। इसे 3 भागों में बाँटा जा सकता है। कल्हण ने पौराणिक राजा वंश तथा ललितादित्य, मेधवाहन, एवं मिहिरकुल के शासनकाल की घटनाओं का उल्लेख किया है। वस्तुतः राजतरंगिणी सही अर्थ में इतिहास है। मूल भारतीय चिंतन अनिवार्य रूप से दुःखो के आत्यंतिक विनाश अथवा मुक्ति की आर उन्मुख रहा है। यहाँ धर्म व

दर्शन पर अधिक बल दिया गया है। यहाँ राज्यों अथवा राजाओं का इतिहास लेखन उनके अधिकारियों का उत्तरदायित्व समझा जाता था। सम्पूर्ण संस्कृति इसके प्रति अधिक रूचि नही रखती थी। इस प्रसंग में कौटिल्य ने इतिहास के घटक अंगों का भी उल्लेख किया है। जिसके अनुसार इतिहास के अन्तर्गत पुराण, इतिवृत आख्याक्ति, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र सभी आते है।

भारतीय ऐतिहाासिक परंपरा के विकास में सूतो का महत्वपूर्ण योग रहा है। वैदिक युग की राजनीतिक संरचना में इन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। परंपरा के अनुसार इन्हें राजकीय शिक्षको की वंशतालिका बनाने व उन्हें सुरक्षित रखने का श्रेय प्राप्त है। वंश सहित्य की सृजन की परंपरा दीर्घकाल तक चलती रही। वंश और वंशानुचरित्र पुराण साहित्य के आवश्यक अंग बताए गए है। पुराणो में विभिन्न शासक वंशो के वंशवली दिए गए है। तथा पुराणें की संख्या 18 है। जो ऐतिहासिक यप से काकी महत्पूर्ण है। भारतीय चिंतन में अवतार वाद के सिद्धान्त से यदि धार्मिक परिच्छाया को हटा दिया जाये तो विविध अवतारों को इस प्रकार के महान व्यक्तियो के रूप में समझा जा सकता है। गीता में अवतारवाद के सिद्धान्त को सर्वाधिक सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है।

4.4 सारांश

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में इतिहास लेखन कला विकसित नही थी किन्तु इसी आधार पर कह देना उपर्युक्त नही होगा कि प्राचीन भारत ऐतिहासिक घटनाओं से शून्य था। यह ठीक है कि प्राचीन भारत कोई क्रमवद्ध था तिथिपरक इतिहास नही मिलता। विटरनित्ज का यह कथन आंशिक रूप में सत्य है कि "प्राचीन भारत के मनीषियो ने इतिहास लेखन की ओर कोई ध्यान नही दिया। प्राचीन भारत में इतिहास महाकाव्य का एक शाखा मात्र था।" राजतरंगिणी को छोड़कर किसी अन्य प्राचीन साहित्य को इतिहास की संज्ञा नही दी जा सकती।

4.5 शब्दावली

4.6 बोध प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय इतिहास की परम्परा एवं लेखन के विषय में वर्णन करें।

....

....

....

....

2. इतिहास लखन की पौराणिक परम्परा का वर्णन करें।

....

....

....

....

3. इतिहास लेखन पर कल्हण की दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

4.7 सहायक ग्रन्थ

इकाई : 05 – 20वीं शताब्दी से वर्तमान तक का इतिहास लेखन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारतीय इतिहास–लेखन

5.3 इतिहास–लेखन का साम्राज्यवादी दृष्टिकोण

5.4 इतिहास लेखन का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण

5.5 मार्क्सवादी इतिहास लेखन

5.6 प्रमुख राष्ट्रवादी इतिहासकार

5.6.1 डॉ. धर्मानन्द कौशाम्बी

5.7. इतिहास की एक नई परिभाषा

5.8. 'सबॉल्टर्न' या अवर अध्ययन

5.9. निम्न वर्गीय इतिहास लेखन की प्रवृत्ति

5.10 सारांश

5.11 शब्दावली

5.12 बोध प्रश्न

5.13 सहायक ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगें–

- 20 वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान समय तक के इतिहास लेखन के विभिन्न आयामों के विषय में।
- विभिन्न इतिहास लेखन के दृष्टिकोणों के विषय में।
- इतिहास लेखन के बदलते स्वरूप के विषय में।

5.1 प्रस्तावना

इतिहास लेखन इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष होता है जिसके आधार पर आप यह अनुमान लगा सकेतें है कि किस प्रकार सामाजिक मूल्यों एवं परिस्थिति के अनुसार इतिहास लेखन का स्वरूप बदलता रहता है। उस बदलते हुए स्वरूपों को जानना इतिहास के शिक्षार्थियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा पर यूरोपीय इतिहासकारों के द्वारा यह आरोप लगाया गया है कि भारत में इतिहास लेखन की कोई परम्परा नही थी। अर्थात भारतीयों में ऐतिहासिक बुद्विि का अभाव था। यूरोपीय इतिहासकारों के साथ ही कुछ भारतीय इतिहासकार भी यह मानते थे कि भारतीयो में इतिहास के प्रति चेतना का अभाव था। लेकिन उनके द्वारा लगाया गया यह आरोप पूर्णत गलत है। उनके इस दावे को विभिन्न भारतीय इतिहासकारों ने अपने तर्को एवं तथ्यों के आधार पर खारिज किया है। उनके अनुसार भारत में इतिहास को यूरोपीय इतिहासकारों ने उसे भारतीय दृष्टिकोण नही देखा है जिसके कारण उन्होने भारत के इतिहास के विषय में इस प्रकार बातों का विवरण दिया है। लेकिन भारत में इतिहास लेखन की एक सशक्त तथा वैज्ञानिक परम्परा विद्यमान थी जिसका मूल उत्स वैदिक साहित्य में वर्णित विविध वंश,वंशावली तथा ऋषियों की सूची से ज्ञात होता है। भारत में इतिहास की परम्परा पाश्चात्य परम्परा से पूर्णत अलग थी। जहाँ

भारतीय परम्परा मूलतः मूल्यपरक, नीतिपरक तथा आध्यात्परक है वहीं पाश्चात्य परम्परा इसके विपरीत सिद्वान्तों पर आधारित है।

भारतीयों अपने प्राचीन धर्म तथा समाज में सुधार लाने तथा अपनी प्राचीन संस्कृति को पुनर्जीवित करने की दिशा में प्रवृत्त हुए। इस प्रकृति ने पुनर्जागरण का रूप ले लिया जिसके फलस्वरूप भारतीयो में आत्मनिर्भरता आत्मसम्मान और आत्मविश्वास की भावनाओं का संचार हुआ। भारत में एक प्रकार से राष्ट्रीय सजगता का भाव जागृत हुआ। इस अभिनव चेतना को एक ऐतिहासिक चेतना के रूप में महत्व दिया गया था। बंकिम चन्द्र चटर्जी ने यह कहा कि एकता का भाव राष्ट्रीय गौरव तथा मुक्ति की आकांक्षा उत्पन्न करने के एक साधन के रूप में इतिहास के अध्ययन तथा लेखन से अधिक मौलिक और कुछ नही था। बंकिम चन्द्र चटर्जी ने जिस त्रुटि की पहचान की उसका निदान करने की प्रवृत्ति भारतीय इतिहासकारो ने किया। वे इतिहासकार थे जिन्होंने 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में लिखा गया, जब राष्ट्रवाद की उद्‌दात्त भावना ने प्रेरित होकर ऐतिहासिक लेखन तथा व्याख्या एवं विवेचन के लिए विचारधारात्मक आधार प्रदान किया। इतिहास लेखन के विभिन्न दृष्टिकोण दृष्टिगत होते है, जिनका विवरण निम्नवत है–

5.2 भारतीय इतिहास–लेखन

5.3 इतिहास–लेखन का साम्राज्यवादी दृष्टिकोण

भारत में प्रथम महत्वपूर्ण इतिहास जेम्स मिल ने लिखा जो लन्दन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक अधिकारी था। साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारत को एक राष्ट्र के रूप में संगठित एवं राष्ट्रीय चेतना के विकास के विभिन्न भौतिक के सन्दर्भ में अनेक प्रकार के प्रश्न खड़ा किये थे। 1772 ई. में वारेन हेस्टिंग्स भारत गर्वनर जनरल बनकर आये। तथा 1784 ई. में एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की गयी। गर्वनर जनरल का मानना था

कि यदि भारत में एक मजबूत शासन को स्थापित करना है तो उसके लिए प्रत्येक ब्रिटिश अधिकारी को भारतीय समाज एवं संस्कृति को जानना अत्यन्त अनिवार्य है। भारतीय समाज व संस्कृति की जो 'इवैजेलिकल' उपयोगितावादी तस्वीर चार्ल्स ग्रांट की ऑब्जर्वेशंस तथा जेम्स मिल की हिस्ट्री में प्रस्तुत की गई। उसने कुछ ऐतिहासिक रूप से जड़ीभूत मान्यताओं को लोकप्रियता प्रदान की। इन मान्यताओं ने न केवल भारत पर केन्द्रित यूरोपीय इतिहास लेखन को बल्कि इतिहास के दर्शनो को भी प्रभावित किया।

इनमें पहली धारणा निश्चल–निष्क्रिय परिवर्तनरहित भारतीय समाज से संबद्ध थी। मिल ने निरंतर यह विचार व्यक्त किया कि आर्यों के आगमन से अंग्रेजों के आगमान तक भारतीय समाज काकी हद तक अपरिवर्तित रहा था। एक परिवर्तनरहित समाज की संकल्पना ने ही गल द्वारा प्रवर्तित इतिहास के दर्शन पर प्रत्यक्ष प्रभाव डाला। ही गल की दृष्टि में वास्वतिक इतिहास में द्वंद्वात्मक परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रियाएं समाहित थी। भारतीय समाज जैसाकि जर्मन दार्शनिक को विदित था, निश्चल तथा निश्चित और इसलिए विश्व इतिहास की मुख्य धारा से बाहर रहा। मिल द्वारा हिन्दु, मुस्लिम और ब्रिटिश कालो में भारतीय इतिहास का विभाजन हमारे अपने समय तक प्रचलन में रहा है। किश्चियन लैसेन ने भारतीय इतिहास के इस काल विभाजन के लिए ही गल की द्वंद्वात्मकता का प्रयोग किया। अंतर केवल इतना था कि 'थीसिस' 'एटीथीसिस' 'सिथीसिस' के तीन चरणों के स्थान पर उन्होंने हिन्दु , मुस्लिम, व ईसाई का प्रयोग किया। हयातव्य है कि उन्होंने 'ईसाई' शब्द का प्रयोग किया न कि ब्रिटिश शब्द का जैसा मिल ने किया। किन्तु लैसेन ही गल द्वारा प्रस्तुत इस धारणा का खंडन नही कर पाए भारत का अतीत अपरिवर्तित रहा है।

प्राच्य निरंकुशता एक अपरिवर्तनशील समाज की इस संकल्पना का एक अन्य पक्ष है ऐसा विश्वास किया गया कि भारतीय समाज का आधार भारतीय गांव की अपरिवर्तनीय प्रणाली थी। इस गांव में ऐसे लोग रहते थे

जो राजनैतिक संबंधों से पूरी तरह असंपृक्त थे। पाश्चात्य चिंतक और इतिहासकार की दृष्टि में राजनैतिक चेतना के अभाव तथा निजी संपत्ति की अनुपस्थिति ने ही अंततः प्राच्य निरंकुशता को जन्म दिया। रोमिला था पर लिखती है कि भारतीय समाज के निश्चल, जड़ीभूत चरित्र तथा इसके साथ–साथ निरंकुश शासको का प्रभुत्व भारतीय इतिहास का एक स्वीकृत सत्य बन गया। प्राच्य निरंकुशता की संकल्पना आकार ग्रहण करने लगी। "भारत के अतीत की अपरिवर्तनशील प्रकृति से संबंधित अवधारणा को मार्क्स ने अपनाया और इसे उत्पादन की एशियाटिक पद्धति की वैचारिक प्रस्तुति में ढाला गया आत्मनिर्भर ग्राम अर्थव्यवस्था और भूमि पर निजी स्वाभित्व का अभाव एशियाटिक उत्पादन पद्धति के संलक्षण थे।

भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहास–लेख की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता राजनैतिक तत्व की प्रधानता थी। यहाँ ब्रिटिश पूर्वग्रह, नैतिकता सिद्ध करने की प्रवृत्ति, तीव्र पक्षपात और मूल्यातिरेक से ओत–प्रोत आवेगो की स्वच्छंद अभिव्यक्ति हुई। लेखको को भारतीय जीवन एवं संस्कृति में अधिक रूचि नही थी। और आर्थिक मुद्रों पर केवल उसी स्थिति में विचार किया गया जब उनका कोई राजनैतिक प्रयोजन था। जिन पुस्तको की रचना हुई वे प्रायः ब्रिटिश शासनकाल तक ही सीमित थी और केवल ब्रिटिश क्रिया–कलापों से संबंध रखती थी। उन्होंने केवल ब्रिटिश दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया।

5.4 इतिहास लेखन का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण

भारतीय इतिहास लेखन के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवादी इतिहास तथा राष्ट्रवादी इतिहास–लेख' विदेशी और विशेषकर ब्रिटिश लेखको के औपनिवेशिक या साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के बरक्स एक तुलनात्मक अर्थ में प्रयुक्त होने वाले पद है। वैध राष्ट्रीय गौरव से ओत–प्रोत भारतीय विद्वानों की एक उदीयमान पीढ़ी ने अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को यूरोपीय लेखको के निराधार आरोपो के प्रहार से बचाने का प्रयत्न किया। यद्यपि ऐतिहासिक पुनर्निर्माण के सच्चे सिद्धान्तों

में यदाकदा कुछ त्रुटियां दृष्टिगोचर हुई, आलोच्य पदो का अभिप्राय ऐतिहासिक लेखकों या कृतियों का एक ऐसा समूह नही माना जाना चाहिए जिसका एकमात्र उद्देश्य भारत के अतीत का महिमा मंडन था। आर0 सी0 मजूमदार "राष्ट्रवादी इतिहासकार" पद का प्रयोग केवल उन्हीं भारतीयों के लिए करते हैं जिन्होंने अपने देश के इतिहास की पुनः प्रस्तुति के क्रम में परीक्षण अथवा पुनः–परीक्षण को अपना लक्ष्य बनाया।

5.5 मार्क्सवादी इतिहास लेखन

मार्क्सवादी इतिहास का प्रारम्भ राष्ट्रवादी विचारधारा के परिणामस्वरूप में सामने आता है। प्रसिद्व इतिहासकार डी.डी.कोसाम्बी ने इतिहास लेखन के सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया है। वैचारिक दृष्टि एवं चेतना के आधार पर इतिहास लेखन में इसके महत्व को रेखाकित किया जाता है। किसी काल का इतिहास एक अर्थ में सम्पूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक सन्दर्भो का महत्वपूर्ण अभिलेख स्वीकार किया जाता है। इतिहास की अपनी गति होती होती है जिसके आधार किसी देश की परिस्थिति का विकास होता है। डॉ. राम विलास शर्मा के अनुसार भाषा के बिना साहित्य का कोई अस्तित्व नहीं है। मानव समाज के गठन के रूप बदलते रहते है,पूजीवादी समाज,उससे पहले सामन्ती समाज और उससे पहले कबीलाई समाज इसमें सामाजिक गठन के रूप एवं स्वरूप अलग तरह के होते है। विचारधारा का प्रभाव भाषा पर सर्वाधिक पडता है।

कार्ल मार्क्स भारतीय समाज की स्थितियों का विवेचन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुचे थे कि भारतीय इतिहास में स्वर्णकाल कभी नहीं था। कार्ल मार्क्स एवं एंगेल्स मूलतः राजनीतिक चिन्तक थे लेकिन इतिहास–दृष्टि भी रखते थे। उन्होने इतिहास का गहराई से निरीक्षण एवं इतिहास के मर्म को अनुभव किया। उसने जिस वैज्ञानिक विचारधारा और चिन्तन पद्वति का प्रवर्तन किया था उसका विकास अनेक रूपों में दृष्टिगत हुआ। मार्क्सवाद एक वैज्ञानिक दर्शन के रूप में कला,साहित्य,संस्कृति,इतिहास,राजनीति के क्षेत्र में एक

अभिनव प्रयोग था जिसे कालान्तर में चिन्तकों ने अपने–अपने ढंग से विकसित किया।

विश्वदर्शन तथा इतिहास के क्षेत्र में 1844 ई. में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद की जो स्थापनाएं की, उसके कारण चिन्तन के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया था। अन्तोनियों ग्राम्शी का मार्क्सवादी चिन्तन के विकास में महत्वपूर्ण सृजनात्मक योगदान रहा है। उसने अपने चिन्तन में मुख्यतः इटली की राजनीतिक स्थितियों एवं विश्व इतिहास की चिन्तन धारा पर केन्द्रित किया था। उसने ऐतिहासिक अनिवार्यता का प्रतिपादन करते हुए उसे इतिहास सापेक्ष माना है। उन्होने सांस्कृतिक,राजनीतिक और कलात्मक आलोचना में सामजस्य की धारणा विकसित की थी। उसके अनुसार इतिहास गतिशील होता है तथा उसका गहन अध्ययन सम्बन्ध सांस्कृतिक राजनीति से होता है। उन्होने इतिहास धारा में अपनी बर्गीय चेतना और दृष्टि के साथ सम्मिलित होने के लिए बुद्विजीवियों का आवाहन किया था। क्योकि वे विश्वास करते थे कि समाज और देश के क्रान्तिकारी परिवर्तन में बुद्विजीवियों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। यही कारण है कि वे लेखक के सामाजिक चरित्र की परख उसको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर करते थे।

भारतीय इतिहासकार डी.डी.कोसाम्बी मार्क्सवादी चिन्तको में प्रथम थे जिन्होने विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भारतीय इतिहास और कला,संस्कृति का मार्क्सीय दृष्टि से अध्ययन–विश्लेषण प्रस्तुत किया तथा पहली बार भारतीय समाज के राजनीतिक,सामाजिक और सांस्कृतिक अन्तर्विरोधों को उदघाटित करने का प्रयास किया।

भारत में इस प्रकार का एक इतिहास–लेख विकसित हुआ जिसकी जड़े राष्ट्रवादी इतिहासकारों के लेखनो में गहराई तक पैठी हुई थी और जिसका उद्भव मूल मार्क्सवाद में रूचि में अंतर्भूत था। मार्क्सवादी चरण (इतिहासकारो) से हमारा आशय यह नही है कि सभी लखेक मार्क्सवादी थे किन्तु उन्होंने कमोवेश भौतिकवादी व्याख्या का ऐतिहाासिक घटना को जाने

न समझने की एक पद्धति के रूप मे अपनाया। इनमें से कुछ लेखको ने इतिहास और विशेषकर प्राचीन इतिहास के बारे में यह दृष्टिकोण व्यक्त किया कि इसका अध्ययन सर्वोत्तम रूप में समाज विज्ञान विषय के ढांचे के अंतर्गत हो सकता है। इसकी व्याख्या कार्लमार्क्स के ऐतिहासिक दर्शन और विशेषकर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से उद्भूत हुई। नए अभिगम का सार तत्व सामाजिक और आर्थिक संगठन के मध्य संबध और ऐतिहासिक घटनाओं पर इसके प्रभाव के अध्ययन में निहित है। नई प्रवृत्ति ने किसी नए साक्ष्य की बजाय उपलब्ध स्त्रोती के पुनः अध्ययन पर बल दिया और इस दृष्टि से नए और पहले से भिन्न प्रश्न उठाए। भारतीय इतिहास–लेख की मार्क्सवादी धारा के सबसे प्रखर पुरोधा दामोदर धर्मानंद कौशाम्बी की रचनाएँ एवं प्रवृत्ति की सबसे जीवंत अभिव्यक्ति है।

5.6 प्रमुख राष्ट्रवादी इतिहासकार

5.6.1 डॉ.धर्मानन्द कौशाम्बी

जेम्स मिल और विसेट स्मिथ के बाद अगर किसी लेखक ने भारतीय इतिहास लेखन को सबसे ज्यादा गहराई से प्रभावित किया तो वे कौशाम्बी थे। यद्यपि अल्पायु में ही कौशाम्बी का निधन हो गया। किंतु उन्होंने अपने पीछे शोध–पत्रों और आलेख की एक विशाल धरोहर छोड़ी। उनकी प्रमुख कृतियाँ है– इन इंट्रोडक्शन दुद स्हड़ी ऑक इंडियन हिस्ट्री 1956, द कल्चर एंड सिविलाइजेशन ऑक एंशियंट इंडिया इन हिस्टोरिकल आउटलाइट 1965 एक्जेस्परेटिंग एस्सेज! एक्सरसाइज इन द डालेक्टिकल मेधड़ इन कृतियों ने भारतीय इतिहास–लेख में क्रान्ति ला दी।

5.7. इतिहास की एक नई परिभाषा

प्राचीन भारत के अध्ययन में सबसे बड़ी बाधा विश्वस्त रिकार्डो और सटीक कालक्रम का अभाव है। कौशाम्बी कहते है कि इसी कारणवश प्राचीन यूरोपीय परंपरा में इतिहस–लेख की प्रत्यक्ष प्रविधि को भारतीय संदर्भ में अपनाना

निरर्थक है किन्तु हम यह जान सकते है कि उन अत्यंत प्राचीन काल खंडो में जिसके स्त्रोतो और साक्ष्यों के ठोस रूप उपलब्ध नही है लोग किस तरह जीवन–यापन करते थे। यह निश्चित है कि उनका जीवन एवं रहन सहन हमेश एक जैसा नही रहा होगा। खाद्‌य–संग्राहक, अर्धपाशविक चरण से खाद्‌य–उत्पादन के उन्नत चरण में प्रवेश किया तो निश्चित रूप से उनका जीवन स्तर केवल पाशवित जीवन के स्तर से अधिक ऊँचा हो गया। जैसा **गोर्डन गोर्डन चाइल्ड** अपनी मुहावरेदार प्रांजल शैली में कहते हैं, "मनुष्य स्वय अपना निर्माता होता है।" मनुष्य विभिन्न प्रकार के उपकरणों और हथियारों का प्रयोग करके और आत्मसृजन की और उन्मुख होकर उस उद्‌देश्य को प्राप्त करता है जिससे कि वह पर्यावरण के संसाधनो का समुचित अपयोग कर सके। और अपने जीवन को बेहतर बना सके।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जब किस भी उसके उपकरणों या भौतिक–उत्पादन के साधनो की मात्रा और गुणवत्ता में परिवर्तन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक है। उदाहरण के लिए यह तथ्य "उत्पादन के साधनो में प्रत्येक महत्वपूर्ण आधारभूत खोज के साथ–साथ मानव–आबादी में तुलनात्मक रूप में आकास्मिक वृद्धि।" के रूप में दिखाई देता है। भौतिक उत्पादन के साधन सामाजिक संगठन को निर्धारित करते है। जो उनसे अधिक उन्नत नही हो सकते। मानव–जीवन का यह तथ्य अर्थात् जीवन और उपलब्ध उत्पादन के साधनो के बीच यह आंतरिक संबंध जिसके अंतर्गत जीवन उन साधनों की गति के अनुरूप विकसित होता है, इतिहास की विषयवस्तु और पद्धति की आधारशिला है। तदनंतर कौशाम्बी इतिहास की अपनी परिभाषा "उत्पादन के साधनो तथा संबंधों के क्रमिक विकास की कालक्रम व्यवस्था के अनुसार प्रस्तुति" है। इस परिभाषा से इतिहास के एक निश्चित सिद्धान्त का संकेत मिलता है। जिसे द्वंद्वात्मक भौतिकवाद या मार्क्सवाद के रूप में जाना जाता है। यह एक क्लासीसिक वक्तव्य है जो कार्लमार्क्स की पुस्तक क्रीटीक ऑक पोलिटिकल इकोनोमी की भूमिका में मिलता है। कौशाम्बी कहते हैं कि "यह निश्चित रूप से अब तक

ज्ञात एक मात्र ऐसी परिभाषा है जो सामान्यतः प्रागैतिहासिक के रूप में विविद पूर्व–साक्षर इतिहास के प्रति युक्ति संगत दृष्टिकोण अपनाने का अवसर देती है।"

5.8. 'सबॉल्टर्न' या अवर अध्ययन

सबॉल्टर्न स्टडीज के नाम से पुस्तकों की एक श्रृंखला, जो बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में प्रकाशित हुई है ने आधुनिक भारत पर इतिहास–लेख की लगभग एक पूरी तरह नई धारा का आरम्भ किया है। श्रृंखला के प्रथम खंड का संपादन करे हुए रणजीत गुहा अपना प्रतिवाद जताते है और कहते है कि भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास–लेख दो प्रकार के पक्षपातपूर्ण अभिजात्यवाद से ग्रस्त है और दोनो सम्मिलित रूप से इस दृष्टिकोण का समर्थन करते है कि राष्ट्रीय चेतना का विकास और भारतीय राष्ट्र का निर्माण अभिजात्म या संभ्रांत वर्गीय उपलब्धियां थी।

इसमें से पहली धारा अर्थात् औपनिवेशिक या ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहास लेखन, जो एक संकीर्ण व्यवहारवादी अभिगम पर आधारित है, भारतीय राष्ट्रवाद को ब्रिटिश विचारों, संस्थाओं, अवसरो एवं संसधनों द्वारा प्रदत्त अभिप्रेरण या उद्‌दीपन के प्रति भारतीय बुर्जुआ अभिजात्य वर्ग की अनुक्रिया के रूप में देखते है। इसी तरह उनकी दृष्टि से दूसरी धारा अर्थात् भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास–लेख भारतीय राष्ट्रवाद को मूलतः एक आदर्शवादी अभियान के रूप में विचित्र करता है। जिसमें स्वदेशी अभिजात्य या संभ्रांत वर्ग ने जनसाधारण का नेतृत्व किया। और उन्हें परतंत्रता के चंगुल से छुड़ाकर स्वाधीनता दिलाई। इन दोनों दृष्टिकोणों में से कोई भी भारतीय राष्ट्रवाद की सही व्याख्या नही प्रस्तुत करता क्योंकि यह लोगों द्वारा स्वयं अपने बल पर अर्थात् अभिजात्य वर्ग से स्वतंत्र रहकर उस राष्ट्रवाद के निर्माण एवं विकास में दिए गए योगदानो को स्वीकार नही करता गुहा के अनुसार इसी कारणवश अभिजात्यवादी इतिहास लेखन लोकप्रिय पहल के उन दृष्टांतो की व्याख्या नही कर सकता है जिन्होंने स्वयं को 1919 के

रॉलेट विरोधी उफान या 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के रूप में व्यक्त किया।

गुहा दृढ़ता के साथ यह कहते है कि अभिजात्य राजनीति के समांतर सामान्य जनो की राजनीति का एक प्रभाव क्षेत्र था जिसमें **'सबॉल्टर्न'** था अधीनस्थ वर्गों और समूहो के प्रमुख कार्यकर्ता थे जिनसे आबादी के अधिकांश भाग का संघटन हुआ था। वे यह महसूस करते है कि अभिजात्य इतिहास–लेख, जो इस तथ्य की पहचान नही करता है, का एक मजबूत प्रतिवाद होना चाहिए। और इसके लिए राजनीति के अवर प्रभाव क्षेत्रों की पहचान पर आधारित एक वैकल्पिक विमर्श विकसित किया जाना चाहिए। यही अवर या **'सबॉल्टर्न'** इतिहास लेख के अस्तित्व के मूल में है।

5.9. निम्न वर्गीय इतिहास लेखन की प्रवृत्ति

सबॉल्टर्न स्टडीज विविध और एक दूसरे से असंबद्ध विषयों पर लेखों के संकलन है। उन सबका एकमात्र विषय निम्न वर्गों का विप्लव है। 'सबॉल्टर्न' शब्द एंटोनियो ग्राम्शी के पांडुलिपि लेखनों से लिया गया है जिसका अर्थ है "निकृष्ट या निम्न श्रेणी का" चाहे यह वर्ग, जाति, लिंग अथवा पद किसी भी दृष्टि से हो। सबॉल्टर्न स्टडीज है जो इतिहास–लेख के संदर्भ में अबतक अपेक्षित रहे है। उन्हें उनके विषयो से जोड़कर देखा जाता है जो कालिक परिप्रेक्ष्य में मुगलकाल से 1970 के दशक तक तथा विषयवस्तु की दृष्टि से संप्रदायवाद से औद्योगिक श्रम तक विस्तीर्ण है और शैली में वर्णनात्मक से अवधारणात्मक तक एक व्यापक विविधता दर्शाते है।

5.10 सारांश

5.11 शब्दावली

5.12 बोध प्रश्न

5.13 सहायक ग्रन्थ

MAAH-107N/MAHY-111

इतिहास दर्शन एवं लेखन सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियां

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon Open University

खण्ड 3

प्रमुख भारतीय इतिहासकार

इकाई- 1

भारत के प्राचीन इतिहास लेखक 97

इकाई- 2

मध्यकालीन इतिहास लेखक 105

इकाई- 3

आधुनिक भारतीय इतिहास लेखक 115

इकाई- 4

प्रमुख पाश्चात्य इतिहासकार 127

इकाई- 5

भारतीय इतिहास लेखन का यूरोपियन मत 138

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 पी0पी0 दूबे	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (1,2,3 खंड)
प्रो0 एम0पी0 अहिरवार	आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी इकाई–1,2,3,4,5 (5खंड)
डॉ. रमाकान्त सिंह	सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (4,6 खंड)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, म0जो0फुले रु0वि0वि0, बरेली (इकाई 1–30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष – 2022

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–2810 03

इकाई : 01 : भारत के प्राचीन इतिहास लेखक

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्राचीन भारतीय इतिहास लेखक

- 1.2.1 बाणभट्ट
- 1.2.2 विल्हण
- 1.2.3 सोमेश्वरदेव तृतीय
- 1.2.4 जगनिक
- 1.2.5 चन्दवरदाई
- 1.2.6 न्यायचन्द्र
- 1.2.7 मलिक मुहम्मद जायसी
- 1.2.8 पदमगुप्त
- 1.2.9 कल्हण

1.3 सारांश

1.4 शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- प्राचीन भारत के इतिहास लेखकों के विषय में।

1.1 प्रस्तावना

हमारे प्राचीन साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कई एक अपने नाम से ही प्रसिद्ध है और उनके रचयिता के बारे में हमें से कोई जानकारी नहीं है। ऐसी कृतियों को काल्पनिक नाम दिये गये है। जिनके नाम निर्धारण में असमंजस की स्थिति प्राप्त हुई है, उनके लेखक के रूप में हमने व्यास और ब्रह्म (ईश्वर) का ही नाम दे डाला। धार्मिक क्षेत्र में तो इससे भी काम चल सकता है, किन्तु जहाँ तक इतिहास की बात है, इसमें ऐसे नाम नहीं चल सकते। इसलिए हमने केवल उन्हीं को प्राचीन भारत के इतिहास लेखक की श्रेणी में रखने का प्रयास किया है जिनका हमें कुछ–कुछ जीवन चरित्र प्राप्त हो पाया है और जिनकी रचना (कृति) मिल सकी है।

1.2.1 बाणभट्ट

भारतीय इतिहास–लेखन की परम्परा में 7 वीं सदी के प्रारम्भ में बाणभट्ट का आगमन एक महत्वपूर्ण अध्याय है। उनके हर्षचरित में अपने संरक्षक हर्ष का जीवन चरित्र लिखा। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि हर्ष भार्गव था और इतिहास–लेखन कला उसे अपने परिवार से विरासत के रूा में मिली थी। उसका हर्षचरित केवल एक इतिहास ही नहीं अपितु साहित्य भी है और इसे काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसमें बाण ने हर्ष की जीवन–घटनाओं का क्रमबद्ध उल्लेख नही किया है और साथ ही हर्ष के समग्र जीवन का वृत्तान्त भी नही है। उसने अन्य काव्य–साहित्य की तरह इसमें तथ्य और गल्प का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। इसकी कथावस्तु के मूल में मौखरियों पर आक्रमण है जिसमें मौखरी सम्राट की मृत्यु हो जाती है। दुश्मनों को निकाल बाहर करने के लिए हर्ष सेना के साथ आगे बढ़ता है और अपनी बहन राजश्री की जान बचाता है, जो विन्ध्य पर्वत की ओर भागकर चिता में जल मरने की तैयारी कर रही थी। बाण ने युद्ध का कोई विस्तृत विवरण नहीं दिया है और हर्ष जब राज्यश्री से मिल जाता हैं, तो

कहानी खत्म हो जाती है। बाण यह बतलाता है कि हर्ष साम्राज्य की असली उत्तराधिकारी था।

1.2.2 विल्हण

हिन्दू इतिहास–लेखन में विल्हण ने भी बड़ा योगदान दिया है। उसने अपने संरक्षक विक्रमादित्य छठा का जीवन चरित्र लिखा है। विल्हण 1040 ई0 में कश्मीर में पैदा हुआ था। वह सपरिवार खोनमुखा चला आया। जहाँ विक्रमादित्य के पिता सोमेश्वर प्रथम ने उसे संरक्षण प्रदान किया। सोमेश्वर कल्याणी का चालुक्य राजा था। विल्हण के संरक्षण ने उसे विद्यापति की पदवी दी। उसने 'कर्णसुन्दरी' नाटक की रचना की, जिसमें उसने अन्हिलवाड़ के राजा कर्णदेव का मायामल्लदेव के साथ विवाह का वर्णन किया है। किन्तु उसकी सबसे महत्वपपूर्ण कृत्रि विक्रमदेव चरित है, जिसमें विक्रमादित्य छठे के ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख है। विल्हण ने विक्रमादित्य के बड़े भाई सोमेश्वर द्वितीय का चिरत्रांकन एक खलनायक के रूप में किया है और विक्रमादित्य को नायक बतलाया है। किन्तु, विल्हण के कथन की पुष्टि अन्य ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा नहीं होती। उदाहरण के लिए, सोमेश्वर द्वितीय के अभिलेख उसके उज्जवल चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। अभिलेखों से पता चलता है कि उसके राज्यारोहण से धर्म–विजय हुई और त्रेता युग का आगमन हुआ। अतः विल्हण की कृति ऐतिहासिक नहीं मानी जा सकती और उसके राजा का आंशिक विवरण दिया है। उसने उसके भाई के विरूद्ध युद्धों का भी उल्लेख नहीं किया है। उसकी कृति एक काव्य है, जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव है। विल्हण ने यह बतलाया है कि किस प्रकार विक्रमादित्य ने स्वयंवर में रूपवती चन्द्रलेखा को प्राप्त किया। इस तरह विल्हण ने ऐतिहासिक तथ्यों को पारम्परिक ढाँचे में पिरोने का प्रयत्न किया है। प्रो0 पाठक ने ठीक कहा है– ''हमें मध्यकालीन इतिहास का अध्ययन मध्यकालीन संस्कृति के संदर्भ में करना चाहिए।''

1.2.3 सोमेश्वरदेव तृतीय

सोमेश्वरदेव तृतीय एक अन्य इतिहासकार था। उसने 'मनसोल्लास' की रचना की। इसमें राजा के कर्तव्यों और उसके सुखों का वर्णन है। उसकी एक अन्य कृति अपने पिता का अधूरा जीवन–चरित्र विक्रमोभ्युदय है। इसमें तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में कर्नाटक के भूगोल और वहाँ के लोगों के बारे में है। द्वितिय अध्याय में कल्याण के ऐश्वर्य के बारे में है। तीसरे अध्याय में चालुक्य वंश का आदि से विक्रमादित्य के शासनकाल तक का वर्णन है। इस पर टिप्पणी करते हुए प्रोव पाठक ने कहा है, "बाण के हर्षचरित को छोड़कर विक्रमोभ्युदय ही प्राचीन भारत का एकमात्र ऐतिहासिक गद्य–वृतान्त है।"

सोमेश्वर देव की रचना में गैर ऐतिहासिक तथ्यों का भी समावेश हुआ है। उसने शाही नायकों यथा तेलपा द्वितीय और विक्रमादित्य छठे को विष्णु का अवतार माना है जिनका अवतार पृथ्वी पर दैत्यों के विनाश के लिए हुआ था। इस प्रकार, इतिहास असत्य पर सत्य की विजय में डूब गया।

1.2.4 जगनिक

जगनिक एक अन्य लेखक था जिसने पृथ्वीराज विजय काव्य लिखा। इसमें उसने उत्तरी राजस्थान के चाहमान शासक पृथ्वीराज के शौर्य का उल्लेख किया है। विल्हण की भंति जगनक भी कश्मीर का रहने वाला था। उसे संभवतः वाल्मीकि की रामायण से पृथ्वीराज विजय की रचना की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। सम्भवतः उसने 1191 और 1193 के बीच इसकी रचना पूरी की होगी। जगनक ने अपने को वाल्मीकि का अवतार बतलाने का प्रयास किया और कहा कि जिस प्रकार ब्रह्म के कहने पर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की, उसी प्रकार माँ शारदा के कहने पर उसने पृथ्वीराज विजय की रचना की है। उसने पृथ्वीराज तृतीय का संबंध सूर्यवंशी राजा राम से स्थापित किया। उसने बतलाया कि पृथ्वीराज विष्णु के अवतार थे जो भारत भूमि से मंलेच्छों (मुसलमानों) को निकाल–बाहर करने के लिए उत्पन्न हुए

थे। यद्यपि अपनी रचना के प्रथम भाग में जगनक ने अलौकिक तत्वों का समावेश किया है। तथापि दूसरे भाग में ऐतिहासिक साक्ष्यों और अभिलेखों पर जोर दिया है।

तत्कालीन परम्परा का पालन करते हुए जगनक ने स्वर्गीय परी तिलोत्तमा का उल्लेख किया है और यह बतलाया है कि किस प्रकार तिलोत्तमा ने प्रेम में पृथ्वीराज को परेशान किया। जगनक ने तिलोत्तमा को सीता का अवतार बतलाया। जगनक के अनुसार पृथ्वीराज ने मुहम्मद गौरी को पराजित किया और तिलोत्तमा से ब्याह किया।

1.2.5 चन्दवरदाई

चन्दवरदाई के पृथ्वीराज रासो महाकाव्य में यह उल्लिखित है कि गहड़वाल राजकुमारी संयोगिता पृथ्वीराज के शौर्य–वीर्य से काफी प्रभावित थी और उससे व्याह करना चाहती थी। किन्तु उसके पिता जयचन्द की पृथ्वीराज से दुश्मनी थी और वह ऐसा नहीं चाहता था। अंततोगत्वा पृथ्वीराज संयोगिता से ब्याह करने में सफल रहा। जगनक की तिलोम्तमा और दूसरी कोई नहीं अपितु संयोगिता है। परम्परा का पालन करते हुए और अपनी कवि–सुलभ प्रतिभा का प्रदर्शन करते हेतु जगनक ने अलौकिक तिलोत्तमा को प्रस्तुत किया है।

पृथ्वीराज तृतीय के दरबार के दूसरे कवि चन्दवरादाई ने पृथ्वीराज रासो की रचना की। इसमें चौहान राजपूतों की उत्पति और उनके साहसिक कार्यों का उल्लेख है। किन्तु अब पृथ्वीराज रासो मूलरूप में उपलब्ध नहीं है और बाद में इसमें अन्य बातें भी शामिल कर दी गई हैं। किन्तु ऐतिहासिकता के दृष्टिकोण से जगनक की कृति से यह कम महत्वपूर्ण है।

1.2.6 न्यायचन्द्र

15वीं सदी के एक जैन लेखन न्यायचन्द्र ने हमीर महाकाव्य की रचना की। इसमें चौहान राजा हम्मीर की वीरतापूर्ण कहानी उल्लखित है। इसमें

यह भी बतलाया गया है कि किस प्रकार पृथ्वीराज तृतीय ने तुर्कों को पराजित किया और अंत में स्वयं पराजित हुआ। पृथ्वीराज के बाद उसके भाई हरिराज ने तुर्कों से युद्ध जारी रखा। कुछ बर्षों के बाद तुर्की सेना ने चौहानों की राजधानी अजमेर पर धावा बोल दिया और इसे अपने अधिकार में कर लिया। हरिराज युद्ध में ही मारा गया।

न्यायचन्द्र चौहान राजवंश का इतिहास हम्मीर के शासनकाल का उल्लेख करता है। न्यायचन्द्र ने हम्मीर के अभियानों का उल्लेख किया है। हमीर अपने योग्य सेनापति नुसरतखान की मदद से तुर्की सेना को पराजित करता है। निसरत खान की पराजय और मृत्यु के बाद अलाउद्दीन ने 1301 में हम्मीर पर आक्रमण किया। हमीर ने वीरतापूर्वक उसका सामना किया। किंतु अंत में पराजित हुआ। इस प्रकार राजपूत रानीयाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिए एक साथ जल मरीं। इसे जौहर कहते हैं। न्यायचन्द्र कहता है कि हम्मीर स्वर्ग चले गये।

1.2.7 मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी ने पदमावती में पदमिनी और अलाउद्दीन के प्रेम का उल्लेख किया है। पदमिनी गुहिल शासक भीमसेन की पुत्री थी जो देखने में काफी खूबसूरत थी। अलाउद्दीन उससे ब्याह करना चाहता था। उसने चितौंड़ पर दीर्घकालीन घेरा डाल दिया। अपने सतीत्व की रक्षा के लिए पदमिनी अन्य राजपूत नारियों के साथ चिता में जलकर भस्म हो गई। राजा युद्ध में ही मारा गया।

1.2.8 पदमगुप्त

पदमगुप्त ने अवंती के परमार राजा सिंधुराज पर एक काव्य लिखा है। यद्यपि यह काव्य वास्तविक घटनाओं पर आधारित है तथापि इसे एक रोमांचकारी उपाख्यान कर रूप दे दिया गया है। उसने बतलाया है कि किस तरह नाग राजकुमारी शशिप्रभा के साथ राजा के संबंध होने पर शशिप्रभा ने

उसे एक विश्वजनीन सम्राट बना दिया। प्रोव वार्डर ने इसे कहानी को काल्पनिक बतलाया है।

1.2.9 कल्हण

संभवतः प्राचीन भारत में सबसे अच्छा इतिहास कल्हण ने लिखा। वह कश्मीर का ब्राह्मण था। वह कश्मीर के राजा हर्ष के मंत्री कंपक का पुत्र था। उसने 1148 ई. में लिखना शुरू किया और इसे दो वर्षों में पूरा किया। उसकी कृति 'राजतरंगियी (Chronicles of Kashmir) में कश्मीर का इतिहास है। इसमें किसी विशेष राजवंश का उल्लेख नहीं है। इसकी रचना करते समय कल्हण ने समसामयिक दस्तावेजों, आज्ञाप्तियों, शिलालेखों, मुद्रा, प्राचीन स्मारकों आदि का गहरा अध्ययन किया था। इससे पता चलता है कि वह आधुनिक इतिहास–लेखन कला से परिचित था।

'राजतरंगिनी' में लगभग 8000 संस्कृत छन्द है। इसे तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम भाग में समसामयिक परम्पराओं के आलोक में अतीत की घटनाओं का उल्लेख है। दूसरे भाग में कारकोटा और उत्पल राजवंशों का इतिहास है। तीसरे भाग में कश्मीर के लोहर राजवंश का इतिहास है। इस प्रकार, राजतरंगिणी में कश्मीर के राजाओं का उल्लेख है। कल्हण ने पौराणिक राजा लव का तथा ललितादित्य, यशस्कर, मेघवाहन एवं मिहिरकुल के शासनकाल की घटनाओं का उल्लेख किया है। वस्तुतः राजतरंगिणी सही अर्थ में इतिहास है।

1.3 सारांश

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में इतिहास–लेखन कला विकसित नहीं थी। किन्तु, इसी आधार पर यह कह देना उपर्युक्त नहीं होगा कि प्राचीन भारत ऐतिहासिक घटनाओं से शून्य था। यह ठीक है कि प्राचीन भारत पर कोई क्रमबद्ध या तिथिपरक इतिहास नहीं मिलता। विंटरनीज का यह कथन आंशिक रूप में सत्य है कि प्राचीन भारत में मनीषियों ने

इतिहास–लेखन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। प्राचीन भारत में इतिहास महाकाव्य का एक शाखा मात्र था। राजतरंगिणी को छोड़कर किसी अन्य प्राचीन हिन्दू साहित्य को इतिहास की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

1.4 शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 सहायक ग्रन्थ

इकाई : 02 : मध्यकालीन इतिहास लेखक

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मध्यकालीन इतिहास लेखक

2.2.1 कल्हण

2.2.2 अल्बरूनी

2.2.3 मिनहज उस शिराज

2.2.4 आईन–उल–मुल्क मुल्तानी

2.2.5 जियाउद्दीन बरनी

2.2.6 अमीर खुसरो

2.2.7 सैयद अली तबतबा

2.2.8 सिकन्दर बिन मोहम्मद मंजु

2.2.9 अबुल फजल

2.2.10अब्बास खाँ सरवनी

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 बोध प्रश्न

2.6 सहायक ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

भारतीय सदैव से ही पारलौकिक विषयों के चिन्तन में लीन रहते थे तथा इस लोक का उनका ध्यान ही नहीं था। जिसका परिणाम यह हुआ कि प्राचीन भारतीय इतिहास की सामग्री क्रमबद्ध उपलब्ध नहीं है। लेकिन इसके विपरीत साधन पर्याप्त हैं। केवल धैर्य व लगन की आवश्यकता है। डॉ. त्रिपाठी के अनुसार, "एक इतिहासकार को एक खान खोजने वाले के समान स्वर्णरूपी तथ्य प्राप्त करने के लिए तर्कपूर्ण विचार एवं धैर्य रूपी कुल्हाड़े से काम लेना चाहिए।" मध्यकालीन समय में काफी ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गये। इस काल के इतिहासकारों ने ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना अधिकतर फारसी भाषा में ही की थी।

2.2 मध्यकालीन इतिहास लेखक

2.2.1 कल्हण –

कल्हण कश्मीर के इतिहास के लिए जाना जाता है। उसने बारहवीं शताब्दी तक के कश्मीर के इतिहास का वर्णन अपनी पुस्तक राजतरंगिनी में किया है। कल्हण कश्मीर के राजा हर्ष के मन्त्री कल्पक का पुत्र था। जिस समय कल्हण ने संस्कृत भाषा में राजतरंगिनी की रचना की उस समय कश्मीर का शासक जयसिंह था।

2.2.2 अल्बरूनी –

अल्बरूनी का पूरा नाम मोहम्मद इब्न अहमद अल्बरूनी था। उसके साथी उसे अबू रहीम पुकारते थे। महमूद गजनवी ने जब 1025 ई0 में सोमनाथ पर आक्रमण किया था, तब अल्बरूनी उसके साथ आया था। तब

अल्बरूनी ने भारत के विभिन्न भागों का भ्रमण किया और भारतीय संस्कृति को जाना। अल्बरूनी की पुस्तक तहकीक–ए–हिन्द भारत का सचित्र वर्णन करती है। अल्बरूनी ने इस पुस्तक में एक वैज्ञानिक की भाँति अवलोकन करके भारत की धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक स्थिति का वर्णन किया है। इस पुस्तक में आठ अध्याय हैं।

2.2.3 मिनहज उस शिराज –

मिनहज उस शिराज ने तबाकत–ए–नासिरी पुस्तक खिलजी काल के प्रारम्भिक वर्षों में लिखी। इसमें उसने राजनीतिक इतिहास का वर्णन किया है। यह पुस्तक तेईस तबाकतों(जीवनियों) में विभाजित है, जिसमें क्रमानुसार राजवंशों का वर्णन किया गया है।

2.2.4 आईन–उल–मुल्क मुल्तानी –

आईन–उल–मुल्क ने खिलजी दरबार में सेवा की। अलाउद्दीन खिलजी ने उसे मालवा का सूबेदार बनाया। मोहम्मद बिन तुगलक ने उसे मुल्तान का इक्ता दिया। उसने अपनी पुस्तक इंशा–ए–माहरू में 133 पत्र विभिन्न महत्वपूर्ण व्यक्तियों को लिखे हैं, जो विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं। इस पुस्तक में अनेक दस्तावेज भी संग्रहीत हैं। तुगलक काल के इतिहास के लिए यह महत्वपूर्ण पुस्तक है।

2.2.5 जियाउद्दीन बरनी –

बरनी का जन्म 1286 में हुआ था। बरनी खिलजी सुल्तानों और मोहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में महत्वपूर्ण पदों पर आसीन हुआ। उसकी प्रमुख कृतियाँ हैं– तारीख–ए–फिरोजशाही और फतवा–ए–जहाँदारी। उसकी पुस्तक में बलबन से लेकर फिरोजशाह तुगलक के प्रारम्भिक छः वर्षों तक का वर्णन है।

2.2.6 अमीर खुसरो –

खुसरो का जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जिले में 1252 ई0 में हुआ था। उसका पूरा नाम अबुल हसन यामिनउद्दीन खुसरो था। अमीर खुसरो प्रसिद्ध सूफी सन्त निजामउद्दीन ओलिया का शिष्य था। उसकी प्रसिद्ध ऐतिहासिक कृतियाँ निम्न हैं।

(1) कुरान–उस–सादिन – इसकी रचना 1289 ई0 में हुई। इसमें बंगाल के सूबेदार बुगरा खाँ और उसके पुत्र दिल्ली के सुल्तान कैकूबाद की मुलाकात का वर्णन है।

(2) निफ्ता–उल–फुतूह – इसमें जलालउद्दीन खिलजी के सैन्य अभियानों और विठायों का वर्णन है।

2.2.7 सैयद अली तबतबा –

सैयद अली तबतबा 1580 ई0 में भारत आए और गोलकुण्डा के सुल्तान की सेवा में भर्ती हो गए और उसके पश्चात् बरहान निजाम शाह द्वितीय की सेवा में चले गए। वहीं उन्होंने बरहान–ए–मासिर पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में गलबर्गा, बीदर और अहमदनगर के राजवंशों पर प्रकाश डाला गया है।

2.2.8 सिकन्दर बिन मोहम्मद मंजु –

सिकन्दर बिन मोहम्मद मंजु गुजरात के सूबेदार मिर्जा अजीज कोका की सेवा में था। इसके बाद वह जहाँगीर की सेवा में आया । 1611 ई0 में उसने मिरात–ए–सिकन्दरी लिखी, जिसमें अकबर द्वारा गुजरात विजय का वर्णन है।

2.2.9 अबुल फजल –

अबुल फजल को अकबर का संरक्षण प्राप्त था। 1574 ई0 में वह अकबर का मनसबदार था। अबुल फजल ने 1589 ई0 में अकबरनामा लिखना शुरू किया। अकबरनामा तीन भागों में लिखा गया है। तीसरे भाग को ही आइने अकबरी कहा जाता है, जिसमें अकबर कालीन मुगल प्रशासन, सामाजिक एवं आर्थिक दशा का वर्णन है।

2.2.10 अब्बास खाँ सरवनी – शेरशाह का एकमात्र प्रसिद्ध इतिहासकार अब्बास खाँ सरवनी था जिसे शेरशाह सूरी का संरक्षण प्राप्त था। सरवनी अकबर के दरबार में रहा। उसने शेरशाह के लिए तारीख–ए–शेरशाही और अकबर के लिए तारीख–ए–अकबर शाही पुस्तक लिखी। तारीख–ए–शेरशाही में 1539 ई0 तक का वर्णन है।

बाबर –

बाबर ने अपनी मातृभाषा तुर्की में अपनी आत्मकथा बाबरनामा या तुजुक–ए–बाबरी लिखी। यह भी तीन भागों में विभाजित है। इसका अन्तिम भाग भारत से सम्बन्धित है।

गुलबदन बेगम –

बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम ने भी हुमायूँ का इतिहास लिखा है। उसने अकबर की प्रार्थना पर हुमायूँनामा की रचना की। इसमें बाबर का संक्षिप्त और हुमायूँ का विस्तार से विवरण है।

ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद हरबी –

ख्वाजा निजामुददीन अहमद ने हुमायूँ को राजगद्दी दिलवाने में उसकी मदद की। उसने अकबर के शासनकाल में तबाकत–ए–अकबरी की रचना की, जो 1593 ई0 में पूरी हुई। इसमें 1593 ई0 तक के भारत में मुसलमानों के इतिहास का वर्णन है। यह सैयद और लोदी काल के लिए महत्त्वपूर्ण

पुस्तक है। वाक्यात–ए–मुश्तकी में उसने लोदी और सूर शासकों की रोचक कहानियों और घटनाओं का वर्णन किया है।

मुहम्मद कासिम हिन्दुशाह अस्तराबादी –

इन्हें फरिश्ता के नाम से जाना जाता है। ये 1565–98 ई0 में अहमदनगर के सुल्तान मुर्तजा निजामशाह की सेवा में गए, इसके बाद बीजापुर पहुँच गए। फरिश्ता ने गुलशान–ए–इब्राहिमी, जिसे तारीख–ए–फरिश्ता कहा जाता है, लिखी। यह पुस्तक इब्राहिम आदिलशाह को भेंट की गई, तब इसे तारीख–ए–नोरसनामा कहा गया। यह दक्खन के सुल्तानों के इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।

इनायत खाँ –

यह शाहजहाँ के दरबार का उच्च अधिकारी था। इसने शाहजहाँनामा के नाम से शाहजहाँ की जीवनी लिखी, जिसमें उसके प्रारम्भिक तेरह वर्ष के शासनकाल का वर्णन है। शाहजहाँनामा के नाम से दूसरी पुस्तक मोहम्मद सादिक खाँ ने लिखी। इसने शाहजहाँ के सम्पूर्ण शासनकाल की घटनाओं को लिपिबद्ध किया है।

मिर्जा मोहम्मद काजिम –

मिर्जा मोहम्मद काजिम को औरंगजेब ने मुंशी नियुक्त किया था। इसकी पुस्तक मासिर–ए–आलमगीरी में औरंगजेब के इतिहास का वर्णन है।

ईश्वर दास नागर –

ईश्वर दास नागर एक मुगल प्रशासनिक अधिकारी था। वह जोधपुर में नियुक्त था। उसने 1698 ईव तक की औरंगजेब के शासन की घटनाओं का विवरण फुतुहात–ए–आलमगीरी में दिया है। इसमें राजपूताना और मालवा की घटनाओं का भी वर्णन है।

निकोलो कोण्टी –

निकोलो कोण्टी इटली का निवासी था जिसने विजयनगर साम्राज्य की यात्रा की। वह विजयनगर देवराय प्रथम के शासनकाल में 1420–21 ई0 में पहुँचा। उसने अपनी यात्रा के विवरणों को लेटिन भाषा में लिखा। मूल विवरण खो चुके है। उसने विजयनगर साम्राज्य के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी दी है।

अब्दुर्रज्जाक –

अबदुर्रज्जाक ईरान के शाह का राजदूत बनकर कालीकट के जेमोरीन के पास आया था। अब्दुर्रज्जाक ने 1443 ई0 में विजयनगर साम्राज्य की यात्री की। विजयनगर की विशालता देखकर अब्दुर्रज्जाक अचम्भित हुआ। इस शहर की विशालता के सम्बन्ध में उसने टिप्पणी दी कि इतना विशाल शहर न पहले कभी उसने देखा न सुना। उसका कहना था कि पृथ्वी पर इतना विशाल दूसरा नगर था ही नहीं। यह नगर एक के बाद एक सात दीवारों से सुरक्षित था। उसने विजयनगर की प्रशासन व्यवस्था और सामाजिक जीवन का भी चित्रण किया है।

अथनेसियस निकितिन –

निकितिन रूस का घोड़ों का सौदागर था। वह व्यापार के सिलसिले में दक्षिण भारत आया और बहमनी साम्राज्य में कुछ वर्ष रहा। उसने लम्बे समय तक बीदर में निवास किया। उसने बहमनी राज्य की सेना और सामाजिक दशा का वर्णन किया।

बारबोसा –

बारबोसा पुर्तगाली अफसर था, जो भारत में पुर्तगाली सरकार की सेवा में 1500 से 1516 इ0 तक रहा। 1518 ई0 में वह वापिस चला गया और

पुर्तगाल जाकर उसने विजयनगर साम्राज्य के विषय में लिखा। उसकी पुस्तक का नाम – **The Book of Duarte Barbosa** था।

लुडविको डी कर्थेमा –

वह प्रसिद्ध सैनिक और प्रसिद्ध यात्री था जिसे पुर्तगालियों में नाइट की उपाधि से विभूषित किया। उसने भारत की यात्रा की और मुख्यतः विजयनगर साम्राज्य के विषय में लिखा। उसकी यात्रा का विवरण उसकी पुस्तक **The Itinerary of Luduico di varthema** में दिए गए हैं।

सीजर फ्रेडरिक –

पुर्तगाली यात्री फ्रेडरिक सीजर ने तालीकोटा के युद्ध (1565 ई0) के बाद विजयनगर की यात्रा की और वहाँ की दुर्दशा का वर्णन किया ।

डोमियो पायस –

वह महान पुर्तगाली यात्री था जिसने कृष्णदेवराय के शासनकाल में विजयनगर की यात्रा की। पायस विजयनगर की विशालता और प्रसिद्धि का प्रत्यक्ष गवाह था उसने आँखों से जो देखा '**Narrative of Domingo Paes**' में लिख दिया। पायस ने लिखा– **"विजयनगर रोम के बराबर बड़ा शहर है। विश्व में इससे अधिक खूबसूरत कोई दूसरा नगर नहीं है।"**

नुनिज –

नुनिज पुर्तगाल का घोड़ों का व्यापारी था जो तीन वर्ष (1535–37ई0) विजयनगर साम्राज्य में रहा। उसने विजयनगर की स्थापना से लेकर अच्युत देवराय के अन्त तक का वर्णन किया है। राबर्ट सीवेल ने अपनी पुस्तक '**A Forgotten Empire**' में नुनिज के लेखों का विवरण दिया है।

राल्फ फिच –

राल्फ फिज पहला ब्रिटिश यात्री था जिसने आगरा और फतेहपुर सीकरी की यात्रा की। उसने सोलहवीं शताब्दी में भारत की व्यापार दशा का वर्णन किया है।

जॉन लिस्कोटन –

वह डच यात्री था। उसने अपनी यात्राओं का विवरण '**The Uoyage of Jhon Hughen Von-Linschotten to the East Indies**' में दिया है। इसमें उसने सोलहवीं शताब्दी की दक्षिण भारत की आर्थिक दशा का विवरण दिया है।

विलियम हाकिंस –

विलियम हाकिंस इंग्लैण्ड के राजा जेम्स प्रथम का भेजा गया राजदूत था, जो 1608 ई0 में जहाँगीर के दरबार में पहुँचा। वह 1611 ई0 तक जहाँगीर के दरबार में रहा। उसने जहाँगीर के शासनकाल की महत्त्वपूर्ण जानकारी दी है।

थामस रो –

यह ब्रिटिश दूत था जो 1615 ई0 में जहाँगीर के दरबार में आया। उसने जहाँगीर के साथ माण्डू और अहमदाबाद की यात्रा की। उसने मुगल साम्राज्य और अपनी यात्रा का विवरण अपनी पुस्तक '**A Uoyage to East Indies**' में दिया है। उसने मुगल दरबार में होने वाले षड्यन्त्रों और भ्रष्टाचार के विषय में लिखा है।

पीटर मुण्डी –

पीटर मुण्डी शाहजहाँ के शासनकाल में भारत की यात्रा करने वाला इटली का यात्री था। उसने तत्कालीन समाज का चित्र खीचा है।

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 बोध प्रश्न

1.6 सहायक ग्रन्थ

इकाई : 03 : आधुनिक भारतीय इतिहास लेखक

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.0 प्रस्तावना

3.2 आधुनिक भारतीय इतिहास लेखक

3.2.1 रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर (1837–1925)
3.2.2 रोमेश चन्द्र दन्त (1848–1909)
3.2.3 काशी प्रसाद जायसवाल (1881–1937)
3.2.4 राधा कुमुद मुखर्जी (1880–1963)
3.2.5 हेमचन्द्र राय चौधरी (1892–1957)
3.2.6 गोबिन्द सखाराम सरदेसाई (1865–1959)
3.2.7 यदुनाथ सरकार (1870–1958)
3.2.8 एस. कृष्णास्वामी आयंगर (1871–1953)
3.2.9 डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार (1888–1980)
3.2.10 दामोदर धर्मानन्द कौशाम्बी (1907–1966)
2.2.11 शफात अहमद खाँ

3.3 सारांश

3.4 शब्दावली

3.5 बोध प्रश्न

3.6 सहायक ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- आधुनिक भारत के इतिहासकारों के विषय में।
- आधुनिक भारत के प्रमुख इतिहासकारों के इतिहास–दर्शन के विषय में।

3.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में भारत के इतिहास लेखन का कार्य पाश्चात्य इतिहासकार साम्राज्यवादी भावना से ओत–प्रोत होकर कर रहे थे। उन्होंने ब्रिटिश सभ्यता की प्रशंसा और भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत किया। इसी क्रम में भारतीय इतिहास लेखकों ने प्रतिक्रिया स्वरुप राष्ट्रीय चेतना एवं राष्ट्रप्रेम की भावना से प्रेरित होकर इतिहास लेखन का कार्य प्रारम्भ किया और इन्होंने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की मान्यता एवं मूल्यता को विभिन्न तर्को एवं एवं तथ्यों के साथ स्थापित किया। निम्नलिखित कुछ प्रमुख इतिहासकारों के विषय में विवरण प्रस्तुत है।

3.2 आधुनिक भारतीय इतिहास लेखक

3.2.1 रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर (1837–1925)

भारत के प्रथम आधुनिक इतिहासकार रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का जन्म 1837 ई0 में महाराष्ट्र प्रान्त के रत्नागिरि में हुआ था। रत्नागिरि से प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के बाद उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए बम्बई के एलफिंसटन कॉलेज में प्रवेश लिया। अपनी प्रतिभा, लगन एवं योग्यता के बल पर वे वहीं एलफिंटन कॉलेज में प्राचीन भाषाओ के प्रोफेसर बने। अपनी विद्वता के बल पर उन्होनें संस्कृत एवं प्राकृत व्याकरण, धर्म एवं दर्शन के साथ–साथ ऐतिहासिक अध्ययन के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य

किया। उनके द्वारा अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों एवं शोध पत्रों का कार्य किया गया था।

प्रमुख ग्रन्थ एवं शोध पत्रः–''द अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन'' (1884) बाम्बे गजेटियर के एक भाग के रुप में प्रकाशित हुआ। यह कृति प्राचीन काल से मुसलमानों की विजय तक पश्चिमी भारत का एक व्यापक ऐतिहासिक विवरण प्रदान करती है। ''ए पीपुल इन टू दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'' (1900) सर्वप्रथम जनरल ऑफ दि बाम्बे ब्रान्च द रायल एशियाटिक सोसायटी से प्रकाशित हुआ। इसमें मौर्य साम्राज्य के प्रारम्भ से गुप्त साम्राज्य के अन्त तक का एक राजनैतिक इतिहास लिखा गया है। ''वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजियिस सिस्टम (1913)। यह एक धार्मिक पुस्तक थी। शोधपत्रों में सर्वप्रथम ''दि क्रिटिकल कम्परेटिव एण्ड हिस्टोरिकल मेथड ऑफ इन्क्वायरी ऐज एल्पाइड टू संस्कृत स्कालरशिप एण्ड फिलोलॉजी एण्ड इण्डियन आर्कियोलॉजी'' आर0जी0 भण्डारकर 19वीं सदी के विद्वान रांके के इस सूत्र वाक्य से प्रभावित थे कि इतिहासकार का कार्य अतीत का वर्णन उसी रुप में करना जैसा वह वस्तुतः था। इतिहास लेखन में भण्डारकर ने न्यायाधीश पद्वति को अपनाने की स्वीकृति प्रदान की थी। किसी विषय पर लिखने से पूर्व वे सभी उपलब्ध साक्ष्यों की समीक्षा, साक्ष्यों का मूल्य एवं साक्ष्यों की तुलनात्मक विश्वसनीयता सभी दृष्टियों से आश्वस्त होने पर ही एक न्यायाधीश की तरह लिखते थे। उन्होंने अपने शोध के आधार पर विधवा–विवाह का समर्थन किया और जाति प्रथा एवं बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरतियों एवं कुप्रथाओं का खण्डन किया। इस प्रकार से वे एक निष्पक्ष, मौलिक तथा भारतीय इतिहासकार थे। उन्होंने अभिलेखों का मूल पाठ पाठान्तर एवं व्याख्या को एक नयी दिशा प्रदान की और आधुनिक इतिहासकारों को नया मार्ग दिया।

इतिहास–दर्शन– आर.जी. भण्डारकर निश्चित रूप से एक निष्पक्ष एवं मौलिक इतिहासकार थे। उनका दर्शन था कि इतिहासकार को एक न्यायाधीश की

तरह कार्य करना चाहिए। जिस प्रकार एक न्याायाधीश न्याय देने से पूर्व साक्ष्यों का सम्यक परीक्षण एवं मूल्यांकन करता है, उसी प्रकार इतिहासकार को भी अतीत का वर्णन करने से पूर्व तथ्यों एवं साक्ष्यों का सम्यक मूल्यांकन करना चाहिए। उसे वस्तुनिष्ठ एवं निष्पक्ष होकर अतीत का वर्णन करना चाहिए।

3.2.2 रोमेश चन्द्र दन्त (1848—1909)

रोमेश चन्द्र दन्त का जन्म पश्चिम बंगाल प्रान्त के कोलकाता में 1848ई0 में हुआ था। भारतीय सिविल सेवा के अधिकारी और संस्कृत के विद्वान रोमेश चन्द्र दन्त 1868ई0 में आई.सी.एस. की परीक्षा देने इंग्लैण्ड गए तथा 1869 ई0 में परीक्षा में तीसरा स्थान पाकर उत्तीर्ण हुए। 1871ई0 में भारत आए और प्रशासनिक पदों का कार्यभार संभाला।

प्रमुख ग्रंथः—''ए हिस्ट्री ऑव सिविललाइजेशन इन एंशियंट इण्डिया'' इस पुस्तक के तीन खण्ड थे। 'सिस्टर निवेदिता' के अनुसार यह पुस्तक ''भारत और पूरे संसार के समक्ष राष्ट्रीय गरिमा का एक आलोकन था। 'इकोनामिक हिस्ट्री ऑव इण्डिया'' यह पुस्तक दादा भाई नौरोजी के **ड्रेन थ्योरी** के बाद प्रकाश में आई और उसने तुलनात्मक रुप से गहनता से बिटिश शासन की प्रकृति की छानबीन की। उन्होने भारत की समस्या का मूल कारण कृषि सम्बन्धी समस्या को माना। उन्होंने भूमिकर के अत्यधिक आरोपण पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि ब्रिटिश औपनिवेशक अर्थव्यवस्था का दोहरा उद्देश्य ब्रिटिश उद्योग धन्धों के लिए कच्चे माल का उत्पादन की खपत था। उन्होंने यह परामर्श दिया कि ''मैनचेस्टर से प्राप्त जनादेश से बचना चाहिए'' और संरक्षण की नीति अपनानी चाहिए। उन्होने ब्रिटिश आर्थिक नीतियों का घोर विरोध किया। उन्हीं के प्रयास से ही आर्थिक निकासी की आलोचना राष्ट्रीय आन्दोलन का आर्थिक मंच बन गई।

3.2.3 काशी प्रसाद जायसवाल (1881–1937)

डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल का जन्म उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में सन् 1881ई0 में हुआ था। वे वैश्य वर्ण के एक धनाढ्य व्यापारी परिवार में उत्पन्न हुए थे। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा नगर के अच्छे विद्यालय में प्राप्त करने के पश्चात 'लंदन मिशन स्कूल' के छात्र के रूप में प्रवेश लिया। और उच्च शिक्षा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से इतिहास विषय के साथ एम0ए0 की उपाधि धारण की और बाद में 'बार–एट–लॉ' की पदवी भी प्राप्त की।

प्रमुख कृतियाँः–'हिल्दू पॉलिटी (1924) यह ग्रन्थ उनके शोध पत्रों का संग्रह था। इस पुस्तक में शिशुनाग, मौर्य एवं गुप्त साम्राज्य के विषय में व्यापक विवरण दिया गया है। 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' राजनैतिक इतिहास के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं चर्चित रचना रही है। इस पुस्तक में 150 AD से 350AD की घटना का विशेष रुप से वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में उन्होंने विशेष रुप से नाग और वाकाटक साम्राज्य काल की घटनाओं को प्रस्तुत किया है। 'इम्पीरियल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (1934) इस पुस्तक में उन्होंने गुप्त एवं उत्तर गुप्तकालीन राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास लिखा है। वे एक देशभक्त, स्वाभिमानी तथा स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे। विदेशी दासता से वह अपने को पृथक रखते थे और इसी भावना से उन्होंने इतिहास लेखन कार्य भी किया। उनकी कृतियों में हिन्दू विचार, दर्शन, धर्म शासन, प्रजातंत्र, गणराज्य, सामाजिक व्यवस्था आदि की श्रेष्ठता को चिन्हित किया गया है। अपने ऐतिहासिक अध्ययन के 25 वर्षो में उन्होंने भारतीय इतिहास लेखन के क्षेत्र में जो मौलिकता प्रदान की है, वह एक मार्ग–दर्शक के रुप में सदैव विद्यमान रहेगी और जिसे हम उनके इतिहास दर्शन के रुप में स्वीकार करते हैं।

3.2.4 राधा कुमुद मुखर्जी (1880–1963)

राधा कुमुद मुखर्जी का जन्म बंगाल प्रान्त के बरहमपुर में 1889 ई0 में हुआ था। उन्होंने कोलकाता विश्वविद्यालय से 1915ई0 में पी0एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की। अपना शिक्षक जीवन कोलकाता के रिपन कॉलेज तथा बिशप कॉलेज से प्रारम्भ किया। बाद में काशी, मैसूर और लखनऊ विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के प्रोफेसर रहे। उन्होने बंगाल भू–राजस्व आयोग के सदस्य के रुप में भी काम किया। 1952–1958 तक राज्य सभा के सदस्य भी रहे थे और भारत सरकार ने उन्हें पद्यभूषण जैसे प्रतिष्ठत पुरस्कार से सम्मानित भी किया था।

प्रमुख कृतियाँः–'द हिस्ट्री ऑफ इण्डियन शिपिंग एण्ड मेरीटाइम एक्टिविटी फ्राम दी अर्लिस्ट टाइम्स' (1912) पुस्तक में प्राचीनतम काल से मुगल काल के अंत तक भारतीयों की सामुद्रिक गतिविधियों के सभी रुपों पर प्रकाश डाला गया है। 'लोकल सेल्फ–गवर्नमेंट इन एशियंट इण्डिया' पुस्तक की सराहना लॉर्ड ब्राइस, लॉर्ड हार्डेन और ए.बी. कीथ द्वारा की गई है। 'फण्डामेंटल यूनिटी ऑफ इण्डिया (1914) पुस्तक में भौगोलिक एवं राजनैतिक संकल्पनाओं के वैविध्य और संस्कृत की एक साझी निधि का वर्णन है। 'मेन एण्ड थॉट इन एशिएण्ट इण्डिया' में मुखर्जी जी ने उन्होने चित्र प्रस्तुत किया है। 'हिन्दू सिविलाइजेशन' में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का वर्णन मिलता है। वे सच्चे राष्ट्रवादी इतिहासकार थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का गहनता से अध्ययन किया और उसमें व्याप्त गुणों को सबके सामने बड़े मार्मिक एवं तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया। उनके लेखों में विभिन्नता में एकता का सार स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

3.2.5 हेमचन्द्र राय चौधरी (1892–1957)

हेमचन्द्र राय चौधरी का जन्म 08 अप्रैल 1892 बरिसल बंगाल प्रान्त में हुआ था। बरिसल वर्तमान समय में बांग्लादेश में पड़ता है। उन्होनें 'स्कॉटिश चर्च कॉलेज कोलकाता से शिक्षा ग्रहण की थी। हेमचन्द्र राय चौधरी 1918

ई0 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक होने से पूर्व विद्यालय और महाविद्यालय में एक शिक्षक के रुप में अपनी कुशाग्र प्रतिभा की छाप छोड़ चुके थे। वे 1952ई0 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय से जुड़े रहे और 1957ई0 में उनकी मृत्यु हो गई।

प्रमुख शोध पत्र एवं कृतियाँः—'द पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एशिएन्ट इण्डिया फ्रॉम दी एक्सेसन ऑफ परिक्षित टु दी एक्सटिंक्शन ऑफ द गुप्त एम्पायर'' (1923) पुस्तक दो प्रमुख भाग में लिखी गई है। प्रथम भाग में महाभारत युद्ध के बाद परीक्षित के राज्यारोहण ई0पू0 9वीं शताब्दी से छठीं शताब्दी में मगध के श्रेणिक बिम्बिसार के राज्यारोहण पर प्रकाश डालते है। 'पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशिएंट इण्डिया' के द्वितीय भाग में बिम्बिसार के राज्यारोहण से गुप्त साम्राज्य के पतन तक के इतिहास का वर्णन है। 'मैटीरियल्स फार दी स्टडी ऑफ अर्ली स्टडी ऑफ द वैष्णवाइट सेक्ट' (1936) इस कृतिकी सर जार्ज ग्रियर्सन गार्बे और ए.बी. कीथ ने प्रशंसा की है। राय चौधरी ने आर.सी. मजूमदार और के.के.दन्त के साथ सह लेखन के रुप में 'एन एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' भी लिखा था।

3.2.6 गोबिन्द सखाराम सरदेसाई (1865—1959)

गोबिन्द सखाराम सरदेसाई का जन्म 17मई 1865ई0 में कोंकण तत्कालीन महाराष्ट्र राज्य के गोबिल ग्राम में हुआ था। इनके पितामह ने छत्रपति शिवाजी पेशवा, प्रतिनिधि इत्यादि की सेवा की गोबिन्द सखाराम का बाल्यकाल काफी कठिनाई से बीता। इनकी शिक्षा रत्नागिरि फर्ग्युसन कॉलेज पूना और एलफिंस्टन कॉलेज मुम्बई में हुई थी। 1888 ई0 में बी0ए0 की डिग्री प्राप्त करने के बाद बड़ौदा रियासत में नौकरी कर ली थी।

प्रमुख कृतियाँः—गोबिन्द सखाराम सरदेसाई की सबसे बड़ी उपलब्धि मराठा इतिहास पर केन्द्रित उनकी पुस्तकों की श्रृंखला थी। जिसे 'मराठी रियासत' नाम दिया गया। यह आठ खण्डों में विभाजित मराठी में लिखी गई प्रारम्भ से लेकर 1848 तक मराठों के पूरे इतिहास को लिपिबद्ध किया गया है।

''हैडबुक दु द रेकार्डस इन द एलिएनेशन ऑफिस पूना'' ''शाही, शिवाजी, सम्भाली, राजाराम की जीवनियाँ'' मराठा इतिहास का अपने लम्बे अध्ययन का निचोड़ सर देसाई जी ने अपनी पुस्तक 'न्यू हिस्ट्री ऑव द मराठाज' में छापा। यह ग्रन्थ मराठा इतिहास की पुरानी और नवीन अध्ययन पद्धति के बीच की कड़ी है।

3.2.7 यदुनाथ सरकार (1870–1958)

यदुनाथ सरकार का जन्म 10 दिसम्बर 1870 ई0 में वर्तमान बांग्लादेश मे राजशाही से 80मील उत्तर पूर्व करछमरिया गाँव में हुआ था। एक असाधारण रुप से प्रतिभासम्पन्न छात्र यदुनाथ सरकार ने अंग्रेजी और इतिहास विषयों में ऑनर्स की डिग्री हासिल की थी। 1892 ई0 में उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम0ए0 की डिग्री प्राप्त की थी। 1893 से 1926 तक वे अंग्रेजी तथा इतिहास विषयों के शिक्षक थे। दो वर्ष तक वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे थे।

प्रमुख शोध पत्र एवं कृतियाँ– 'इण्डिया ऑफ औरंगजेब टोपोग्राफी स्टेटिस्टिक्स ऐण्ड रोड्स'' (1901) यदुनाथ सरकार की यह पहली पुस्तक थी। सामान्य अर्थ में इतिहास की पुस्तक नहीं थी बल्कि देश के भौतिक पक्षों का विवरण थी। ''औरंगजेब का इतिहास'' प्रथम दो खण्ड 1919 में और पाँचवा तथा अन्तिम खण्ड 1928ई0 में छापा गया। 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' (1919) ई0 में प्रकाशित हुई यदुनाथ सरकार ने विलियम इर्विन की दो पुस्तकों का सम्पादन किया। 1922 ई0 में परवर्ती मुगलों पर विलियम इर्विन की अधूरी पुस्तक को पूरी किया और उन्होंने 'नादिरशाह' और 'द फॉल ऑफ द मुगल एम्पायर' के रुप में इर्विन के काम को पूरा किया। 'मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया6 (1960) यह पुस्तक सरकार के मरणोपरांत प्रकाशित हुई। यदुनाथ सरकार की तुलना रैंक और मॉमसेन से की जा सकती है। वे निःसंदेह अपने काल के सबसे महान भारतीय इतिहासकार और विश्व के सबसे बड़े

इतिहासकारों में से एक थे। उन्होंने सशक्त व्यक्तित्व और विद्वतापूर्ण कार्यो में ईमानदार और शोधपूर्ण इतिहास लेखन की एक परम्परा कायम की।

3.2.8 एस. कृष्णास्वामी आयंगर (1871–1953)

एस. कृष्णास्वामी आयंगर एक भारतीय इतिहासकार शिक्षाविद् के साथ एक वैज्ञानिक थे। इनका जन्म 15 अप्रैल 1871ई0 में तमिलनाडु प्रान्त के तंजावुर जिले में सक्कोट्टई गाँव में हुआ था। प्रारम्भ एस. कृष्णास्वामी आयंगर भौतिकी और गणित के छात्र थे। बाद में 1899 ई0 में इन्होंने विषय में एम0 ए0 की डिग्री प्राप्त की। इन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय में स्थापित प्राप्त की। इन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय में स्थापित भारतीय इतिहास और पुरातत्व विभाग में अध्यक्ष भी रहे थे।

प्रमुख कृतियाँ–'एंशिएंट इण्डिया' इस पुस्तक में गुप्त इतिहास, हूण आक्रमण नाकाटक वंश और गुर्जर वंश और गुर्जर साम्राज्य जैसे विषयों पर व्याख्यानों का एक संकलन है। 'सम कांट्रीन्यूशंस ऑफ साउथ इण्डिया टु इण्डियन कल्चर' में आयंगर जी ने दक्षिण भारतीय संस्कृत के विशेष चरित्र पर बल दिया। 'हिस्ट्री ऑफ तिरुपति' दो खण्डों में प्रकाशित है। इसमें अत्यन्त पावन धर्मस्थल का एक निष्पक्ष विवरण प्रस्तुत किया गया है। कृष्णास्वामी आयंगर का मानना था कि इतिहास की वास्तविक प्रक्रिया को लिपिबद्ध करने में यदि बाह्य कारकों का तनिक भी हस्तक्षेप होता है या यदि अन्य प्रयोजनों चाहे वे कितने व्यापक क्यों न हो की सिद्धि के लिए इसका प्रयोग किया जाता है तो इतिहास के अध्ययन का वास्तविक महत्व समाप्त हो जाएगा।

3.2.9 डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार (1888–1980)

डॉ0 रमेश चन्द्र मजूमदार का जन्म वर्तमान बांग्लादेश में फरीदपुर जिले के खान्दापार गाँव में 04 दिसम्बर 1888ई0 को हुआ था। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम0ए0, पी0एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की थी। वे

कलकत्ता विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर और ढाका विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे।

प्रमुख कृतियाँ–डॉ. रमेश चन्द्र मजूमदार अपने प्रारम्भिक जीवन में प्राचीन भारत में सामूहिक जीवन' 'बंगाल का इतिहास' और जावा पर एक पुस्तक लिखी। 'आउटलाइन ऑफ इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन (1927) का फलक अत्यंत व्यापक है। 1971 तक इस रचना के छह संस्करण आ चुके थे। 'एंशियट इण्डियन कॉलोनीज इन द फार ईस्ट' इस पुस्तक में दक्षिण–पूर्वी एशिया के भारतीयकृत राज्यों के इतिहास एवं संस्कृति पर गूढ़ अनुसंधान है। मजूमदार के के.के.दत्ता और एच.सी. राय चौधरी के साथ सहलेखन के रुप में 'एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' लिखा। हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल' इसका संपादन 11 भागों में है। इसमें प्रारम्भिक काल से महमूद तक का विवरण दिया गया है। साथ ही भारतीय इतिहास को तीन काल खण्डों में विभाजित किया गया है7

प्राचीन काल प्रारम्भ से 1000ई0 तक **मध्य काल** 1000ई0 से 1818ई0 तक

आधुनिक काल 1818ई0 से आगे की घटना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को नए अर्थो में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अनेक खण्डों में रचना की। 'हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट' इसमें उन्होंने यह बताने का प्रयाास किया है कि कौन सी घटनाएँ घटित हुई हैं। उन्होंने हेरास स्मारक भाषण माला में इतिहास लेखन से सम्बद्ध जो व्याख्यान दिया वह बाद में **'हिस्टारियोग्राफी इन मार्डन इण्डिया'** नाम से प्रकाशित हुआ। डॉ. रमेश चन्द्र मजूमदार इतिहास के विषय में लिखते हैं कि– इतिहास का सम्बन्ध आंतरिक सत्य के प्रति जिज्ञासा है। सत्य का अन्वेषण ही इतिहास है। उनकी दृष्टि से सत्य केवल सत्य है और पूर्ण सत्य ही इतिहास का लौह ढाँच होना चाहिए

3.2.10 दामोदर धर्मानन्द कौशाम्बी (1907–1966)

दामोदर धर्मानन्द कौशाम्बी का जन्म 31 जुलाई 1907 ई0 में गोवा में हुआ था। जेम्स मिल और विंसेट स्मिथ के बाद अगर किसी एक लेखक ने भारतीय इतिहास लेखन को प्रभावित किया तो वे हैं डी0डी0 कौशाम्बी। डॉ0 कौशाम्बी की मदद से इतिहास हैं जिन्होंने पुरातत्व और मानवशास्त्र की मदद से इतिहास अध्ययन को आगे बढ़ाया है। डॉ0 कौशाम्बी में अभिरुचि लेने लगे। डॉ0 कौशाम्बी प्रधानतः एक गणितज्ञ थे लेकिन बाद में वे इतिहास में मार्क्सवादी इतिहास लेखन के मार्गदर्शक माने जाते हैं। इन्हीं के प्रयासों से ही भारतीय इतिहास में मार्क्सवादी चरण का प्रारम्भ होता है। मार्क्सवादी चरण से हमारा आशय यह नहीं है कि सभी लेखक मार्क्सवादी थे किन्तु कमोवेश भौतिकवादी व्याख्या को ऐतिहासिक प्रघटनाओं को जानने समझने की एक पद्धति के रुप में अपनाया।

प्रमुख शोधपत्र एवं कृतियाँः–

2.2.11 शफात अहमद खाँ

शफात अहमद खाँ का जन्म उत्तर प्रदेश राज्य के मुरादाबाद में मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे इंग्लैण्ड गए थे। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष भी रहे थे। उन्हें 1941ई0 में दक्षिण अफ्रिका में भारत का उच्चायुक्त नियुक्त किया गया था। प्रारम्भ में इन्होंने सम्प्रदायिक राजनीति में रुचि दिखाई थी लेकिन कालान्तर में रुढ़िवादी मुसलमानों के कोपभाजन बन गए थे। उदारवादी राष्ट्रवादी नीतियों के कारण साम्प्रदायिक कट्टरता का सामना करना पड़ा और धार्मिक उन्माद की लहर में उन पर चाकू से घातक हमला हुआ और इसके कुछ समय पश्चात इनका इंतकाल हो गया।

प्रमुख कृतियाँ—'ईस्ट इण्डिया ट्रेड इन द सेवेंटीथ सेंचुरी' में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वाणिज्यवाद का सिद्धान्त जो इंग्लैण्ड में विकसित किया जा रहा था के मूल कारण ईस्ट इण्डिया का व्यापार ही था।

'एंग्लो पुर्चुगीज नेगोशिएंशंस रिलेटिंग टु बाम्बे' इस पुस्तक में एग्लो पोर्चुगीज नेगोशिएशंस पुर्तगालियों द्वारा अंग्रेजों को बॉम्बे सौपे जाने का एक प्रमाणिक विवरण है। ''सोर्सेज फॉर द हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया इन द सेवेंटीथ सेंचुरी' शफात अहमद खाँ का इतिहास के प्रति विचार था कि इतिहासकार के कार्य हैं उसे पूर्वधारणा, राजनीतिज्ञों, भेरीघोषों तथ दलीयता के विशेष तर्क—वितर्क से भी मुक्त होना चाहिए। शफात अहमद खाँ जी रैंक एक्टन धारा के इतिहास थे जिनका दस्तावेजों की अखण्ड सत्यता में गहरा विश्वास था। इतिहास दस्तावेजों का अध्ययन मात्र नहीं है बल्कि किसी युग के अवचेतन आवेगों का गहन अध्ययन है।

3.3 सारांश

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक भारत के इतिहासकारों के द्वारा आधुनिक भारत के इतिहासकारों के विषय में विश्लेषणात्मक तरीके से बताने का प्रयास किया गया है।

3.4 शब्दावली

3.5 बोध प्रश्न

3.6 सहायक ग्रन्थ

इकाई : 04 –प्रमुख पाश्चात्य इतिहासकार

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 प्रमुख पाश्चात्य इतिहासकार

4.2.1 जोहान गोटफ्रीउ हेरडर (1744–1803)

4.2.2 जेम्स स्टुअर्ड मिल (1806–1873)

4.2.3 लियोपोल्ड वान रांके (179571886)

4.2.4 जनरल अलेक्जेण्डर कनिंघम (1814–1893)

4.2.5 विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ (1843–1920)

4.2.6 रॉबिन जार्ज कालिंगवुड (1889–1943)

4.2.7 एडवर्ड हैलेट कार (1892–1982)

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 बोध प्रश्न

4.6 सहायक ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- प्रमुख पाश्चात्य इतिहासकारों के विषय में।
- प्रमुख पाश्चात्य इतिहासकारों के इतिहास लेखन की दृष्टिकोण के विषय में।

4.1 प्रस्तावना

पाश्चात्य इतिहासकार से तात्पर्य यूरोप महाद्वीप में उत्पन्न हुए इतिहासकारों से है। यूरोप मे ही इतिहास लेखन की नीव पड़ी और यही पर इतिहास लेखन की परम्परा का पूर्ण रुप से विकास हुआ। यूरोप में इतिहास लेखन का कार्य क्रमबद्ध रुप से चरणबद्ध तरीके से किया जाता था और उन्हीं की देन है कि आज इतिहास का एक स्वतंत्र विषय के रुप में अध्ययन किया जाता है। उन लोगों ने धर्म, दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र,समाजशास्त्र आदि जो भी विषय अपनी लेखनी चलाने हेतु चयन किया उन सब में ऐतिहासिक व्याखाएँ प्रस्तुत की थीं और इसलिए उनके इतिहास दर्शन का क्षेत्र अत्यधिक लोकप्रिय, विस्तृत एवं वैज्ञानिक हो चला था।

4.2.1 जोहान गोटफ्रीउ हेरडर (1744–1803)

जोहान गोटफ्रीड हेरडर का जन्म 25 अगस्त 1744 ई0 में एक निर्धन परिवार में हुआ था। हेरडर का पालन–पोषण धार्मिक वातावरण में हुआ था। अपने पिता की बाइबिल और गीत पुस्तक से खुद को शिक्षित किया। 1962 ई0 में निग्सबर्ग विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। और प्रसिद्ध दार्शनिक इमैनुअल काण्ट के शिष्य बन गए। 1769 ई0 में अपनी फ्रांस यात्रा के समय अनेक नवीन विचारधारा के दार्शनिकों का सान्निधय प्राप्त किया था। उनके प्रभाव से वह बहुमुखी प्रतिभा वाला बन गया था और दर्शन, इतिहास,

समाजशास्त्र, भाषाशास्त्र, साहित्य, कविता, प्रचार, देवशास्त्र. आदि के क्षेत्र में उसने अनेक निबन्ध एवं पुस्तकों की रचना की।

प्रमुख ग्रंथः—'साँग टू सायरस द ग्रैन्डसन ऑफ एस्टीज' (1762)'एस्से ऑन बीइंग' (1764)'ट्रीटाइज ऑन द ऑड' (1764)क्रिटिकल फॉरेस्ट ऑर रिफ्लेक्शंस ऑन द साइंस एण्ड आर्ट ऑफ द ब्यूटीफुल' (1769)हाउ फिलॉसफी कैन बीकाम मोर यूनिवर्सल एण्ड यूजफुल फॉर द बेनीफिट ऑफ द पीपुल' (1765)'ट्रीटाइज ऑन द ओरिजनल ऑफ लैंग्वेज' (1772)'ओल्डेस्ट डाकुमेन्ट ऑफ द हयूमन रेस' (1776)'ऑन द इनफ्लूएन्स ऑफ द ब्यूटीफुल इन द हायर साइंस' (1781)'आइडिया ऑन द फिलॉसफी ऑफ द हिस्ट्री ऑफ मैनकाइन्ड' (1784—1791)'लेटार्स फॉर द एउवान्समेन्ट ऑफ हयूमिनटी' (1791—97)'कांलिगोन' (1800)

इतिहास दर्शन —जोहांन गोटफ्रीड हेडरर 'इमैनुअल काण्ट' और फ्रांस के नवीन विचारधारा के दार्शनिकों से अधिक प्रभावित था, अतएव उसकी रचनाओं में उनके प्रभावों का सम्पुट था। वह काण्ट के इस विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित था कि मानवीय विकास में प्राकृतिक परिस्थितियाँ अधिक प्रभावी हैं। उसने मानवीय इतिहास को समझने के लिए ब्रह्मण्ड में मानव का स्थान प्रकृति के संदर्भ में समझने पर बल दिया। उसके अनुसार 'सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड एक सावयवी शक्ति शरीरी है। इसके भीतर से सूक्ष्म शरारों का जन्म होता है और सौरमण्डल के गर्भ से पृथ्वी तथा पृथ्वी से महाद्वीपों का आर्विभाव होता है। वहाँ पर वनस्पति और उससे जीव—जन्तु बनते हैं। जो बाद में मानव रुप में हो जाते हैं। हेडरर की यह मान्यता चिन्तनशील मानव तक विकास की प्रक्रिया में जलवायु तथा भौगोलिक परिवर्तनों को प्रभुत्वकारक स्वीकार करती है।

हेडरर ने इतिहास और प्रकृति में समन्वय स्थापित किया है और कहा है कि दोनो की प्रक्रिया एक प्रवाह है दोनों के भीतर जीवन और अवयव की समान धाराएँ प्रवाहमान होती है। उनमें पृथकता नहीं है, सभी वस्तुएँ अदृश्य

परिवर्तनों द्वारा एक–दूसरे के पीछे और एक दूसरे के भीतर प्रवाहित रहती है और सभी सृष्टि के शरीरों स्वरुपों और तन्त्रों का जीवन वायु के समान प्रवाहित और द्वीपशिला के समान गतिशील रहता है। और इस प्रकार से इतिहास और प्रकृति दोनों कालमय है, गतिशील है और जीवित भी है। मानव इतिहास भी एक प्रवाह है।

4.2.2 जेम्स स्टुअर्ड मिल (1806–1873)

जेम्स स्टुअर्ड मिल का जन्म 20 मई 1806 ई0 में लन्दन में हुआ था। जे.एस.मिल प्रसिद्ध आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक एवं दार्शनिक चिन्तक, प्रसिद्ध इतिहासकार और अर्थशास्त्री जेम्स मिल का पुत्र था। इसकी शिक्षा एडिननरा में हुई थी। जे.एस.मिल बचपन से ही बड़ा प्रतिभाशाली था और उसने 08 वर्ष की अवस्था में ही प्लेटो एवं अरस्तु के पुस्तकों का अध्ययन कर लिया था। अतः प्रारम्भ से ही वह सृजनशील था। उसकी राजनीतिक अर्थशास्त्र में विशेष रुचि थी। रिकार्डो, ग्रोटे और बेंथम जैसे विद्धान इसके मित्र थे। बड़ा होकर ईस्ट इंडिया कम्पनी में क्लर्क के रुप में भर्ती हुआ और अपनी प्रतिभा के बल पर वह भारत के संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति प्रभावित हुआ और अपने विचारों को एक दिशा प्रदान की।

पुस्तकेः–'हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया' (1818)'ऑन लिबर्टी' (1859)'द सब्जेक्शन ऑफ वोमेन' (1869)

'जेम्स मिल का भारत के प्रति विचारः–जेम्स मिल का पुत्र जेम्स स्टुअर्ड मिल 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के क्लर्क के रुप में भारत आया था और यहाँ आकर 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस पुस्तक में प्रारम्भिक काल कसे 18वीं शताब्दी के अन्त तक का भारत का इतिहास लिखा मिलता है। पुस्तक की प्रशंसा करते हुए मैकाले ने लिखा है कि 'गिबन के बाद यह अंग्रेजी भाषा की सबसे महान कृति है। प्रो0 एच0 एच0 विल्सन ने लिखा है कि यह मिल के कठोर परिश्रम का प्रतिफल है। जेम्स स्टुअर्ड मिल भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति द्वेष की भावना रखता था। इसने

हिन्दुओं से मुसलमानों को अच्छा बताया है। यह हिन्दुओं के प्रति उदारता की भावना रखने वाले अंग्रेजों को सम्मान नही देता था। इसने यूरोपियों को हिन्दुओं से सभी अर्थो में श्रेष्ठ माना है। इसने भारतीय संस्कृति विरोधी भावना से अपना इतिहास लेखन का महान इतिहासकार कहा जाता है। इतिहास दर्शन की प्रवृत्ति को उसने प्रतिपादन भी किया था। अतएव उसके भारत विरोधी होने के बाद भी भारत के आधुनिक इतिहासकारों में उसे सम्मान का स्थान दिया जाता है।

4.2.3 लियोपोल्ड वान रांके (179571886)

लियोपोल्ड वान रांके का जन्म सन् 1795 ई0 में एक मध्यमवर्गीय सम्पन्न परिवार में हुआ था। उनके पिता एक वकील थे। उन्होंने अपनी संतान का पालन–पोषण बहुत ही अच्छे ढंग से किया था। 1814 ई0 में उसने अध्ययन कार्य हेतु लिपजिंग विश्वविद्यालय मे ंप्रवेश लिया और पी0एच0डी0 की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपनी जीविका का साधन अध्यापन कार्य बनाया। उसने फ्रेंकफ में ग्रीक एवं लैटिन पढ़ाने का कार्य आरम्भ किया और बर्लिन विश्वविद्यालय में भी अध्यापन कार्य किया था।

ग्रंथ एवं पत्रिकाः–'हिस्ट्रीज ऑफ रोमन्स एण्ड टिटोनिक' 'आटम एण्ड दि स्पेनिश मोनार्क ऑफ दि सिक्सटीन्थ एण्ड सेवेन्टीज सेंचुरी' 'द हिस्ट्री ऑफ रिवोलूशन इन सर्बिया' 'हिस्ट्री जेटश्रिफ्ट' पत्रिका 'द हिस्ट्री ऑफ पोप्स' 'पर्शियन हिस्ट्री' 'जर्मनस हिस्ट्री' 'इंगलिश हिस्ट्री' 'यूनिवर्सल हिस्ट्री' (1880)

इतिहास दर्शनः–लियोपोल्ड वान रांके ने कहा है कि ऐतिहासिक घटनाओं के सर्वोत्तम स्रोत अभिनेताओं के साक्ष्य हैं न कि इतिहासकारों के उपाख्यान। उसने लिखित दस्तावेजों के महत्व को मानने एवं उनका मूल्यांकन करने पर बल दिया है और बतलाया कि इसके लिए लेखक के व्यक्तित्व का अध्ययन करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उसने किन स्रोतों के आधार पर लिखा है। इन सिद्धान्तों का प्रयोग करके रांके ने यह प्रमाणित किया है कि अनेक स्रोतों जो पहले अतिप्रमाणिक समझे जाते थे वे सर्वथा विश्वसनीय नहीं

थे। रॉके का लेखन कार्य मुख्यतः राजवंशों, युद्धों और संधियों के संदर्भ में था किन्तु राज्य, धर्म, संस्कृति आदि के सामान्यीकरण पर वे ध्यान नहीं दे पाये थे। उनमें वैज्ञानिक प्रवृत्ति का अभाव था और वे पूर्णतः पूर्वाग्राही थे।

रॉके के दृष्टिकोण में विश्व का इतिहास केवल निच्छिन्न घटनाओं का समष्टिमात्र नहीं है। इस दृष्टि से रॉके की विश्वइतिहास की अवधारणा उसके समकालीन जर्मन आर्दशवादी धारणा से बहुत पृथक नहीं है। वह विश्वास नहीं करता था कि ऐतिहासिक घटनाएँ कुछ क्रमबद्ध रुप से घटा करती हैं। इससे सर्वथा स्पष्ट है कि रॉके केवल घटनाओं के यथार्थ वर्णन से ही इतिहास नहीं समझता, यद्यपि घटनाओं के यथावत वर्णन को ही वह महत्वपूर्ण समझता है।

4.2.4 जनरल अलेक्जेण्डर कनिंघम (1814–1893):–

जनरल अलेक्जेण्डर कनिंघम का जन्म 23 जनवरी सन् 1814 ई0 में लंदन में हुआ था। इन्होंने क्राइस्टस हॉस्पिटल से शिक्षा प्राप्त की थी। क्राइस्टस हॉस्पिटल एक बोर्डिंग स्कूल है। अलेक्जेण्डर कनिंघम एक प्रसिद्ध पुरातत्वविद्व थे। वे भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के प्रथम डायरेक्टर थे। कनिंघम महोदय भारत में ब्रिटिश सेवा के रुप में आए। जो यहाँ पर ब्रिटिश सेना के बंगाल इंजीनियर ग्रुप में इंजीनियर थे। जो बाद में भारतीय पुरातत्व, ऐतिहासिक भूगोल तथा इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान के रुप में प्रसिद्ध हुए। इनको भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग का जनक माना जाता है। जॉन स्टुअर्ट मिल जहाँ प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का परिहास किया और कहा कि यूरोपीय इतिहास की तुलना में यह कुछ भी नहीं है, वहीं कनिंघम ने यहाँ के प्राचीन पुरातत्व को विश्व के इतिहास हेतु विश्लेषित करने पर बल दिया था। सन् 1863ईद्ध में लार्ड केनिंग के सम्मुख इन्होंने भारतीय पुरातत्व का महत्व प्रस्तुत किया था, जिसके फलस्वरुप इनकों 450रु0 वेतन और 250 रुपया भत्ता पर सर्वेक्षक के पद पर नियुक्त कर दिया गया था।

प्रमुख पुस्तकेंः—'द एनसिएन्ट जियोग्राफी ऑफ इण्डिया' (1871)'द स्तूप ऑफ भरहुत' (1879) 'बुक ऑफ इण्डियन इराज' (1883) 'क्वाइन्स ऑफ एनसिएन्ट इण्डिया फ्रॉम द अर्लियस्ट टाइम्स डाउन टू द सेवेन्थ सेन्चुरी' (1891)

अलेक्जेण्डर कनिंघम महोदय ने अनुभवों को इन पुस्तकों में वर्णित किया था— 'कार्पस इंसाक्रिपसन्स इण्डिकेरम', 'अशोक के अभिलेख, भारत के सिक्के, भारतीय सम्बतों की पुस्तक, पुरातात्विक सर्वेक्षण विवरण, भिलसा स्तूप, बोधगया आदि। इनके अतिरिक्त इन्होंने अनेक लेख, नोट्स सुझाव भी लिखे जो शासकीय अभिलेखागार में सुरक्षित हैं।

इतिहास दर्शनः—अलेक्जेण्डर कनिंघम का इतिहास—दर्शन तथ्यों एवं साक्ष्यों से भरा पूरा है। वे निराधार कोई बात नहीं करते। अपने इतिहास लेखन में उन्होंने पुरातात्विक साक्ष्यों को ही आधार बनाया था और कवित्व शैली से बहुत दूर रहे थे। किन्तु उनके पुरात्व का क्षेत्र बहुत व्यापक था। उनके अनुसार पुरातत्व मात्र टूटी हुई मुर्तियों, पुराने भवनों तथा टीलों के ध्वंसावशेषों तक सीमित नहीं हैं अपितु विश्व—इतिहास से सम्बद्ध सभी वस्तुओं को समेटती है। वे पुनः कहते हैं कि प्राचीन पुरावशेषों को प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं अपितु उनकी वास्तविक स्थिति का अंकन और विवरण का सही संदर्भो में प्रस्तुत किया जाना भी आवश्यक है। उनका विचार था कि जो भी पुरानवशेष हम प्राप्त करते हैं उनको विश्व—इतिहास के संदर्भ में प्रस्तुत करें। उन्होंने सुझाव दिया कि पुरावशेष प्राचीन भारत के व्यावहारिक जीवन परम्परा प्रथा आदि को कितना प्रकाशित करते हैं, इसकी वस्तुपरक व्याख्या भी होनी चाहिए।

4.2.5 विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ (1843—1920):—

अलेक्जेण्डर कनिंघम की भॉति भारतीय इतिहास में स्नेहानुराग रखने वाले यह दूसरे विदेशी व्यक्ति थे। उनका जन्म 03 जून 1843 ई0 में डबलिन में हुआ था। वे आयरिश थे और अपने पिता की 13 संतानों में से पॉचवें थे। उनके पिता एक्विल स्मिथ प्राचीन अवशेषों में अभिरुचि रखा करते थे,

जिसका प्रभाव आगे चलकर उनके पुत्र विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ पर भी दृष्टिगोचर होता है। विन्सेन्ट आर्थर ने एम0ए0 तक की शिक्षा ट्रिनटी कालेज डबलिन से ही प्राप्त की और आक्सफोर्ड से डी0लिट0 किया था। 1871ई0 में वे आई0सी0एस0 की परीक्षा पास कर चुके थे। उनका विवाह स्लीगो के विलियम किल्फोर्ड की पुत्री मेरी एलिजाबेथ से हुआ था, जिससे उनको तीन पुत्र तथा एक पुत्री थी।

प्रमुख रचनाएँः—'अशोक द बुद्धिस्ट इम्परर ऑफ इण्डिया''द अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' 'कैटलॉग ऑफ द क्वायन्स इन इण्डियन म्यूजियम''ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन' 'द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'

इतिहास दर्शनः—स्मिथ का इतिहास दर्शन व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करता हुआ दिखायी देता है। उनके अनुसार इतिहास का मूल्य और रुचि विशेषतः उस आधार पर निर्भर करती है कि अतीत के द्वारा किस सीमा तक वर्तमान उद्भाषित होता है। इतिहास की उपयोगितावादी व्यावहारिक अवधारणा का अर्थ बतलाते हुए वे कहते हैं कि वर्तमान के ज्ञान के लिए अतीत का एक साधन के रुप में प्रयोग किया जाना चाहिए और भविष्य का नियोजन यह अर्थ रखता है कि उसके लिए इतिहास का व्यावहारिक उपयोग किया जाय।

स्मिथ की ऐतिहासिक पद्धति आधुनिक थी, किन्तु उन्होंने पश्चिमी विचारों से प्रभावित तत्वों को अनावश्यक रुप में इतिहासशास्त्र में भरने का प्रयास किया था फिर भी उनकी यह एक विशेषता ही थी कि उन्होंने साहित्य, ब्राह्मण, बौद्ध, जैन धर्मो के मिथ तथा आख्यानों को अपने इतिहास को तिथि क्रम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनकी ऐतिहासिक पद्धति में वंशावली और नरेशों का विवरण मात्र ही नहीं मिलता अपितु उन्होंने उनका परीक्षण और विश्लेषण भी किया है।

स्मिथ वस्तुतः एक इतिहासकार थे। इस सम्बन्ध में प्रो0 बी0के0 मजूमदार लिखते हैं कि ''एक इतिहास के रुप में स्मिथ का व्यक्तित्व वैज्ञानिक और कलाकार का एकत्र समन्वित था। वे एक वास्तविक अन्वेशषक थे और विषय

की गम्भीरता और कार्य कारण सिद्धान्त पद्धति उनकी मुख्य विशेषता थी,जो एक इतिहासकार के लिए नितान्त आवश्यक है। भारत के 18वीं सदियों की मुख्य घटनाओं को विवरण प्रस्तुत कर स्मिथ ने पश्चिमी देशों को भारतीय इतिहास से अभिज्ञ कराने का अद्‌भुत प्रयास किया था। उन्होनें जो भी कुछ लिया समीक्षात्मक और विश्लेषणात्मक लिखा। इससे भारतीय इतिहासकारों को दिशा बोध में बहुत सुविधा मिली।

4.2.6 रॉबिन जार्ज कालिंगवुड (1889–1943):–

रॉबिन जार्ज कालिंगवुड का जन्म 22 फरवरी 1889ई0 में कार्टमेल ग्रेंज ओवर सैंड्स, लंकाशायर में हुआ था। इन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी और वहीं भौतिक दर्शन के प्रोफेसर नियुक्त हुए थे। कलिंगवुड पर अनेक विद्धानों का प्रभाव पड़ा था। प्रारम्भ में उन्होंने ग्रीन और ब्रेडले के आदर्शवादी विचारों को स्वीकार किया, परन्तु बाद में अपने नये इतिहास दर्शन का विकास किया। प्लेटों को वह अपना प्रिय दार्शनिक मानता था साथ ही विको का प्रभाव अपने पर अधिक मानता था।

शोध पत्रः– रॉबिन जार्ज कालिंगवुड के अनेक शोध पत्र लिखे थे। इन्हीं शोध–पत्रों का संग्रह उनकी मृत्यु के बाद सन् 1945ई0 में पाँच भागों में 'द आइडिया ऑफ हिस्ट्री' नाम से प्रकाशित हुआ है। जिसके चार भागों में तो अन्य विचारकों के सिद्धान्त का आलोचनात्मक अध्ययन है, जबकि पॉचवें भाग में उनके अपने विचार प्रतिपादित हैं।

इतिहास दर्शनः–रॉबिन जार्ज कालिंगवुड ने समस्त इतिहास को विचार प्रधान इतिहास स्वीकार किया है। उनका कहना है कि इतिहास मनुष्य को कार्य करने के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित और विवश भी करता है। यह मानवीय कार्यो का उद्‌गम स्थल है, इसलिए वे इतिहास का अभिप्राय मानवीय मस्तिष्क से प्रभावित विश्व को समझने से लगाते हैं। इतिहास को मनुष्य की कृति मानते हैं और कहते है कि अतीतकालिक मनुष्य के कार्यो को समझने के लिए इतिास सूत्र प्रदान करता है। ज्ञान को दो भागों में विभक्त करते हुए

वे कहते हैं कि प्रकृति का परिचय कराने वाले ज्ञान हो इतिहास कहते हैं। इतिहास में मानवीय कार्यो का अध्ययन है। प्रकृति विज्ञान तथा धर्मशास्त्र की भॉति इतिहास मे विचार प्रधान होता है। एक स्थान पर कॉलिंगवुड ने लिखा है कि इतिहास एक अद्वितीय प्रकार का ज्ञान है तथा यह मानव के सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत है।

इतिहास की उपयोगिता के विषय में कॉलिंगवुड का कहना है कि इससे आत्मज्ञान प्राप्त होता है। इससे ने केवल अन्य लोगों से अपनी विशिष्टताओं की जानकारी होती है अपितु मनुष्य के रुप में अपने स्वभाव को जानने में भी यह सहायता मिलती है। इसमें जब वह यह समझने का प्रयास करता है कि वह क्या कर सकता है तो इसके लिए यह समझना आवश्यक हो जाता है कि उसने क्या किया और इसका ज्ञान उसे इतिहास कराता है इसलिए मनुष्य के लिए सर्वथा हितकर विषय है। कालिंगवुड के इतिहास दर्शन को महत्व देते हुए उनको 20वीं सदी का महान दार्शनिक, इतिहासकार माना गया है।

4.2.7 एडवर्ड हैलेट कार (1892–1982):–

एडवर्ड हैलेट कार का जन्म सन् 1892 ई0 में लंदन में हुआ था। मर्चेण्ट टेलर्स स्कूल लंदन और ट्रिनटी कॉलेज कैम्ब्रिज में शिक्षा प्राप्त करने के बाद 1916 से 1936 ई0 में विदेश विभाग से त्यागपत्र देकर यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ वेल्स एबेरीस्वाइट्ज के अंतर्राष्ट्रीय राजनीति विभाग में विल्सन प्रोफेसर का पद ग्रहण किया। 1941 से 1946 ई0 तक 'द टाइम्स' के सह सम्पादक रहें।

प्रमुख रचनाएँ:– 'हिस्ट्री ऑफ सोवियत एशिया' (1950)'इण्टरनेशनल रिलेशन बिट्विन टू वर्ल्ड वार' (1947)'द न्यू सोसायटी' (1951)'व्हाट इज हिस्ट्री' (1961)

इतिहास दर्शनः–एडवर्ड हैलेट कार मानते हैं कि अतीत की घटनाओं के क्रमबद्धता देना तथा कारण और परिणाम के पारस्परिक सम्बन्धों को क्रम से प्रस्तुत करना ही इतिहास है। वस्तुतः इतिहास इतिहासकार तथा तथ्यों के बीच अन्तः क्रिया की अविच्छिन्न प्रक्रिया तथा वर्तमान और अतीत के बीच अनवरत परिसंवाद है तो इसे अतीत की घटनाओं और उभरते हुए भावी परिणामों के बीच अनवरत परिसंवाद की संज्ञा दी जा सकती है।

इतिहास अतीतकालिक तथा वर्तमानकालिक समाज के बीच संवाद है। इतिहास में अतीत और वर्तमान को सम्पृक करनेवाला एक सेतु है। इतिहासकार इस सेतु का डाट एवं प्रकाशस्तम्भ है जो इस सेतु के माध्यम से सम–सामयिक समाज को अतीत के उन तथ्यों की जानकारी देता है जो वर्तमान को प्रकाशित तथा नियंत्रित कर सके और सुखद भविष्य के निर्माण में सहायक होकर मार्गदर्शन कर सके। प्रो0 ई0एच0 कार ने इतिहास लेखन के विषय में बताया है कि वह अतीत के परिकल्पनात्मक पुनर्निमाण का एकमात्र साधन है। इसको व्याख्याप्रधान बनाने के लिए इतिहासकार ऐतिहासिक तथ्यों का चयनशीलात्मक स्वरुप आवश्यक मानता है।

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 बोध प्रश्न

4.6 सहायक ग्रन्थ

इकाई पंचम . भारतीय इतिहास लेखन का यूरोपियन मत

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्राच्यवादियों का भारतीयो के प्रति दृष्टिकोण

1.3 यूरोपियन इतिहासकारों का भारतीय इतिहास लेखन के प्रति दृष्टिकोण

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 बोध प्रश्न

1.7 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- भारतीय इतिहास पर यूरोपीय इतिहासकारों के दृष्टिकोण के विषय में।

1.1 प्रस्तावना

18वी सदी से ही यूरोप के प्रतिमानों के आधार पर भारत के इतिहास लिखने के प्रयास किये गये। यह काल प्रबोधन का काल था। यूरोप के कई विचारको ने औपनिवेशिक दृष्टिकोण की तीव्र आलोचना एवं विरोध भी किया था। भारत में इस परम्परा का सूत्रपात प्राच्यवाद से उद्भूत दिखाई देता है। जिसके अन्तर्गत भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को भारतीय दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया गया है। प्राच्यवादियो में विलियम जोन्स, हेनरी कोलब्रुक एच.एल.बिल्सन तथा जेम्स प्रिन्सेप आदि प्रमुख है। इनके द्वारा भारतीय इतिहास के विषय में वर्णन किया गया। इनके द्वारा यूरोप के मध्यकाल की तरह भारतीय के इतिहास की तुलना की गई। 19 वीं सदी में यूरोप में आधुनिक इतिहास लेखन का प्रारम्भ माना जाता है। इतिहास में तथ्य की सत्यता का विशेष महत्व होता है। जिसके आधार पर अतीत का विवरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए। धीरे–धीरे स्रोतों के अन्तर्गत अनेक पक्षों को सम्मिलित किया गया। यूरोपियन

इतिहासकारों के द्वारा यह कहा जाता रहा है कि भारतीय ऐतिहासिक विवरण कई खण्डों में विभाजित है। भारत आगमन से पूर्व उन्होने भारत की अव्यवस्था एवं बर्वरता का उल्लेख किया था। कई यूरोपियन इतिहासकारों ने कहा किय भारतीय इतिहास विभिन्न लोगों तथा संस्कृतियों के मध्य होने वाले संघर्ष की कहानी है। जिसमें विभिन्न प्रजातियां आपस में संधर्ष करती रहती है। भारतीय इतिहास लेखन परम्परा को लेकर यूरोपीय इतिहासकारों का दृष्टिकोण भारतीय परम्परा एवं मूल्यों के विपरीत बताया गया है। उनका मत था कि भारतीयों में इतिहास समझ का अभाव है। उनके द्वारा जो भी इतिहास के विषय में बताया गया है वह केवल कथाओ, मिथको का संग्रह मात्र है।

1.2 प्राच्यवादियों का भारतीयो के प्रति दृष्टिकोण

यह स्वीकार किया जाता है कि प्राच्यवादियों के द्वारा भारतीय इतिहास के अनेक अनछुऐ पक्षो का रहस्योद्घाटन इनके द्वारा किया गया था। इस कड़ी में एशियाटिक सोसाइटी के द्वारा भारतीय संस्कृति एवं विस्मृत स्मारकों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करना महत्वपूर्ण कार्य था। इस सोसाइटी के द्वारा अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों का हिन्दी तथा संस्कृत में अनुवाद करवाया गया था। चार्ल्स विल्किन्स के द्वारा भगवतगीता तथा हितोपदेश का अनुवाद किया गया। विलियम जोन्स से मनुस्मृति का अंग्रजी में अनुवाद किया। जोन्स के द्वारा यूनानी विवरणों वार्णित सैंड्रोकोटस की पहचान चन्द्रगुप्त नामक महान शासक से किया था। इसके साथ ही जेम्स प्रिसेंप के द्वारा अशोक की ब्राह्मी लिपि का लिपयन्तरण करना इतिहास की निश्चित रूप से महत्वपूर्ण की घटना है।

1.3 यूरोपियन इतिहासकारों का भारतीय इतिहास लेखन के प्रति दृष्टिकोण

अनेक यूरोपीय इतिहासकारो का मत था कि भारतीय संस्कृति अच्छी नही है। इस क्रम जेम्स मिल का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। उसका मानना था कि भारतीय इतिहास का विभाजन धर्म के आधार पर किया जाना चाहिए। इसलिए उसने इतिहास का विभाजन प्राचीन काल को हिन्दू काल के आधार पर,मध्यकाल को मुस्लिम काल आधार तथा ब्रिटिश काल को आधुनिक काल के आधार पर किया था। उसने हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया नामक छः भागो में विभाजित पुस्तक की लिखा था। जेम्स मिल के द्वारा भारत के विषय में जिस प्रकार की बातों का उल्लेख किया है। यह उसकी भारतीय संस्कृति को सम्यक ढंग से न समझ पाने कारण हुआ था। उसने भारत की यात्रा कभी नही की थी। केवल विदेशी विवरणो के आधार पर ही भारत के विषय में विवरण दिया है। राबर्ट ओर्म भारत के प्रथम औपनिवेशिक इतिहासकार माने जाते थे। औपनिवेशिक इतिहास लेखन में जेम्स मिल का नाम अग्रणी है। उसने अपनी प्रसिद्व पुस्तक हिस्ट्री

आफ ब्रिटिश इण्डिया जो कि छः भागों में विभाजित है। उसने भारतीय इतिहास को तीन भागों में विभाजित किया था। उसने साहित्य के क्षेत्र में अनेक भारतीयो की दक्षता की आलोचना किया है। उसने यहां के राजाओं तथा पुरोहितों की आलोचना किया है। वह कहता है कि इस प्रकार के क्रिया कलाप मानव समाज को दासता की ओर ले जाता है। उसके विवरण का निष्कर्ष यह है कि वह भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को कमतर मानता है। एलिफिन्स्टन दूसरे महत्वपूर्ण लेखक थे। वे एक कुशल प्रशासक तथा विद्वान थे। उन्हे भारतीय समाज,साहित्य की अच्छी समझ थी। उसने जेम्स मिल के द्वारा भारतीयो के विषय में दिये गये विवरण की आलोचना भी करता है। उन्होने भारत की ज्ञान परम्परा का वर्णन किया था। इसके साथ ही उसने यहां की गुरू परम्परा का भी वर्णन किया है। उसने अपनी पुस्तक हिस्ट्री में अनेक नैतिक पक्षों एवं नीतियों का वर्णन किया है। उसका वर्णन भारत के प्रति निरपेक्ष दिखाई देता है। विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ को मार्क्सवादी इतिहासकार माना जाता है। जेम्स मिल के बाद भारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण इतिहासकार के रूप में मान्यत प्राप्त है। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्व पुस्तक अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया है। तथा दूसरी प्रसिद्व पुस्तक आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया है। इसके अलावा हिस्ट्री आफ फाइन आटर्स इन इण्डिया एंड सीलोन है। उन्होने ने भारतीय इतिहास को निरेपक्ष दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उसने यह विवरण दिया है कि भारतीय राजाओं की शासन व्यवस्था अत्यन्त श्रेष्ठ व्यवस्था के रूप में प्रसिद्व है।

1.4 सारांश

भारत में यूरोपियन इतिहासकारों के द्वारा भारतीय इतिहास लेखन को अनेक दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया गया है। उनके द्वारा भारतीय इतिहास लेखन को जानने तथा भारतीय इतिहास को यूरोपीय शैलियों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया था। इतिहासकारों में इतिहास लेखन को लेकर अनेक मत–मतान्तर दृष्टिगत होता है। उनके द्वारा भारत के विषय में प्रस्तुत विवरण का कालान्तर में राष्ट्रवादी इतिहासकारों के द्वारा तर्को एवं तथ्यों के आधार पर खण्डन किया गया। औपनिवेशिक इतिहास लेखन भारत में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की स्थापना पर बल देते है।

1.5 शब्दावली

प्राच्यवादी–

1.6 बोध प्रश्न

1 यूरोपियन इतिहास लेखन के प्रमुख आयामों का वर्णन कीजिए।

....
....
....
....
....

2 जेम्स मिल के भारतीय इतिहास पर विचार का वर्णन करें।

....
....
....
....
....

3 विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ के विचारों का वर्णन करें।

....
....
....
....
....

1.7 सहायक ग्रन्थ

1. पाण्डे, गोविन्द चन्द, इतिहास, स्वरूप एवं सिद्वान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर

2. चौबे, डॉ. झारखण्डे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी

3. सिंह, डॉ.परमानन्द, इतिहास–दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

4. ई. श्रीधरन, इतिहास लेख,ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड,नई दिल्ली।

MAAH-107N/MAHY-111

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

इतिहास दर्शन एवं लेखन सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियां

खण्ड
4

भारतीय इतिहास लेखन की परम्पराएँ

इकाई- 1

अर्थशास्त्र ग्रन्थ की विवेचना 145

इकाई- 2

धर्मशास्त्र एवं उनका ऐतिहासिक महत्व 153

इकाई- 3

महाभारत की विवेचना 160

इकाई- 4

रामयण की विवेचना 166

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 पी0पी0 दूबे	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (1,2,3 खंड)
प्रो0 एम0पी0 अहिरवार	आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी इकाई–1,2,3,4,5 (5खंड)
डॉ. रमाकान्त सिंह	सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (4,6 खंड)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, म0जो0फुले रु0वि0वि0, बरेली (इकाई 1–30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष – 2022

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–2810 03

अर्थशास्त्र ग्रन्थ की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अर्थशास्त्र

1.3 सारांश

1.4शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के लिए अर्थशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानतंत्री आचार्य चाणक्य ने इस ग्रंथ का प्रणययन राजकीय कार्यो को सुचारू रूप से चलाने के लिए किया था। इस ग्रंथ में राजा के कर्तव्यों के साथ के दायित्व की व्यवस्था की गई है। यह ग्रंथ छह वृजार श्लोकों में निबद्ध है।

1.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र, कौटिल्य या चाणक्य (चौथी शती ईसापूर्व) द्वारा रचित संस्कृत का एक ग्रन्थ है। इसमें राज्यव्यवस्था, कृषि, न्याय, एवं राजनीति आदि के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। अपने तरह का (राज्य–प्रबन्धन विषयक) यह प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसकी शैली उपदेशात्मक और सलाहात्मक है। यह प्राचीन भारतीय राजनीति का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसका पूरा नाम 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' है। लेखक का व्यक्तिनाम विष्णुगुप्त, गोत्रनाम कौटित्य (कुटिल से व्युत्पन्न) और स्थानीय नाम चाणक्य (तक्षशिला के पास चणक नामक स्थान का रहने वाला) था। अर्थशास्त्र में लेखक का

स्पष्ट कथन है इस ग्रंथ की रचना उस आचार्य ने की जिन्होंने अन्याय तथा कुशासन से क्रुद्ध होकर नंदों के हाथ में गए हुए शस्त्र एवं पृथ्वी का शीघ्रता से उद्धार किया था।

1.2 अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र, कौटिल्य या चाणक्य (चौथी शती ईसापूर्व) द्वारा रचित संस्कृत का एक ग्रन्थ है। इसमें राज्यव्यवस्था, कृषि, न्याय, एवं राजनीति आदि के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। अपने तरह का (राज्य–प्रबन्धन विषयक) यह प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसकी शैली उपदेशात्मक और सलाहात्मक है।

यह प्राचीन भारतीय राजनीति का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसका पूरा नाम 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' है। लेखक का व्यक्तिनाम विष्णुगुप्त, गोत्रनाम कौटित्य (कुटिल से व्युत्पन्न) और स्थानीय नाम चाणक्य (तक्षशिला के पास चणक नामक स्थान का रहने वाला) था। अर्थशास्त्र (15.431) में लेखक का स्पष्ट कथन है इस ग्रंथ की रचना उस आचार्य ने की जिन्होंने अन्याय तथा कुशासन से क्रुद्ध होकर नंदों के हाथ में गए हुए शस्त्र एवं पृथ्वी का शीघ्रता से उद्धार किया था।

चाणक्य सम्राट चंदगुप्त मौर्य (321–298 ई0) के महामंत्री थे। उन्होंने चंद्रगुप्त के प्रशासकीय उपयोग के लिए इस ग्रंथ की रचना की थी। यह मुख्यतः सूत्रशैली में लिखा हुआ है और संस्कृत के सूत्रसाहित्य के काल और परंपरा में रखा जा सकता है। यह शास्त्र अनावश्यक विस्तार से रहित, समझने और ग्रहण करने में सरल एवं कौटिल्य द्वारा शब्दों में रचा गया है जिनका अर्थ सुनिश्चित हो चुका है। (अर्थशास्त्र 15.6) यद्यपि कतिपय प्राचीन लेखकों ने अपने ग्रंथों में अर्थशास्त्र से अवतरण दिए हैं और कौटिल्य का उल्लेख किया है, तथापि यह ग्रंथ लुप्त हो चुका था। 1904 ई0 में तंजोर के एक पंडित ने भट्टस्वामी के अपूर्ण भाष्य के साथ अर्थशास्त्र का हस्तलेख मैसूर राज्य पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री आर. शाम शास्त्री को दिया। श्री शास्त्री ने पहले इसका अंशतः अंग्रेजी भाषांतर 1905 ई0 में 'इंडियन ऐंटिक्वेरी' तथा

'मैसूर रिव्यू' (1906–1909) में प्रकाशित किया। इसके पश्चात् इस ग्रंथ के दो हस्तलेख म्यूनिख लाइब्रेरी में प्राप्त हुए और एक संभवतः कलकत्ता में। तदनंतर शाम शास्त्री, गणपति शास्त्री, यदुवीर शास्त्री आदि द्वारा अर्थशास्त्र के कई संस्करण प्रकाशित हुए। शाम शास्त्री द्वारा अंग्रेजी भाषांतर का चतुर्थ संस्करण (1929 ई0) प्रामाणिक माना जाता है।

संरचना

ग्रंथ के अंत में दिए चाणक्यसूत्र (15.1) में अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार हुई हैं, मनुष्यों की वृत्ति को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से संयुक्त भूमि ही अर्थ है। उसकी प्राप्ति तथा पालन के उपायों की विवेचना करनेवाले शास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं।

इसके मुख्य विभाग है–

1. विनयाधिकरण
2. अध्यक्षप्रचार
3. धर्मस्थीयाधिकरण
4. कंटकशोधन
5. वृत्ताधिकरण
6. योन्यधिकरण
7. षाड्गुण्य
8. व्यसनाधिकरण
9. अभियास्त्कर्माधिकरणा
10. संग्रामाधिकरण
11. संघवृत्ताधिकरण
12. आबलीयसाधिकरण
13. दुर्गलम्भोपायाधिकरण
14. औपनिषदिकाधिकरण और
15. तंत्रयुक्तयधिकरण

इन अधिकरणों के अनेक उपविभाग (15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 उपविभाग तथा 6,000 श्लोक है।

वर्ण्यविषय एवं ग्रन्थ का महत्व

अर्थशास्त्र में समसामयिक राजनीति, अर्थनीति, विधि, समाजनीति, तथा धर्मादि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस विषय के जितने ग्रंथ अभी तक उपलब्ध हैं उनमें से वास्तविक जीवन का चित्रण करने के कारण यह सबसे अधिक मूल्यवान है। इस शास्त्र के प्रकाश में न केवल धर्म, अर्थ और काम का प्रणयन और पालन होता है अपितु अधर्म, अनर्थ तथा अवांछनीय का शमन भी होता है (अर्थशास्त्र, 15.431)।

इस ग्रंथ की महत्ता को देखते हुए कई विद्वानों ने इसके पाठ, भाषांतर, व्याख्या और विवेचन पर बड़े परिश्रम के साथ बहुमूल्य कार्य किया है। शाम शास्त्री और गणपति शास्त्र का उल्लेख किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त यूरोपीय विद्वानों में हर्मान जकोबी (ऑन दि अथॉरिटी ऑफ कौटिलीय इं0 ए0, 1918), ए. हिलेब्रांइट, डॉ0 जॉली, प्रो0 ए0बी0 कीथ (ज0रा0ए0सी0) आदि के नाम आद के साथ लिए जा सकते हें। अन्य भारतीय विद्वानों में डा0 नरेंद्रनाथ ला (स्टडीज न ऐंशेंट हिंदू पॉलिटी, 1914), श्री प्रेमथनाथ बनर्जी (पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन ऐंशेंट इंडिया), डॉ0 काशीप्रसाद जायसवाल (हिंदू पॉलिटी), प्रो0 विनयकुमार सरकार (दि पाजिटिव बैकग्राउंड ऑव् हिंदू सोशियोलॉजी), पो0 नारायणचंद्र वंधोपाध्याय, डा0 प्राणनाथ विद्यालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' राजनीतिक सिद्धान्तों की एक महत्वपूर्ण कृति है। इस संबंध में यह प्रश्न उठता है कि कौटिल्य ने अपनी पुस्तक का नाम 'अर्थशास्त्र' क्यों रखा? उस समय अर्थशास्त्र' क्यों राजनीति और प्रशासन का शास्त्र माना जाता था। महाभारत में इस संबंध में एक प्रसंग है, जिसमें अर्जुन को अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ माना गया है।

समाप्तवचने तस्मिन्नर्थशास्त्र विशारदः।
पार्थो धर्मार्थतत्वज्ञो जगौ वाक्यमनन्द्रितः।।

निश्चित रुप से कौटिल्य का अर्थशास्त्र के रुप में लिया गया होगा, यों उसने अर्थ की गई व्याख्याएँ की हैं। कौटिल्य ने कहा हैं– मनुष्याणां वृतिरर्थः 4 अर्थात् मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं। अर्थशास्त्र की व्याख्या करते हुए उसने कहा है– तस्या पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थ–शास्त्रमिति।5 (मनुष्यों से युक्त भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपयायों का निरुपण करने वाला शास्त्र कहलाता है।) इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत राजव्यवस्था और अर्थव्यवस्था दोनों से सबंधित सिद्धांतों का समावेश है। वस्तुतः कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' को केवल राजव्यवस्था और अर्थवयवस्था का शास्त्र कहना उपयुक्त नहीं होगा। वास्तव में यह अर्थव्यवस्था, राजव्यस्था, विधि व्यवस्था, समाज व्यवस्था और धर्म व्यवस्था से सबंधित शास्त्र हैं।

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के पूर्व और भी कई अर्थशास्त्रों की रचना की गयी थी, यद्यपि उनकी पांडुलिपियां उपलब्ध नहीं हैं। भारत में प्राचीन काल से ही अर्थ, काम और धर्म के संयोग और सम्मिलन के लिए प्रयास किये जाते रहे हैं और उसके लिये शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों में विशद् चर्चाएँ की गयी हैं। कौटिल्य ने भी 'अर्थशास्त्र' में अर्थ, काम और धर्म की प्राप्ति के उपायों की व्याख्या की है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में भी अर्थ, धर्म और काम के संबंध में सूत्रों की रचना की गयी है।

अपने पूर्व अर्थशास्त्रों की रचना की बात स्वयं कौटिल्य ने भी स्वीकार किया है। अपने 'अर्थशास्त्र' में कई संदर्भो में उसने आचार्य वृहस्पति, भारद्वाज, शुक्राचार्य, पराशर, पिशुन, विशालाक्ष आदि आचार्यों का उल्लेख किया है। कौटिल्य के पूर्व अनेक आचार्यो के ग्रंथों का नामकरण दंडनीति के रुप में किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य के पूर्व शास्त्र दंडनीति कहे जाते थे और वे अर्थशास्त्र के समरुप होते थे। परन्तु जैसा कि अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है कि दंडनीति और अर्थशास्त्र दोनों समरुप नहीं हैं। यू0एन0 घोषाल के कथनानुसार अर्थशास्त्र ज्यादा व्यापक शास्त्र है, जबकि दंडनीति मात्र उसकी शाखा है।

कौटिल्य के पश्चात् लिखे गये शास्त्र नीतिशास्त्र के नाम से विख्यात हुए, जैसे कामंदक नीतिसार। वैसे कई विद्वानों ने अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र की अपेक्षा ज्यादा व्यापक माना है। परन्तु, अधिकांश विद्वानों की राय में नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों समरुप हैं तथा दोनों के विषय क्षेत्र भी एक ही हैं। स्वयं कामंदक ने नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र को समरुप माना है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के पूर्व और उसके बाद भी 'अर्थशास्त्रों की रचना की गयी।

इस संबंध में ऐसे विद्वानों की अच्छी–खासी संख्या है जो यह मानते हैं कि कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार नहीं था। ऐसे विद्वानों में पाश्चात्य विद्वानों की संख्या ज्यादा हें स्टेन, जॉली, विंटल्नीज व कीथ इस प्रकार के विचार के प्रतिपादक हैं। भारतीय विद्वान आर.जी. भण्डारकर ने भी इसका समर्थन किया है। भंडारकर ने कहा कि पतंजलि ने महाभाष्य में कौटिल्य का उल्लेख नहीं किया है। 'अर्थशास्त्र' के रचयिता के रुप में कौटिल्य को नहीं मान्यता देनेवालों ने अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं–

1. अर्थशास्त्र' में मौर्य या पाटलिपुत्र का कहीं कोई जिक्र नहीं मिलता है। यदि चन्द्रगुप्त का मंत्री कौटिल्य अर्थशास्त्र का रचनाकार होता तो 'अर्थशास्त्र' में उसका कहीं–न–कहीं कुछ जिक्र करता ही।
2. इस संबंध में यह कहा जाता है कि ' अर्थशास्त्र' की विषय–वस्तु जिस प्रकार की है, उससे यह नहीं प्रतीत होता है कि इसका रचनाकार कोई व्यवहारिक राजनीतिज्ञ होगा। निःसन्देह कोई शास्त्रीय पंडित ने ही इसकी रचना की होगी। कौटिल्य फर्जी नाम प्रतीत होता है।
3. चन्द्रगुप्त मौर्य का मंत्री कौटिल्य यदि 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार होता तो उसके सूत्र एवं उक्तियाँ बड़े राज्यों के संबंध में होते, परन्तु 'अर्थशास्त्र' के उद्धरण एवं उक्तियाँ लघु एवं मध्यम राज्यों के लिये सम्बोधित हैं। अतः स्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार कौटिल्य नहीं था। डॉ0 बेनी प्रसाद के अनुसार 'अर्थशास्त्र' में जिस आकार या

स्वरुप के राज्य का जिक्र किया गया है, निःसन्देह वह मौर्य, कलिंग या आंध्र साम्राज्य के आधार से मेल नहीं खाता है।7

4. विंटरनीज ने कहा है कि मेगास्थनीज ने, जो लम्बे अरसे तक चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा और जिसने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में चन्द्रगुप्त के दरबार के संबंध में बहुत कुछ लिखा है, कौटिल्य के बारे में कुछ नहीं लिखा है, और नही उसकी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' की कहीं कोई चर्चा की हैं। यदि 'अर्थशास्त्र' जेसे विख्यात शास्त्र का लेखक कौटिल्य चन्द्रगुप्त का मंत्री होता तो मेगास्थनीज की 'इंडिका' में उसका जिक्र अवश्य किया जाता है।
5. मेगास्थनीज और कौटिल्य के कई विवरण में मेल नहीं खाता। उदाहरण के लिए मेगास्थनीज के अनुसार उस समय भारतीय रासायनिक प्रक्रिया से अवगत नहीं थे, भारतवासियों को केवल पाँच धातुओं की जानकारी थी, जबकि 'अर्थशास्त्र' में इन सभी का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रशासकीय संरचना, उद्योग–व्यवस्था, वित्त–व्यवस्था आदि के संबंध में भी मेगास्थनीज और 'अर्थशास्त्र' का लेखक चन्द्रगुप्त मौर्य का मंत्री कौटिल्य नहीं हो सकता है।

1.3 सारांश

अर्थशास्त्र में समसामयिक राजनीति, अर्थनीति, विधि, समाजनीति, तथा धर्मादि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस विषय के जितने ग्रंथ अभी तक उपलब्ध हैं उनमें से वास्तविक जीवन का चित्रण करने के कारण यह सबसे अधिक मूल्यवान है। इस शास्त्र के प्रकाश में न केवल धर्म, अर्थ और काम का प्रणयन और पालन होता है अपितु अधर्म, अनर्थ तथा अवांछनीय का शमन भी होता है।

1.4 शब्दावली

पांडूलिपि – हस्तलिखित लिपिबद्ध कागजात

प्रणयन – निर्माण, रचना कृति

दंडनीति – अपराध के लिए दण्ड का धर्मयुक्त निर्धारण

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न – अर्थशास्त्र की विशद् व्यवस्था करें?

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे 1.2

धर्मशास्त्र एवं उनका ऐतिहासिक महत्व

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2धर्मशास्त्र

1.3 सरांश

1.4शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

प्राचीन भारतीय विधि निषेधों का समझने के लिए धर्मशास्त्र का अध्ययन किया जाता है, जो तत्कालीन समय की जीवनचर्चा का हिस्सा था। धर्मशास्त्रों से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सामग्रता के साथ सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। धर्मशास्त्रो की संख्या समय–समय पर बढ़ती चली गई, आगे जाकर लगभग संपूर्ण वैदोत्तर साहित्य को भी धर्मशास्त्र के अंतर्गत सामाहित किया जाने लगा।

1.1 प्रस्तावना

धर्म शास्त्र के अर्न्तगत हम वैदिक संहिताओं से लेकर भाष्य उपनिषद् निबंध आदि सभी धार्मिक रचनाएं की जा सकती है। एवं उनकों दृष्टि में रखते हुये ही हम ऐतिहासिक महत्व की चर्चा करेगे। धर्म शास्त्रों में सूत्र साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूत्र साहित्य को कल्प सूत्र के रुप में भी जाना जाता है। समाजोपयोगी बनाने का कार्य संहिताओं को सूत्र साहित्य ने किया। विषय वस्तु की दृष्टि से कल्प सूत्र साहित्य को तीन भागों में बाटा गया है। धर्म सूत्र, गृह सुत्र, एवं श्रौत सूत्र।

1.2 धर्मशास्त्र

धर्म शास्त्र के अर्न्तगत हम वैदिक संहिताओं से लेकर भाष्य उपनिषद् निबंध आदि सभी धार्मिक रचनाएं की जा सकती है। एवं उनकों दृष्टि में रखते हुये ही हम ऐतिहासिक महत्व की चर्चा करेगे। धर्म शास्त्रों में सूत्र साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूत्र साहित्य को कल्प सूत्र के रुप में भी जाना जाता है। समाजोपयोगी बनाने का कार्य संहिताओं को सूत्र साहित्य ने किया। विषय वस्तु की दृष्टि से कल्प सूत्र साहित्य को तीन भागों में बाटा गया है। धर्म सूत्र, गृह सुत्र, एवं श्रौत सूत्र।

श्रौत सूत्र—इस साहित्य में यज्ञ से संबंधित विषय सामग्री दी गयी है। इसमें ऋग्वैदिक काल से चली आ रही, याज्ञिक क्रियाओं के आकार प्रकार एवं विधि—निषेध की विस्तार से चर्चा की गयी है।

गृह सूत्र—इसका विषय गृहस्थ जीवन से संबंधित है। इसका मूल विषय आचार, कर्तव्य दैनिक उपासना, संस्कार इत्यादि है।

धर्मसूत्र—जिनकी विषय सामग्री गृह सुत्रों के काफी करीब है। गृह सुत्रों में जहाँ जीवन से सम्बन्धित विधि और निषेधों का विस्तार से वर्णन किया गया है। वही इनका संक्षिप्त विवरण धर्म सूत्रों में प्राप्त होता है। गृह सूत्रों की अपेक्षा विवाह, उपनयन, संस्कार, ब्रह्मचर्य, आश्रम, श्राद्ध इत्यादि का वर्ण धर्म सूत्रों में अधिक विस्तार से हुआ है। कालान्तर में इन्हीं सूत्रों साहित्यों को ध्यान में रख कर स्मृति ग्रंथ लिखे गये थे। दूसरे शब्दों में सुत्र साहित्य को आधार बनाकर स्मृति ग्रंथ लिखे गये और यही परंपरा भाष्यऔर निबंध के रुप में 18वीं शताब्दी तक चलती रही। सूत्र साहित्य गद्य और पद्य दोनों में लिखे गये हे। यद्यपि इनके वाक्य छोटे है जबकि स्मृति साहित्य की रचना पद्य में ही की गई है। भाषा साहित्यों के अनुसार इन सूत्रों की भाषा स्मृतियों की भाषा से प्राचीन एवं अविकसित है। धर्म सूत्रों में गौतम, आपस्तम्भ, वसिष्ठ, बौद्यायन, प्रमुख है। जिनकी रचना का समय 600 ई0पू0 से 500 ई0पू0 के बीच रखा जाता है।

जहाँ तक धर्मशास्त्र का प्रश्न है। इसमें अध्ययन की सुगमता व दृष्टि से सूत्र परंपरा के ग्रंथ स्मृति परंपरा के ग्रंथ, और उन पर लिखे जाने वाले भाष्य एवं निबंध लिए गये है। जबकि धर्मशास्त्र में वे सभी ग्रंथ होने चाहिए जिनमें धर्म की सामग्री दी गई है। चाहे वे वैदिक परंपरा के ग्रंथ हो पुराण परंपरा के ग्रंथ होया महाकाव्य परंपरा के। परंतु यें सीमांकन प्राचीन भारतीय मनीषियों द्वारा किया गया है। स्मृति संहिता परंपरा के ग्रंथों से मूलतः तीन विषयों का प्रतिपादन हुआ है। आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित।

आचार–

आचार का तात्पर्यउन नियमों से था, जो व्यक्ति और समाज से संबंधित थे। जैसे वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था इत्यादि।

व्यवहार– का अर्थ है कानून इसके अन्तर्गत जिन विषयों का प्रतिपादन किया गया है, उनमें उत्तराधिकारी, पारिवारिक संपत्ति, संपत्ति का विभाजन इत्यादि इसके अतिरिक्त कुछ अन्य जिनका संबंध सामाजिक संस्थाओं से है। जैसे विवाह की स्थिति, स्त्री की स्थिति, दण्ड प्रक्रिया, कानून व्यवहार की सीमा के अन्तर्गत लिया गया है।

प्रायश्चित का संबंध पाप–कर्म से है। इसमें पाप और प्रायश्चित की व्याख्या की गयी है। गृह सुत्रों में व्यवहार और प्रायश्चित का उल्लेख नहीं है। आठवीं शताब्दी ई0 से धर्मशास्त्र परंपरा से संबंधित एक नई परंपरा की शुरुआत हुई। जिसके आधार ग्रंथ थे। जिन्हें हम भाष्य या निबंध के नाम से जानते है– स्मृतियों से संबंधित भाष्य लेखन की परंपरा आठवीं शताब्दी तक नही थी। कुछ में यह परंपरा इस समय तक प्राप्त होती है। सबसे अधिक भाष्य मनुस्मृति पर लिखे गये हैं। मनुस्मृति भाष्य व्याख्याकारों के नाम है। मेधातिथि, अपरार्क, इसी प्रकार याज्ञवल्क्य, स्मृति के भाष्यकारों में विश्वरुप और विज्ञानेश्वर के नाम प्रमुख है। इन्हीं स्मृतियों पर लिखे गये भाष्य आज उपलब्ध है। ये भाष्य स्मृतियों से संबंधित है, अतः विषय सामग्री की दृष्टि से इनमें कोई अन्तर नहीं है। इस कड़ी में 18वीं शताब्दी तक निबंधों को लिखने की परंपरा चलती रही। अधिकांश निबंधकारों ने प्रायः यह दावा प्रस्तुत किया

किया कि उनके निबंधों में पूर्ववर्ती ग्रंथों का सार प्रस्तुत किया गया है अधिकांश निबंध ग्रंथ सामाजिक एवं विशिष्ट लोगों द्वारा लिखे गये है।

प्रश्न विचारणीय है कि जब इतनी बड़ी मात्रा में सूत्र ग्रंथो के बाद स्मृति परंपरा के ग्रंथ लिखे गये तो इन भाष्य निबन्ध ग्रंथों की आवश्यकता क्या थी? ऐसा प्रतीत होता है कि समय के साथ–साथ भाष्य की सोच में उनके साहित्य सरंचना में साहित्यक नियमों और मान्यताओं में परिवर्तन आया क्योंकि इनसे पहले जो ग्रंथ लिखे गये थे, उनका संबंध पूर्व के समाज व्यवस्था तथा समाज के समस्याओं से था। अब आवश्यकता इस बात की थी कि इन परंपराओं के बदले हुय परिवेश में कैसे स्वीकार किया जायें। और कैसे महत्वपूर्ण बनाया जायें। संस्कृति परिवर्तनशील है। इसी आधार पर भाष्य एवं निबंध ग्रंथों के द्वारा तत्कालीन विचारकों ने नवीन मान्यताओं को वैधानिक जामा पहनाने का काम किया। भाष्यकारों ने कुछ नीतियों को निर्धारित भी किया। प्रथम नीति थी, वेदों एवं स्मृतियों की व्याख्या, इनमें तथ्यों को काफी तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत किया गया है। नारद स्मृति में उल्लिखित है कि स्त्री, मृत पति के सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नही होगी। पूर्व मध्यकाल का समाज पत्नि का सम्पत्ति का उत्तरधिकारी मानता था। अतः नारद स्मृति ने अपनी व्याख्या में तथ्य की व्याख्या तोड़ मरोड़कर की है। यहां पत्नी के स्थान पर स्त्री शब्द प्रयुक्त हुआ है। यहां नारद ने स्त्री शब्द का प्रयोग अवैधानिक स्त्री के लिये किया है। और उसे उत्तराधिकार से वंचित किया है।

भाष्यों, निबन्धों एवं स्मृतियों में एक ओर महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि प्राचीन स्मृतियों में जो कुछ भी कहा गया है वह सतयुग के लिये है। वह कलियुग के लिये अनुकरणीय नहीं है। यहां यह प्रश्न विचारणीय हो सकती है कि क्या इन ग्रंथों को भी धर्मशास्त्रों के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए इसमें विद्वानों के एक मत नही हैं। विद्वानों का एक पक्ष जहां इन्हें धर्म शास्त्र की सीमा में रखने का समर्थन करता है। वही दूसरी पक्ष इसका विरोधी है। विरोधी पक्ष यह स्वीकार करता है कि इन ग्रंथों को आंशिक धर्मशास्त्र स्वीकार

करते हुये वृहद धर्मशास्त्र की सीमा में रख सकते है। इसी तरह पुराणों को भी इस सीमा में रखा जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त ग्रंथ आंशिक रुप से धर्मशास्त्र है।यद्यपि प्रो0 आर0एस0 शर्मा मानते है कि सम्पूर्ण साहित्य जो धर्म का प्रतिपादन करते हैं, इनके अन्तर्गत आते हैं। इनमें प्राचीन भारतीय कानून संबंधी सूचनायें मिलती है। जैसे राज्य और राजा की अवधारणा साहित्यकारों ने इस महत्त्वपूर्ण विषय को स्थान दिया हे।

स्मृति साहित्य की रचना का कार्य मनुस्मृति से माना जाता है तथा उसका समय दूसरी शताब्दी ई0पू0 रखा गया है। इसी के साथ याज्ञावल्क्य स्मृति का समय प्रथम शताब्दी ई0, बृहस्पति स्मृति का तीसरी–चौथी ई0 नारद स्मृति पाँचवी छठी शताब्दी ई0 तथा कात्यायन स्मृति का काल छठी–सातवी शताब्दी ई0 माना जाता है।

कुछ स्मृतियाँ जो अनुपलब्ध है उनके भाष्य एवं निबंध प्राप्त होते है। जिनके आधार पर उनकी विषय वस्तु की सूचनाएं प्राप्त होती है।

धर्मशास्त्र जिसके साहित्य की चर्चा की जा सकती है वे इतिहास के प्रमाणिक श्रोत माने जाते हैं। प्राचीन भारत के सामाजिक इतिहास के सन्दर्भ में धर्मशास्त्र विशेष महत्व रखते हैं। वैसे तो इतिहास तिथि युक्त होना चाहिए किन्तु वैदिक ग्रंथों की तरह धर्मशास्त्रों में भी एक ओर जहां तिथि का अभाव है, वही इसकी विषय वस्तु में बहुत से उद्धरण पारंपरिक है। धर्मशास्त्र के ग्रंथों में भी विषय वस्तु की दृष्टिकोण से एकरूपता दृष्टिगत होती है। जहां तक भाषा शैली का प्रश्न है धर्मशास्त्र में आदर्शात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। धर्मशास्त्रों में कही ऐसा उल्लेख नहीं प्राप्त होता है कि ऐसा हुआ करता था, या ऐसा होता था। बल्कि धर्मशास्त्र कहते हैं कि ऐसा होना चाहिए।

इस सन्दर्भ में मानव शास्त्रियों के विचार उद्धत किये जा सकते है। जहां वे सांस्कृतिक प्रतिमान को दो भागों में विभक्त करते हैं।

(1) आदर्श प्रतिमान (2) व्यवहार प्रतिमान।

समाज के सम्मुख कुछ आदर्श होते हैं। जिसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि आदर्श व्यवहार में परिणत हो। धर्मशास्त्र सदैव आदर्श की बात करता है। इस सन्दर्भ में यह भी कहना कठिन है कि आदर्श जिनका उल्लेख धर्मशास्त्र कहते है, तत्कालीन समाज में वे व्यवहार रुप में किस सीमा तक स्वीकार थे। सम्पूर्ण धर्मशास्त्र निवृति मार्ग की पोषक है। धर्मशास्त्र में वर्णित घटनायें भी आदर्शात्मक ही है। धर्मशास्त्र में प्राप्त होता है कि वर्णाश्रम धर्म, हिन्दू धर्म का मूल है और जिस क्षण विभिन्न जातियों का उदय हुआ वर्णाश्रम व्यवस्था समाप्त हो गया। आश्रम व्यवस्था की भी चर्चा लगभग सभी धर्मशास्त्रों में की गयी है। यद्यपि आश्रम व्यवस्था के स्वीकार्यता को लेकर धर्मशास्त्रों में बड़ा विवाद रहा है। विवाद की चर्चा धर्मशास्त्रों में मिलती है। स्मृतियां भी इसकी चर्चा करती है।

दोनों ही प्रकार के साहित्य एक बात पर बार–बार जोड़े दिया गया है कि विवाह सजातीय होना चाहिए, बाल विवाह का प्रचलन इस काल में नहीं था।

नारी शिक्षा के सम्बन्ध में स्त्रियों का समावर्तन संस्कार का उल्लेख है। यद्यपि नारी की स्थिति पराधीनता जैसी स्थिति में पहुँच चुकी थी। धार्मिक क्रिया कलापों के लिये स्त्रीयाँ स्वतंत्र नहीं थी। प्रर्दा प्रथा का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है इस काल तक कृषि प्रमुख व्यवसाय है। सांख्यायन गृह सुत्र में बैलों द्वारा खेतो में हल चलाने और यंत्रों के साथ कृषि कार्यो को आरम्भ किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि पशुपालन व्यवस्था इस काल में विद्यमान थी राजा और कृषक के बीच क्षेत्रपति जैसे शब्दों का उल्लेख विद्वानों द्वारा सामन्तवादी व्यवस्था के शुरुआत के रुप में स्वीकार किया जाता है।

1.3 सरांश

धर्मशास्त्र भारतीय इतिहास निर्माण में अत्यंत सहायक हो। धर्मशास्त्रों से संपूर्ण भारतीय अचार–विचार, व्यवहार, कर्मकांड निधि–निषेधों को समझा जा सकता है। इसके अंतर्गत सूत्र साहित्य भी समाहित किए जाते है।

गृहोपयोगी, धार्मिक नियम–कानून धर्मशास्त्रों में दिए गए हो। सामपत्विक अधिकार एवं उनके जुड़े विभिन्न पहलूओं पर विचार एवं नियम धर्मशास्त्रों में मिलते है। धर्मशास्त्रों में प्राचीन भारतीय इतिहास का सर्वांगिण एवं सम्पूर्ण रूप लिपिबद्ध है।

1.4 शब्दावली

श्रौत सूत्र –वैदिक याज्ञिक क्रियाओं से संबंधित निबंधों का वर्णन हो।

गृह सूत्र – गृहस्थ जीवन से संबंधित आचार–नियमों का वर्णन है।

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न – धर्मशास्त्रों की विशद् वर्णन करे।

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे 1.2

महाभारत की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2महाशरत

1.3 सरांश

1.4शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

महाकालों में महाभारत का अत्यंत महत्व है। महर्षि कृष्ण द्वैपायन कृत महाभारत भारतीय संस्कृति का प्राणस्तंभ है। इस ग्रंथ की प्रसिद्ध उक्ति है कि जो कृछ भी इस संसार में है, सबका वर्णन महाभारत में है, जो इस ग्रंथ में नहीं है, वों सर्वत्र संसार में कही नहीं है।

1.1 प्रस्तावना

कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास प्रणीत महाभारत भारतीय साहित्य का अनुपम ग्रंथ है। इस 'महाकाव्य' का आधार कौरव–पाण्डवों का ऐतिहासिक आख्यान है। वस्तुतः यह भारतीय संस्कृति का महान् विश्वकोष है। न केवल इतिहास और प्राचीन उपाख्यानों की दृष्टि से, बल्कि धर्म संहिता, आचार–व्यवहार, राजनीति, दर्शन एवं जीवन की नानाविध समस्याओं के लिए भी इसका अनन्य महत्त्व है। अपने आध्यात्मिक एवं भक्तिपरक विषयों के कारण यह हिन्दुओं की सर्वप्रतिष्ठित धर्म–पुस्तक है। इसी कारण इसे 'पंचम वेद' की संज्ञा दी गई। साहित्य की प्रायः सभी शैलियों की उपस्थापना जैसे– काव्य, नाटक, चम्पू, गद्य, कथा, आख्यायिका, स्तव महाभारत में मिलती है। स्वयं

व्यास ने महाभारत के महत्त्व को बडे सुन्दर ढंग से बताया है– 'जो कुछ इस ग्रंथ में है, वह अन्यत्र है, किन्तु जो यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

1.2 महाभारत

कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास प्रणीत महाभारत भारतीय साहित्य का अनुपम ग्रंथ है। इस 'महाकाव्य' का आधार कौरव–पाण्डवों का ऐतिहासिक आख्यान है। वस्तुतः यह भारतीय संस्कृति का महान् विश्वकोष है। न केवल इतिहास और प्राचीन उपाख्यानों की दृष्टि से, बल्कि धर्म संहिता, आचार–व्यवहार, राजनीति, दर्शन एवं जीवन की नानाविध समस्याओं के लिए भी इसका अनन्य महत्त्व है। अपने आध्यात्मिक एवं भक्तिपरक विषयों के कारण यह हिन्दुओं की सर्वप्रतिष्ठित धर्म–पुस्तक है। इसी कारण इसे 'पंचम वेद' की संज्ञा दी गई। साहित्य की प्रायः सभी शैलियों की उपस्थापना जैसे– काव्य, नाटक, चम्पू, गद्य, कथा, आख्यायिका, स्तव महाभारत में मिलती है। स्वयं व्यास ने महाभारत के महत्त्व को बडे सुन्दर ढंग से बताया है– 'जो कुछ इस ग्रंथ में है, वह अन्यत्र है, किन्तु जो यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

वर्तमान उपलब्ध महाभारत में लगभग एक लाख श्लोक है। अतः यह शत–साहस्री संहिता नाम से प्रसिद्ध है। यह नाम गुप्तकालीन एक शिलालेख में प्रयुक्त होने से सिद्ध है कि महाभारत का यह स्वरुप प्रायः 15 सौ वर्षो से वर्तमान है। किन्तु इसमें संदेह नही कि महाभारत का यह विशाल कलेवर मूल रुप में नहीं था। इसमें नाना उपाख्यान और वर्णन विभिन्नि युगों में जोड़े जाते रहे। कौरव–पाण्डवों के गाथा–सम्बंधी उद्धरण वैदिक साहित्य में भी प्राप्त हैं। महर्षि व्यास ने इसी गाथा को महाकाव्य का रुप दिया। प्रारंम्भ में महाभारत का नाम 'जय' था। उसका परिवर्धित रुप 'भारत' कहलाया।

उस समय तक इस ग्रंथ में 24 हजार छंद ही थे, और यही संस्करण वैशम्पायन के मुख से जनमेजय ने सुना था। तीसरा था अंतिम स्वरुप 'महाभारत' नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिसमें हरिवंश को सम्मिलित करके छंद

संख्या एक लाख हो चुकी थी। प्रतीत होता है कि काफी समय तक ग्रन्थ के दोनों स्वरुप लोकप्रिय थे, क्योंकि अश्वलायन गृहसूत्र (ई0पू0 5वीं शती) में 'भारत' तथा 'महाभारत' दोनों नाम मिलते है। पाणिनी ने भी उनका पृथक उल्लेख किया है। अतः शतसाहस्री संहिता ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व अस्तित्व में आ चुकी थी।

महाभारत के अध्यायः– महाभारत की सम्पूर्ण कथा अद्वितीय काव्य–शैली में 18 पर्वों में समाहित है। महाभारत के 18 पर्व अग्रलिखित हैं–

1. आदिपूर्व– इसमें प्रथम से 19 अध्यायों में महाभारत की प्रारंम्भिक कथावस्तु समाहित है।
2. सभापर्व– इसमें 20 से 28 अध्यायों में राज्य, सभाओं इत्यादि पर केन्द्रित कथा–वस्तु महाभारत में वर्णित है।
3. अरण्य पर्व– इसमें 29 से 44 अध्यायों में महाभारत में निर्वासन की विषय को समाहित किया गया है।
4. विराट पर्व– इसमें 45 से 48 अध्याय तक भारवंशीय राजाओं के अर्न्तकलह को मुख्य कथावस्तु बनाकर महाभारत में समाहित किया गया है।
5. उद्योग पर्व– इस पर्व में 49 से 60 अध्याय तक विभिन्न योजनाएं क्रियान्वित की विषयवस्तु को महाभारत में समाहित किया गया है।
6. भीष्म पर्व– इसमें 61 से 64 अध्याय तक महाभारत के युद्ध का वर्णन है।
7. द्रोण पर्व– इसमें 65 से 72 अध्याय तक महाभारत युद्ध का वर्णन है।
8. कर्ण–पर्व – इसमें मात्र एक 73 वें अध्याय में युद्ध का वर्णन है।
9. शल्य पर्व–इसमें 74 से 77 अध्याय तक महाभारत के युद्ध का वर्णन है।
10. सौप्तिक पर्व– इसमें 78 से 79 अध्याय में जनसंहार का चित्रण किया गया है।

11. स्त्री पर्व– इसमें 80 से 83 अध्याय तक जनंसहार के उपरान्त होने वाले क्रन्दन एवं अन्य विषयवस्तु का वर्णन किया है।
12. शान्ति पर्व– इसमें 84 से 86 अध्याय तक की विषयवस्तु में समाहित इस पर्व में शान्तिजन्य तथ्यों को उल्लिखित किया गया है।
13. अनुशासन–पर्व– इसमें 87 से 88 अध्याय तक विधिजन्य तथ्यों को समाहित किया गया है।
14. अश्वमेधिक पर्व– इसमें मात्र एक 89 अध्याय में पूर्व घटित तथ्यों के सामान्यीकरण का उल्लेख हुआ है।
15. आश्रमवासिक पर्व– इसमें 90 से 92 तक अध्याय में वैराग्य प्रवृत्ति का चित्रण हुआ है।
16. मौषल पर्व– इसमें मात्र 93वें अध्याय में वैनाशिक तथ्यें को प्रस्तुत किया गया है।
17. महाप्रस्थानिक पर्व– इसमें 94वें अध्याय में महाभारत की विषयवस्तु को समाप्ति की ओर अग्रसर किया है।
18. स्वर्गारोहण पर्व– इसमें 95वें अध्याय में महाभारत की कथावस्तु समाप्त हो जाती है और भारतवंशी स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर जाते है।

महाभारत का ऐतिहासिक महत्व–

महाभारत चंद्रवंशियों के दो परिवारों कौरवों और पाण्डवों के बीच हुए युद्ध का वृतांत है। 100 कौरव और पाँच पाण्डव भाईयों के बीच भूमि के लिए जो संघर्ष हुआ, उससे अंततः महाभारत युद्ध का सृजन हुआ। इस युद्ध की भारतीय और पश्चिमी विद्वानों द्वारा कई भिन्न–भिन्न तिथियों निर्धारित की गई। भारतीय खगोलविद् एवं गणितज्ञ बराहमिहिर के अनुसार महाभारत युद्ध 2449ई0पू0 में हुआ था। वहीं आर्यभट्ट का मत है कि महाभारत युद्ध 18 फरवरी 3102ई0पू0 में हुआ था। पुलकेशिन II के 5वीं शताब्दी के ऐहोल अभिलेख में यह बताया गया है कि भारत युद्ध को हुए 3735 वर्ष बीत गए है। इस दृष्टिकोण से महाभारत का युद्ध 3100 ई0पू0 में लड़ा गया प्रतीत

होता है। अधिकतर पश्चिमी विद्वानों के अनुसार भारत युद्ध 1200 ई0पू0 में हुआ था, जो इसे भारत में लौह युग (1200–800ई0पू0) से जोड़कर देखते है।

महाभारत में मगध, विदेह आदि राज्य, सीधियन, यूनानी आदि विदेशी जातियो के राज्य राजा से सम्बन्धित सिद्धान्त तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, परिस्थिति एवं धार्मिक क्रियाकलापों का विस्तार से वर्णन किया गया है। निश्चय ही महाभारत भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म के सर्वांगीण विकास का प्रदर्शन एवं विशाल विश्वकोश है। इसमें उस समय के धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक आदर्शो का अमूल्य और अक्षय संग्रह है। महाभारत की इस उक्ति में लेशमात्र संदेह नहीं है कि वह सर्वप्रधान काव्य, सभी दर्शनों का सार, स्मृति इतिहास और चरित्र–चित्रण की खान तथा पंचम वेद है। मानव जीवन का कोई ऐसा पहलू या समस्या नहीं जिस पर इसमें विस्तार से विचार न किया गया हो। उक्ति है कि जैसे दही में मक्खन मनुष्यों में ब्राह्मण, वेदों में आरण्यक, दवाओं में अमृत, जलाशयों में समुद्र था चौपायों में गाय श्रेष्ठ है, उसी प्रकार इतिहासों में 'भारत श्रेष्ठ है। महाभारत का अनन्य धार्मिक महत्व इसी बात में हैं कि 'भगवतगीता' उसी का एक अंश है विष्णु सहस्रनाम, भीष्मस्वतन, अनुगीता, गजेन्द्रमोक्ष आदि भतिपरक रचनाएं महाभारत से ही उद्धत की गई है। राजनीति तथा नीति के प्राचीन ग्रंथों और विचार–धाराओं का तो मानो सार महाभारत में संकालित है विदुरनीति तथा शान्ति पर्व में भीष्म का उपदेश तद्विषयक स्वतंत्र ग्रंथ ही महाभारत में एक साथ ही अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र का प्रतिपादन है।

1.3 सरांश

महाभारत भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म के सर्वांगीण विकास का प्रदर्शन एवं विशाल विश्वकोश है। इसमें उस समय के धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक आदर्शो का अमूल्य और अक्षय संग्रह है। महाभारत की इस उक्ति में लेशमात्र संदेह नहीं है कि वह सर्वप्रधान काव्य, सभी दर्शनों का सार, स्मृति इतिहास और चरित्र–चित्रण की खान तथा पंचम वेद है।

मानव जीवन का कोई ऐसा पहलू या समस्या नहीं जिस पर इसमें विस्तार से विचार न किया गया हो। उक्ति है कि जैसे दही में मक्खन मनुष्यों में ब्राह्मण, वेदों में आरण्यक, दवाओं में अमृत, जलाशयों में समुद्र तथा चौपायों में गाय श्रेष्ठ है, उसी प्रकार इतिहासों में 'भारत श्रेष्ठ है। महाभारत का अनन्य धार्मिक महत्व इसी बात में हैं कि 'भगवतगीता' उसी का एक अंश है विष्णु सहस्रनाम, भीष्मस्वतन, अनुगीता, गजेन्द्रमोक्ष आदि भक्तिपरक रचनाएं महाभारत से ही उद्धृत की गई है। राजनीति तथा नीति के प्राचीन ग्रंथों और विचार–धाराओं का तो मानो सार महाभारत में संकलित है विदुरनीति तथा शान्ति पर्व में भीष्म का उपदेश तद्‌विषयक स्वतंत्र ग्रंथ ही महाभारत में एक साथ ही अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र का प्रतिपादन है।

1.4 शब्दावली

स्तबल – अभ्यंथना, प्रार्थना, गुणगान।

सहस्रनाम– हजार नाम, जिसके हजार नाम हो

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न – महाभारत का ऐतिहासिक महत्व निरूपित करे।

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे 1.2

रामायण की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2रामायण

1.3 सरांश

1.4शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

महाकाव्य लेखन का प्रथम आधार ग्रंथ बाल्मिकी कृत रामायण को माना जाता है। मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान राम को आराध्य मानकर उनकी जीवनी पर आधारित यह ग्रंथ भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। इस ग्रंथ में सत्य का असत्य पर विजय का जयघोष दिखाई पड़ती है।

1.1 प्रस्तावना

रामायण आदिकवि महर्षि बाल्मिकी द्वारा रचित संस्कृत का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। इस महाकाव्य में 7 काण्ड, 645 सर्ग एवं 24,000 श्लोक है। यह हिन्दू स्मृति का वह अंग है जिसके माध्यम से रघुवंश के राजा राम की गाथा गयी गई है। इसे आदिकाव्य भी कहा गया है। बाल्मिकी रामायण स्वर और ताल के साथ वीणा आदि बाध्य यन्त्रों के साथ गाया जा सकने बाला प्रथम महाकाव्य है। इसका सर्वप्रथम गान राम द्वारा कराए गए अश्वमेध यज्ञ में लव और कुश द्वारा किया गया था। रामायण लेखन कार्य की प्रेरणा ब्रह्मर्षि नारद द्वारा बाल्मिकी को दी गई, तथा ब्रह्मा जी ने वरदान दिया, प्रेम में निमग्न क्रौंच पक्षी के जोड़े को एक शिकारी द्वारा हत्या करने

के परिणामस्वरुप क्रौंची के विलाप से अनुष्टुप छन्द की उत्पत्ति हुई, इस छंद का प्रयोग बाल्मिकी द्वारा रामायण में की गई।

1.2 रामायण

रामायण आदिकवि महर्षि बाल्मिकी द्वारा रचित संस्कृत का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। इस महाकाव्य में 7 काण्ड, 645 सर्ग एवं 24,000 श्लोक है। यह हिन्दू स्मृति का वह अंग है जिसके माध्यम से रघुवंश के राजा राम की गाथा गयी गई है। इसे आदिकाव्य भी कहा गया है। बाल्मिकी रामायण स्वर और ताल के साथ वीणा आदि बाध्य यन्त्रों के साथ गाया जा सकने बाला प्रथम महाकाव्य है। इसका सर्वप्रथम गान राम द्वारा कराए गए अश्वमेध यज्ञ में लव और कुश द्वारा किया गया था। रामायण लेखन कार्य की प्रेरणा ब्रह्मर्षि नारद द्वारा बाल्मिकी को दी गई, तथा ब्रह्मा जी ने वरदान दिया, प्रेम में निमग्न क्रौंच पक्षी के जोड़े को एक शिकारी द्वारा हत्या करने के परिणामस्वरुप क्रौंची के विलाप से अनुष्टुप छन्द की उत्पत्ति हुई, इस छंद का प्रयोग बाल्मिकी द्वारा रामायण में की गई।

रामायण में वर्णित विषय–वस्तु के विभाग–

1. **बाल काण्डम्**– बाल्मिकी रामायण का आरंम्भ बालकाण्ड से होता है। 77 सर्गो में इसका वर्णन किया गया है। नारदजी ने बाल्मिकी को श्रीराम का चरित्र सुनाकर इस काण्ड को प्रारम्भ किया है, इसके पश्चात् रामायण महाकाव्य लिखने का उपक्रम, बाल्मिकी द्वारा रामायण में वर्णित विषयों का संक्षेप में उल्लेख, लव–कुश द्वारा राम दरबार में रामायण का गान करना, अयोध्या का वर्णन, राजमन्त्रियों और राजा की नीति एवं गुणों का वर्णन, राजा दशरथ द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञ का वर्णन देवताओं के अनुरोध पर ब्रह्माजी द्वारा रावणवध का उपाय तलाश करना, राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुध्न की जन्म पर आधारित कथावस्तु, अंशुमान और भगीरथ की तपस्या का वर्णन, देवताओं और दैत्यों द्वारा क्षीरसागर का मंथन, धन्वन्तरि, अप्सरा, वारुणी, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ एवं अमृत की उत्पत्ति, शिवजी का विषपान करना, श्रीरामादि चार भाईयों का विवाह, वशिष्ठजी की आज्ञा से काम–धेनु गाय एवं

विश्वामित्रजी के संहार के लिए शक, यवन, पल्लव आदि वीरों का सृष्टि करना, सीता एवं राम के पारस्परिक प्रेम इत्यादि का वर्णन विस्तृत रुप में बाल्मिकी रामायण में किया गया है।

2. **अयोध्याकाण्डम्**– रामायण का दूसरा काण्ड अयोध्याकाण्ड है, 119 सर्गों में रामायण की प्रारम्भिक विषय वस्तु का वर्णन किया गया है। आयोध्याकाण्ड में श्रीराम के सद्गुणों, राम का राज्याभिषेक करने पर विचार करना, दशरथ द्वारा श्रीराम को राजनीति की बातें बतलाना, मंथरा का कैकेयी को बहाना, कैकेयी द्वारा भरत का राज्याभिषेक एवं राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास वर रुप में दशरथ से माँगना, दशरथ का प्राण–त्याग, श्रीराम–लक्ष्मण, सीता का वनबास करना, भरत को राम द्वारा राजनीति का उपदेश देना, जावालि के द्वारा नास्तिक मत का अवलम्बन करने के लिए श्रीराम को समझाना, अयोध्या की दुरवस्था, भरत द्वारा श्रीराम की चरण पदुकाओं पर राज्याभिषेक स्वीकार करना, सीता,अनसूया संवाद एवं अन्य विषयों का विस्तृत रुप में वर्णन किया गया है।

3. **अरण्यकाण्डम्**–बाल्मिकी रामायण के तीसरे काण्ड आरण्यकाण्ड में 75 सर्गों में रामकथा का वर्णन किया गया है। इसमें श्रीराम द्वारा विराध बध, वाानप्रस्थ मुनियों द्वारा राक्षसों द्वारा किए जा रहे अत्याचारों से रक्षा करने के लिए राम से प्रार्थना करना, सीता द्वारा श्रीराम से अहिंसा धर्म का पालन करने का अनुरोध, पस्चाप्सर तीर्थ एवं माण्डकर्णि मुनि की कथा, अगस्त्य ऋषि के प्रभाव का वर्णन, शूर्पनखा का लक्ष्मण से प्रणय निवेदन करना, खरदूषण का राम से युद्ध, श्रीराम द्वारा दूषण एवं खर सहित चौदह सहस्र राक्षसों का वध करना, रावण के द्वारा सीता का अपहरण करना, रावण द्वारा सीता को अपनी पत्नी बनने के लिए बाध्य करना, सीता को रावण द्वारा अपने अन्तःपुर में रखना, श्रीराम का सीता के विरह में विलाप करना, जटायु का प्राण त्याग करना और श्रीराम द्वारा दाह संस्कार करना, कबन्ध की कथा, श्रीराम–लक्ष्मण द्वारा सीता को खोजना, शबरी के आश्रम में राम और लक्ष्मण का जाना,

सुग्रीव से मित्रता के लिए पम्पापुर की ओर गमन करना एवं अन्य विषयों का विश्लेषणात्मक वर्णन आरण्यकाण्ड में किया गया है।

4. **किष्किन्धा काण्ड**– किष्किंन्धा काण्ड रामायण का चौथा काण्ड है 67 सर्गो में इस काण्ड को रचित किया गया है। इस काण्ड के अन्तर्गत पम्पा सरोवर की सुन्दरता का वर्णन, श्रीराम का हनुमादि वानरों से परिचय, सुग्रीव और श्रीराम की मैत्री, सुग्रीव द्वारा सीता जी के आभूषण दिखलाने पर शोकग्रस्त होना, बाली का राम के द्वारा वध करना, सुग्रीव और अंगद का हनुमानजी द्वारा अभिषेक करना, श्रीराम का वर्षा ऋतु का वर्णन करना, शरद ऋतु का वर्णन, लक्ष्मण और सुग्रीव के बीच मतभेद, वानरों का विभिन्न दिशाओं में भ्रमण कर सीता को खोजना, सुग्रीव द्वारा भूमण्डल वृतान्त श्रीराम को बतलाना, सम्पत्ति द्वारा रावण और सीता का पता बतलाना, सम्पत्ति की आत्मकथा, हनुमान जी का समुद्र लंघन करने के लिए महेन्द्र पर्वत पर चढ़ना इत्यादि विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

5. **सुन्दरकाण्डम्**– 68 सर्गो में सुन्दरकाण्ड की विषयवस्तुवर्णित की गई है। इस काण्ड में हनुमान जी द्वारा समुद्र का लंघन करना, लंका में हनुमानजी का पहुँचना, लंकापुरी, रावण के अन्तःपुर, पुष्पक विमान एवं चद्रोदय का वर्णन, सीता को अशोक वाटिका में खोजना, सीताजी की दुरावस्था का वर्णन, सीता, का विलाप, हनुमान जी द्वारा सीता से वार्तालाप करना एवं आश्वासन देना, हनुमानजी का सीताजी को चूड़ामणि प्रदान करना, हनुमानजी द्वारा लंकापुरी का दहन, हनुमानजी का लंका से लौटना, जामवन्त, अंगद, आदि को हनुमानजी द्वारा लंका यात्रा का समस्त विवरण सुनाना, श्रीराम को हनुमानजी द्वारा सीता के सामाचार सुनाना एवं अन्य विषयों पर विस्तृत साम्रगी को वर्णित किया गया है।

6. **युद्धकाण्डम्**– 128 सर्गों में राम एवं रावणादि राक्षसों के मध्य युद्ध का विस्तृत वर्णन है। श्रीराम के साथ बानर सेना का लंका की तरफ प्रस्थान करना, श्रीराम का सीता के लिए बिलाप करना, विभीषण, मन्दोदरी एवं अन्य राक्षसों के द्वारा रावण को समझाना एवं सीता जी को लौटाने की सलाह

देना, विभीषण द्वारा राम के शरण में जाना, समुद्र में नल–नील द्वारा सौ योजन पुल का निर्माण करना, उस पुल को पारकर बानर सेना एवं श्रीराम का दूसरी तरफ पहुंचना, सुग्रीव और रावण का मल्लयुद्ध, बानरों द्वारा लंका पर चढ़ाई करना, श्रीराम और लक्ष्मण को नागपाश में इन्द्रजीत द्वारा बांधना, गरुड़ द्वारा श्रीराम–लक्ष्मण को नागपाश बंधन से मुक्त करना, कुम्भकर्ण को जगाया जाना, उसे देखकर बानरों का भयभीत होना, कुम्भकर्ण द्वारा रावण को समझाना, बानरों एवं श्रीराम से युद्ध करते हुए कुम्भकर्णादि कई राक्षसों का मारा जाना, लक्ष्मण का मूर्च्छित होना, हनुमान द्वारा पर्वत उठाकर लाना, लक्ष्मण का स्वस्थ होना, लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजीत का वध करना, श्रीराम को विजय प्राप्ति के लिए अगस्त्य मुनि द्वारा 'आदित्य ह्रदय' के पाठ करने की सलाह देना, श्रीराम द्वारा रावण का बध करना, रावण का दाह संस्कार करना, विभीषण का राज्यभिषेक करना, सीता से राम की भेंट, सीता का परित्याग करना, सीता की अग्नि परीक्षा, सीता की पवित्रता की पुष्टि होने पर राम द्वारा स्वीकार करना, भरत से रामादि से मुलाकात, श्रीराम का अयोध्या में गमन कर राज्याभिषेक एवं शासन सँभालना, एवं रामायण का महात्म्य काव्यशैली में वाल्मिकी ने वर्णित किया है।

7. **उत्तरकाण्डम्**– रामायण की अन्तिम उपसंहारात्मक विषय–वस्तु 111 सर्गों में उत्तरकाण्ड में वर्णित की गई है। उत्तरकाण्ड में श्रीराम के दरबार में महर्षियों का आगमन, विश्रवामुनि की उत्पत्ति, पुलस्त्य की तपस्या, कुबेर की उत्पत्ति, राक्षस वंश का वर्ण, भगवान विष्णु द्वारा राक्षसों का संहार, रावण का जन्म होना और गोकर्ण आश्रम में तप के लिए जाना, लंका में रावण का राज्याभिषेक, सुर्पणखा तथा रावणादि तीन भाईयों का विवाह, मेघनाद का जन्म, नन्दीश्वर द्वारा रावण को श्राप देना, हनुमानादि वानरों की उत्पत्ति, सीता को त्यागे जाने पर वाल्मिकी आश्रम में शरण लेना, कल्माषपाद की कथा, विभिन्न ऋषियों एवं मर्हिषियों के शाप एवं पूर्वजन्मों की कथा, सीता के दो पुत्रों का जन्म, श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ करना, यज्ञ में आमन्त्रित वाल्मिकी के साथ आए लव–कुश का रामायण का गान करना, सीता का शपथ ग्रहण

कर रसातल में प्रवेश करना, भरत द्वारा गन्धर्वों पर आक्रमण किया जाना, लक्ष्मण का सशरीर स्वर्गगमन करना, श्रीराम का परमलोक में गमन करना एवं रामायण काव्य का उपसंहार एवं महिमा बेहद उत्कृष्टतम् तरीके से वर्णित की गई है।

रामायण में ऐतिहासिक तथ्य– रामायण का रचनाकाल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। प्रो0 रामशरण शर्मा के अनुसार, रामायण की रचना बारहवीं शताब्दी ई0पू0 में प्रारंम्भ हुई और पाँचवी शताब्दी ई0पू0 तक पांच चरणों में पूर्ण हुई। किन्तु स्वीकार रुप में रामायण का प्रारम्भिक रचनाकाल 500ई0पू0 एवं अन्तिम रुप में संकलन 400 ई0पू0 माना जाता है।

वाल्मिकी रामायण में उल्लिखित तथ्यों के अनुसार तत्कालीन समाज में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थो की प्रधानता, ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्रों का जन्मानुसार अपने–अपने कर्मों में रत रहने, चार आश्रमों में जीवन व्यतीत करने का उल्लेख किया गया हे। पुत्रादि प्राप्ति के लिए पुरोहितों द्वारा विधिजन्य तरीकों से अश्वमेघादि यज्ञों का प्रचलन जोरों पर था। विधिहीन यज्ञ को यजमान को नष्ट करने वाला माना गया था।

सामाज में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाता था। ब्रह्मचर्य पालन के दो रुप माने जाते थे– पहला दण्ड मेखलादि धारण कर मुख्य रुप से ब्रह्मचर्य पालन करना और दूसरा ऋतुकाल में पत्नी समागम करते हुए गौण ब्रह्मचर्य का पालन करना। स्त्रिायों द्वारा पतिव्रत को सर्वस्व मानने की प्रथा थी। स्त्रियों द्वारा विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त समाज में वेश्यावृत्ति, जुआ आदि भी व्याप्त थी। राजाओं द्वारा अपने कार्यसिद्धि के लिए वेश्याओं के माध्यम से तपस्वियों के तप भंग करने का उल्लेख भी मिलता है। रामायण में सेवको, शिल्पकारों, बढ़ईयों, भूमि खोदने वालो, कारीगरों, नटो, ज्योतिषियों, नर्तको, रजको इत्यादि विभिन्न व्यवसायी वर्गो का उल्लेख मिलता है। सम्मानपूर्वक दान देने की परम्परा विद्यमान थी। दान में अन्न, आभूषण, वस्त्र, धन, सम्पदा एवं रत्न, अश्वादि दिए जाने का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण षड़ांगो के ज्ञाता,, ब्रह्मचर्य व्रतधारी, बहुश्रुत, विधि, मीमांसा और कल्पसूत्र के जानकार होते थे। तत्कालीन समाज में तन्त्र, मंत्र, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, शकुन, अपशकुन का अत्यधिक प्रचलन था। बेल, खैर, पलाश एवं बिल्वादि वृक्षों को धार्मिक एवं पूजनीय वृक्ष माना जाता था। अयोध्या का नामकरण का आधार था, जहाँ पर पहुंचकर कोई युद्ध न कर सकें। वशिष्ठ और वामदेव दशरथ के पुरोहित (जत्विष), धृष्टि, जयन्त,

विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल, सुमन्त, काश्यप, जावालि सुयज्ञ, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन इत्यादि महाराज दशरथ के विद्वान मंत्री थे। मंत्रियों का कार्य चतुरंगिणी सेना का संग्रह, गुप्तचरों द्वारा अन्य राजाओं के कार्य की जानकारी लेना, कोष का संचय करना, अपराधी को बलाबल के आधार पर दंड देना इत्यादि होते थे। तत्कालीन शासक केपास वैतनिक एवं अवैतनिक दोनों प्रकार को कार्यकर्ताओं एवं सेवकों के होने का उल्लेख मिलता है। सेना में घोड़े, बैलगाड़ियों, रथ आदि प्रयोग में लाए जाते थे। हाथी, घुड़सवार, एवं धर्नुधर सेना में प्रमुख रुप से आवश्यक होते थे।

1.3 सरांश

रामायण प्राचीन भारत का प्रमुख महाकाव्य है। इसे आदिकाल के नाम से भी जाना जाता है। भारतीयों के लिए इस महाकाव्य का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक महत्व है। मैक्डॉनल के अनुसार ''विश्व साहित्य की कई भी रचना सम्भवतः जनता के जीवन एवं विचारों को उतना प्रभावित नहीं करती जितना की रामायण''। महर्षि बल्मिकी कृत रामायण में 7 काण्ड 645 सर्ग एवं 24000 श्लोक है। आज की भारतीय सांस्कृति चेतना की केन्द्रबिन्दु रामायण है।

1.4 शब्दावली

अन्तःपुर – राजमहल

किष्किन्धा – वानर जाति

अरण्यक– जंगल, वन

चर्तुश्रम– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ एवं संन्यास नामक चार आश्रम

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न – रामायण के विभिन्न कांडो की संक्षिप्त व्याख्या करें?

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे 1.2

MAAH-107N/MAHY-111

इतिहास दर्शन एवं लेखन
सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियां

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

खण्ड
5

भारतीय इतिहास लेखन की परम्पराएँ

इकाई- 1

अभिलेख की विवेचना 175

इकाई- 2

स्मारक की विवेचना 188

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 पी0पी0 दूबे — कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार — निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (1,2,3 खंड)

प्रो0 एम0पी0 अहिरवार — आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी
इकाई–1,2,3,4,5 (5खंड)

डॉ. रमाकान्त सिंह — सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (4,6 खंड)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव — आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, म0जो0फुले रु0वि0वि0, बरेली
(इकाई 1–30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष – 2022

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–2810 03

अभिलेख की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2अभिलेख

1.3 सरांश

1.4शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इतिहास के स्रोतों के रूप में अभिलेखों का अत्यंत महत्व है। अभिलेख किसी कागज, चमड़ा धातु, फलक, मृण्य–फलक, पाषाण खंडो पर ही नहीं वरन् कही भी हो सकती है। मनुष्य अपने भावनाओं विचारों को लिपि के माध्यम से जब व्यक्त करता है तो उससे कई प्रकार की जानकारियाँ जाने अनजाने मिलती है। ठीक उसी प्रकार प्राचीन काल में राजाओं की आज्ञा चत्र पाषाण खंडो पर उकेरे जाते थे, एवं अन्य माध्यमों के जरिये भी व्यक्त किये जाते थे, जिनका इतिहास के स्रोतों के रूप में अन्यनतम महत्व है।

1.1 प्रस्तावना

वे लिखित साक्ष्य जो किसी वस्तु के ऊपर मान्य संकेतों द्वारा लिखे गए हैं। अभिलेखशास्त्र (epigraph)–वह विज्ञान जो लिखित साक्ष्य अर्थात् अभिलेखों का अध्ययन करता है।

अभिलेख हमें दो तरह के साक्ष्यों के रुप में उपलब्ध होते हैं–

1. मूर्त साक्ष्य के रूप में– प्राप्त वास्तु अवशेष।

2. अमूर्त साक्ष्य के रुप में– अभिलेखों में वर्णित तथ्यों से समकालीन समाज तथा संस्कृति के उन पक्षों का आभास होता है जो अमूर्त रुप से विद्यमान होते हैं जैसे–धार्मिक मान्यताएँ, राजनैतिक प्रबंधन या इसी प्रकार की अन्य सूचनाएं।

1.2 अभिलेख

अभिलेख (**Epigraph**)–

वे लिखित साक्ष्य जो किसी वस्तु के ऊपर मान्य संकेतों द्वारा लिखे गए हैं। अभिलेखशास्त्र (epigraph)–वह विज्ञान जो लिखित साक्ष्य अर्थात् अभिलेखों का अध्ययन करता है।

अभिलेखों से उपलब्ध साक्ष्य–

अभिलेख हमें दो तरह के साक्ष्यों के रुप में उपलब्ध होते हैं–

3. मूर्त साक्ष्य के रुप में– प्राप्त वास्तु अवशेष।
4. अमूर्त साक्ष्य के रुप में– अभिलेखों में वर्णित तथ्यों से समकालीन समाज तथा संस्कृति के उन पक्षों का आभास होता है जो अमूर्त रुप से विद्यमान होते हैं जैसे–धार्मिक मान्यताएँ, राजनैतिक प्रबंधन या इसी प्रकार की अन्य सूचनाएं।

अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा और लिपि का पृथक इतिहास–

अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा और उसका लेखन अर्थात् लिपि–दोनों का पृथक इतिहास रहा है। मानव speech की शुरुआत होमा–इरेक्ट्स (homoerectus)से होती है जो 11 लाख वर्ष पूर्व अस्तित्व में था।

Note- जानवर की आवाजें–call

मानव की आवाजें. speech

प्राचीनतम मानव australopithecus को माना जाता है क्योंकि यह उपकरण बनाने लगा था, यद्यपि शरीर से व वनमानुष ही था।

धीरे–धीरे मानव के बोलने की अभिव्यक्ति विकसित होती गई और इस अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में एकरुपता लाने के लिए कुछ ऐसे नियम विकसित

होने लगे जो languages के रुप में कई वर्गों में बंटने लगे और भाषा अभिव्यक्ति, दिनचर्या तथा विभिन्न क्रियाकलापों के लिए आवश्यक हो गई।

भाषा को लिपिबद्ध करने का प्रयास तुलनात्मक रुप से बहुत बाद का है और लेखन की प्रथा विश्व के अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग समय तथा अलग–अलग स्वरूप में प्रारंम्भ हुई। भारतीय उपमहाद्वीप की अगर बात करें तो एक लम्बा काल ऐसा था जब भाषा का विकास और उसके आधार पर एक बहुत सम्पन्न साहित्य की संरचना हो गई थी लेकिन लेखन की प्रथा तथा भाषा को लिपिगत करने का प्रयास बहुत बाद में शुरु हुआ।

दरअसल भाषा का प्रचलन सांस्कृतिक आवश्यकता के रुप में स्वतः विकसित होने लगता है और लेखन की आवश्यकता तब होती है जब समाज का स्वरुप काफी जटिल हो जाता है और ऐसे समाज में जब विशेष नियम की स्थापना करनी होती है तो आदेशों, नियमों और नैतिक मूल्यों को लिखित रुप में समाज में रखा जाता है। लिपि के विकास को हम अर्थव्यवस्था से भी जोड़ सकते हैं।

इस प्रकार, लेखन का इतिहास भाषा के इतिहास से सर्वथा भिन्न है। अतः इसके विकास के विभिन्न चरणों पर अलग से विचार किया जाना चाहिए।

अभिलेखों में प्रयुक्त माध्यम–

भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन लेखों के जो अस्तित्व प्राप्त हुए हैं, उनमें दो तरह के माध्यम का प्रयोग किया गया है–

(1) ऐसे माध्यम जो लम्बे समय तक सुरखित रहते हैं। जैसे– पाषाण, धातु के पत्रों यथा सोना, चाँदी, पीतल और कभी–कभी टिन (ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित) के ऊपर लिखित अवशेष। इसके अतिरिक्त मिट्टी खासतौर पर teracota (बही मिट्टी) जिसमें मृदापात्र, ईंटें और मिट्टी के ऊपर बनी मुद्राएँ– ये सब वस्तुएँ आती हैं– के ऊपर अंकित लेख भी काफी लंबे समय तक सुरक्षित रह जाते हैं।

(2) यह ऐसा माध्यम है जिस पर लिखे बहुत जल्द नष्ट हो जाते हैं। जैसे– लकड़ी, चमड़ा, कपड़ा, भोजपत्र और मध्यकाल में कागज। ये कभी–कभी तो सुरक्षित रह जाते हैं मगर इसका विघटन बहुत जल्दी हो जाता है।

अभिलेख जिन माध्यमों पर बने मिलते हैं, उनमें एक ऐतिहासिक क्रम देखा जा सकता है। सिन्धु–सम्यता जहाँ से सबसे प्रारंभिक लेखन के प्रमाण मिले हैं, वहाँ तीन प्रकार के माध्यमों पर लेख मिलते हैं–

(1) प्रस्तर या पाषाण– घौलावीरा में हड़प्पन अभिलेख

(2) सेलखड़ी की मुद्राएँ

(3) मिट्टी के बर्तनों के ऊपर खुरच कर बनाए गए हैं। ऐतिहासिक काल में जब लेखन के प्रमाण मिलने शुरु होते हैं तो सबसे प्रमाणिक प्रमाण premauryan मिट्टी के बर्तन तथा अत्यल्प पाषाण के कुछ पात्र हैं जो श्रीलंका के अनुराधापुर से प्राप्त हुए हैं। मौर्यकाल मेंअभिलेखन हेतु बहुत बड़े स्तर पर पाषाण का प्रयोग हुआ। गुप्तकाल तथा गुप्तोत्तर काल में पाषाण के साथ–साथ धातु खासकर ताँबें का प्रयोग (दानपत्र वगैरह के रुप में) देखने को मिलता है।

विषयवस्तु के आधार पर अभिलेखों का वर्गीकरण–

विषयवस्तु के आधार पर अभिलेखों को दो मुख्य वर्गो में विभाजित किया जा सकता है– 1. शासक वर्ग के अभिलेख– जहाँ तक शासकीय व्यक्तियों के अभिलेखों का प्रश्न है तो इन्हें प्राचीन साहित्य में भी विशेष रुप से महत्व दिया गया है। उदाहरण के लिए धर्मशास्त्र में इस प्रकार के कई अभिलेखों की चर्चा है। जैसे–

(1) भूमिदान के अध्यादेश

(2) आज्ञापत्र

(3) शासन–पत्र

(4) जयपत्र (जो न्याय संबंधी अध्यादेश का लेखन करते हैं)

(5) प्रशस्तियाँ (जिनमें राजाओं के कार्य, प्रशंसा एवं जीवन का वर्णन होता है।)

(6) प्रासाद लेख (जिसमें किसी घटना विशेष या व्यक्ति–विशेष की प्रशंसा की जाती है।

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में लेखों द्वारा शासन एवं सत्ता संबंधी कई अध्यादेश जारी किए जाते थे।

2. व्यक्ति–विशेष के अभिलेख– व्यक्ति– विशेष के द्वारा जारी किए गए लेख भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। ये लेख हैं मूलतः–

(a) प्रशासनिक पदों पर स्थापित व्यक्तियों के– गुप्तकाल में सामन्त या छोटे शासकों के लेख। जैसे– चक्रपालित द्वारा लिखवाया गया जूनागढ़ अभिलेख।

(b) धार्मिक रुप से सशक्त व्यक्तियों के– बलभिक्षु द्वारा सारनाथ में स्थापित बोधिसत्व की प्रतिमा पर अंकित लेख।

(c) व्यसायियों अथवा व्यापारियों के– साँची के स्तूप से संबंधित कई लेख जो वणिक वर्ग द्वारा उत्कीर्ण करवाए गए। कई वास्तु–दान के लेख व्यवसायियों से संबंधित हैं।

अभिलेखों से मिलने वाली ऐतिहासिक सूचनाएँ

व्यापारिक सूचना–

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में जो व्यापरिक लेख हैं, वो अन्य लेखों की तुलना में बहुत छोटे मिलते हैं। इसके अन्तर्गत व्यापारिक गतिविधियों की प्रक्रिया में विशेष व्यक्तियों के नाम जिन वस्तुओं का व्यापार किया जा रहा है उसका नाम तथा व्यापारिक वर्गों के नाम उपलब्ध होते हैं। ये ज्यादातर seal और sealing के रुप में उपलब्ध होते हैं।

seals के प्रमाण हड़प्पा सभ्यता से ही मिलने शुरु हो जाते हैं परन्तु चूँकि इस लेख को पढ़ा नहीं जा सका है। अतः इस लिपि का प्रयोग तत्कालीन इतिहास संरचना के लिए करना संभव नहीं है। लेकिन seals के जो छाप मिलते हैं वे संकेत करते हैं कि वस्तुओं का आदान–प्रदान व्यापार तथा विनिमय के रुप में होते रहे होंगे।

कालान्तर में जब ब्राह्मी लिपि का प्रयोग लेखकन में होता है, व्यापारिक गतिविधियों के साथ seal के ऊपर कुछ सूचनाएँ उपलब्ध होती है। उदाहरण स्वरुप वैशाली के उत्खनन से जो seal मिले हैं, उस पर 'कुलिक निगमस्य' लिखा मिलता है।

भीतरी (आधुनिक उत्तरप्रदेश के गाजीपुर जनपद में स्थित) गुप्त–काल के मंदिरों का एक स्थल है जहाँ के उत्खनन से ये संकेत मिलते हैं कि इस सन्निवेश में कच्चे लोहे का आयात किया जाता था। भीतरी के मध्य मंदिर के बाहरी भाग के उत्खनन से कच्चे फर्श के अवशेष, उसके ऊपर राख का फैलाव और साथ में लोहे के टुकड़ों को गलाने के प्रमाण मिले हैं। साथ ही कुछ ऐसे seals प्राप्त हुए हैं जिनके ऊपर 'मधुसूदन', 'श्री मधुप', 'श्री मधुसर' जैसे नाम अंकित हैं। कुछ sealings के ऊपर 'अगनेयश' लिखा है जिसका तात्पर्य कच्चे लोहे से है। एक मुहर के नीचले भाग में सुतली की छाप उपर्युक्त संदर्भों से स्पष्ट होता है कि भीतरी में जब मंदिरों की संरचना हो रही थी तो कच्चे लोहे का आयात इस स्थल पर किया जाता था।

कभी–कभी अभिलेखों से व्यापारियों के आर्थिक स्तर की भी जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए मन्दसौर अभिलेखों में रेशम के बुनकरों द्वारा मंदसौर में शिव–मंदिर के निर्माण की चर्चा है। स्कन्दगुप्त के इन्दौर ताम्रपत्र में तैलिक श्रेणी का वर्णन है जिसने सूर्य–मंदिर में दीप जलाने के निमित्त तेल का दान दिया था। व्यापारियों की सशत अर्थव्यवस्था का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि वे बैंको का कार्य भी करती थी। नहपान कालीन नासिक गुहालेख से ज्ञात होता है कि नहपान के जमाता उषवढात ने गोवर्धन में निवास करने वाली जुलाहों की एक श्रेणी में 2000 कार्षापण और दूसरी में 1000 कार्षापण जमा कराए।

व्यापारिक लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि व्यापारिक श्रेणियाँ कभी–कभी अपने व्यवसाय वृद्धि के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान में अपने को प्रतिष्ठित कर लेती थी। उदाहरणस्वरुप मंदसौर लेख का पुनः उल्लेख

किया जा सकता है जिसमें जिस पट्टवाय श्रेणी का उल्लेख है वो गुजराज से आए थे।

धार्मिक सूचनाएँ–

अभिलेखों से प्राप्त धार्मिक सूचनाएं एक तरफ तो समकालीन समाज में अलग–अलग धर्मों के प्रचलन और उनसे संबंधित क्रियाकलापों का विवरण प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी तरफ प्रत्येक धर्म के विकास और प्रचलन के स्वरुप का इतिहास भी अभिलेखों की मदद से निर्मित किया जा सकता है। इससे एक तरफ तो हमें राजसत्ता का धर्म की ओर रुझान का ज्ञान प्राप्त होता है तो दूसरी तरफ धार्मिक संघों की संरचना एवं उनके अनुशासन का भी इतिहास ज्ञात होता है। अशोक के धर्म अध्यादेशों की अगर बात करें तो इससे जहाँ एक ओर बौद्ध धर्म के प्रति उसका झुकाव प्रदर्शित होता है वहीं सारनाथ, साँची एवं कौशाम्बी लेख में बौद्ध भिक्षुओं को दी गई चेतावनी से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म में अनुशासन में कमी आ रही थी और आपसी मतभेद बढ़ना शुरु हो गया था।

धार्मिक लेखों के अन्तर्गत दानात्मक लेखों का विशेष महत्व है और ये प्राचीन काल में बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं।

अशोक के पौत्र दशरथ ने बराबर एवं नागार्जुनी गुफाओं को आजीवकों को दान में दिया था जिसकी सूचना वहाँ उत्कीर्ण लेख से होती है।

अशोक का रुम्मिनदेई अभिलेख यादगार के रुप में चढ़ाए गए चढ़ावे का उल्लेख करता है। अशोक अपने राज्यकाल के 20वें वर्ष में यहाँ आया था और इसने बुद्ध की जन्मस्थली की याद में यहाँ कुछ संरचनाएँ बनवाई थीं।

प्रतिमाओं का निर्माण कर धार्मिक स्थलों पर उसकी स्थापना करवाने का स्पष्ट प्रमाण कुषाण काल से मिलना प्रारम्भ हो जाता है। इन प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेख से इससे संबंधित व्यक्तियों के विषय में जानकारी होती है। उदाहरण स्वरुप बलभिक्षु द्वारा बोधिसत्व की प्रतिमा स्थापित करने का उल्लेख किया जा सकता है।

शुंग–कुषाण तथा इसके परवर्ती काल में कई व्यापारियों तथा व्यक्तियों के द्वारा धार्मिक स्थलों पर चढ़ावें के प्रमाण मिलते हैं। साँची तथा भरहूत स्तूपों की रेलिंग इन्हीं दानों से बनी है जिसकी सूचना रेलिंग पर उत्कीर्ण लेख से मिलती है।

मंदिरों में भी हमें दान की परिपाटी देखने को मिलती है। उदाहरण स्वरुप बृहदेश्वर मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें समय–समय पर कई व्यक्तियों द्वारा समय–समय पर कई व्यक्तियों द्वारा अलग–अलग ढ़ाँचों की संरचना चढ़ावे के रुप में की जाती रही है। इस तरह के लेखों से व्यक्ति विशेष तथा समूह विशेष की धर्म के प्रति आस्था के साथ–साथ समकालीन इमारतों व भवनों का विकास एवं विस्तार भी ज्ञात होता है।

शासकों द्वारा धार्मिक स्थलों के रखरखाव हेतु किए गए प्रयासों की सूचना भी इन दानात्मक धार्मिक लेखों से मिलती है। उदाहरण के लिए भीतरी में स्कन्द गुप्त ने जब विष्णु मंदिर की स्थापना करवाई तो वहाँ उपलब्ध अभिलेख के अनुसार उसने वहाँ का गाँव मंदिर के रखरखाव के लिए दान में दिया। इसी प्रकार, नालन्दा के रखरखाव के लिए देवपाल देव ने कई गाँव दान में दिए। इस प्रकार के कई अन्य उल्लेख गुप्त तथा परवर्ती गुप्त काल के भूमि दानपत्रों से उपलब्ध होता है।

दानपरक धार्मिक सूचनाओं से कभी–कभी समकालीन अर्थव्यवस्था की भी सूचना प्राप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए गुप्तकाल और परवर्ती गुप्तकाल में भूमि–दान का विशेष प्रचलन शुरु हुआ जो तत्कालीन सामन्तवाद की ओर संकेत करता है।

देवपाल देव के नालन्दा अभिलेख पर अगर गौर किया जाए तो ज्ञात होता है कि शासकों के द्वारा एक से अधिक धार्मिक–सम्प्रदायों की सहायता करने का प्रयास प्रचलित था क्योंकि इस काल में बौद्ध विहार को दान में देने वाली भूमि के साथ इस बात का उल्लेख किया गया है कि वे भाग जो पहले ब्राह्मण धर्म को दिए जा चुके हैं, वो इस दान के आदेश से बाहर माने जाएँगे।

प्रशस्तियाँ/राजनीतिक सूचनाएँ

कुछ प्रशस्तियों से हमें संबंधित शासक से पूर्व की वंशावलियों की सूचना प्राप्त होती हैं। गुप्तकाल से यह परम्परा विशेष रुप से प्रसिद्ध हुई। समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति और स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तंभलेख में गुप्त वंशावली का वर्णन मिलता है। वंशावली के संदर्भ में प्रभावती गुप्ता का पूना ताम्रपत्र अत्यंत रोचक है जिसमें वाकाटक वंशावली के स्थान पर गुप्त वंशावृक्ष का वर्णन किया गया हैं यह निश्चित रुप से वाकाटक साम्राज्य पर गुप्तों का प्रभाव प्रदर्शित करता है। इस प्रकार इन वंशावलियों के आधार पर महँवपूर्ण राजवंश के शासकों का क्रम मिल जाता है तथा कई बार उनसे संबंधित अन्य घटनाओं की सूची भी उपलब्ध हो जाती है।

प्रशस्तियों में शासकों द्वारा प्रयुक्त उपाधियों से उनकी सत्ता और प्रभुत्व का अनुमान होता है। जैसे– गुप्त अभिलेख में घटोत्कच को केवल महाराज कहा गया है तथा इसकी रानी का नाम भी लेख में नहीं है जबकि इसके विपरित समुद्रगुप्त या चन्द्रगुप्त के नाम के साथ महाराजाधिराज की उपाधि तथा उनकी महारानियों का नाम भी उल्लिखत है।

प्रशस्तियों से कभी–कभी संबंधित शासक के शुरुआती दिनों तथा उसकी प्रारंभिक कठिनाईयों के विषय में भी जानकारी प्राप्त हो जाती है। उदाहरणस्वरुप– स्कन्दगुप्त के भीतरी अभिलेख का उल्लेख किया जा सकता है जिससे ज्ञात होत है कि स्कंदगुप्त को राजसत्ता पारिवारिक विवाद के बाद मिली थी। अभिलेख में साहित्यिक ढ़ंग से कहा गया है कि उसने कई रात जमीन पर सोकर बिताई क्योंकि उससे राजलक्ष्मी रुठ गई थी, लेकिन उसके प्रयास के कारण राजलक्ष्मी ने पुनः उसका वरण किया।

इस प्रकार के लेख शासकों की कूटनीतिक प्रतिभा को भी स्पष्ट करती है। लिच्छवी कन्या कुमारदेवी और चन्द्रगुप्त का विवाह निश्चय ही राजनीति प्रेरित था और यह चन्द्रगुप्त की विलक्षण कूटनीतिक प्रतिमा का चित्र प्रस्तुत करता है।

प्रशस्तियों में कई बार किसी राजा विशेष के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं का उल्लेख मिल जाता है। जैसे– खारवेल के हाथीगुम्फा लेख से उसके शासन, राज्य एवं युद्धों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत होता है।

प्रशस्तियों के आधार पर शासकों के राज्य की सीमाओं का अनुमान भी लगाया जा सकता है। समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसका साम्राज्य उत्तर में पांचाल से लेकर दक्षिण में कांची तक विस्तृत था। खजुराहों अभिलेख में यशोवर्मा और धंग के साम्राज्य का वर्णन मिलता है।

इस प्रकार के लेखों से राजाओं की समकालीनता का भी पता चलता है समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति में उसके समकालीन शासकों एवं गणराज्यों आदि की एक लंबी सूची मिलती है। ऐहोल अभिलेख पुलकेशिन द्वितीय और हर्षवर्धन की समकालीनता पर प्रकाश डालता हे।

प्रशस्तियाँ कई बार साहित्यक विवरणों की पुष्टि में भी सहायक होती है। उदाहरण स्वरुप धनदेव के अयोध्या प्रस्तर लेख का उल्लेख किया जा सकता है जो पतंजलि कृत 'महाभाष्य' में उल्लिखित पुष्यमित्र द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञों की पुष्टि करता है।

अशोक के अभिलेखों से राज्य में शासन व्यवस्था से जुड़े लोगों के लिए निर्देश देने की परिपाटी शुरु हुई। शाहबाजगढ़ी के 6वें शिलालेख से यह संकेत मिलता है कि अशोक के शासनकाल में महामात्यों का विशेष महत्व था और कई बार ये कर्मचारी राजा के मौखिक आदेशों को स्वीकार नहीं करते थे तथा उसे लेकर वाद–विवाद करते थे। अतः यह आवश्यक था कि उसके आदेश लिखित रुप में वहाँ उपलब्ध हों जिसका वे अनुसरण कर सकें।

अशोक के तृतीय तथा पंचम शिला प्रज्ञापनों में धर्म–महामात्र, रज्जुक, प्रादेशिक युक्त, ब्रजभूमिक आदि अनेक पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है जो प्रजाहित के लिए राज्य में भ्रमण करते थे। साथ ही शिला प्रज्ञापनों से ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, तक्षशिला, उज्जयिनी, तोसली तथा सुवर्णगिरि मौर्य –साम्राज्य की प्रान्तीय राजधानियाँ थी।

सहगौरा अभिलेख जिसकी कोई तिथि उपलब्ध नहीं है और जिसे सामान्य तौर पर चन्द्रगुप्त मौर्य कालीन माना जाता है से ज्ञात होता है कि श्रावस्ती के माहमात्यों ने इस अभिलेख की कई प्रतियाँ बनवाई और उसे तियवनी, मथुरा, चंचु, मयदाम, भल्लक इत्यादि क्षेत्रों में उन लोगों के जारी करवाया जो अनाज के कोष्ठों के अधिकारी थे। ये कोष्ठों के अधिकारी निश्चय ही शासन के किराएदार थे और इन्होंने राज्य के लिए अनाज का संग्रह किया था। अतः इन्हें यह निर्देश दिया गया था कि अन्न का वितरण तभी होगा जब अकाल पड़ेगा। इसके अलावा इस लेख से यह भी स्पष्ट होता है कि नंद व मौर्य काल के दौरान श्रावस्ती के महामात्य शासन में विशेष महत्वपूर्ण थे। अभिलेखों से शासन–प्रणाली के संबंध में भी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती है। प्राचीन भारत में दो प्रकार के शासन का स्वरुप था। प्रजातंत्र (गणतंत्र) और राजतंत्र। समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति में गणराज्यों की एक लंबी सूची मिलती है।

भौगोलिक सूचनाएँ

स्कन्दगुप्त कालीन जनूागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि तीव्र वर्षा के कारण वहाँ की नदियों में बहुत अधिक जल एकत्र हो गया जिसके फलस्वरुप सुदर्शन झील का बांध टूट गया जिसकी पुनः मरम्मत करवाई गई। जिस तरह की वर्षा और नदियों की पानी में वृद्धि का विवरण इस अभिलेख में मिलता है उससे गुप्तकाल में अच्छी वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है। अभिलेख का यह तथ्य जब गंगा–घाटी के भूगर्भशास्त्रीय प्रमाणों के साथ देखते हैं तो यह महत्वपूर्ण है कि पुरापर्यावरण के वैज्ञानिक तरीके से निर्धारित खाके में भी गुप्तकाल में अच्छी वर्षा के प्रमाण उपलब्ध हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य युगीन सहगौरा अभिलेख की कई प्रतियाँ बनवाई और उसे तियवनी, मथुरा, चंचु, मयुदाम, भल्लक इत्यादि क्षेत्रों के कोष्ठ अधिकारियों को जारी किया। उनहें यह निर्देश दिया गया कि अन्न का विवरण तभी करें जब अकाल पड़े। इस प्रकार इस लेख से मौर्यकाल में होने

वाले अकाल की सूचना प्राप्त होती है जो गुप्तयुगीन जूनागढ़ लेख से प्राप्त अत्यधिक वर्षो के प्रमाणों के ठीक विपरित है।

कुछ अभिलेखों से स्थान विशेष के भौगोलिक परिवेश की सूचना भी प्राप्त होती है। मंदसौर अभिलेख में दशपुर (गुप्तकालीन स्थल) जहाँ कमारगुप्त II और बन्धुवर्मन के समय गुजरात के लाट से आए जुलाहे बस गए थे, की रुपरेखा का वर्णन मिलता है, जिसके अनुसार यहाँ कई झीलें थीं। नगर के पश्चिमी भाग में महल था।

अभिलेखों से हमें कई पर्वतों की भौगोलिक सूचना भी मिलती है उदाहरणस्वरुप अशोक ने वर्तमान बराबर (गया, बिहार) की पहाड़ियों में गुफा खुदवा कर आजीवकों को दान में दिया इस प्रसंग में खलतिक पर्वत (बराबर) का उल्लेख मिलता है। उड़ीसा के शासक खरवेल ने राज्याभिषेक के 8वें वर्ष में गोरथगिरि (संभवतः बराबर पर्वत) पर आक्रमण कर उसे जीत लिया था। इसके आलवे पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल प्रशस्ति में विन्ध्याचल पर्वत का उल्लेख है जिसके समीप ही उसने उत्तर भारतके प्रसिद्ध सम्राट हर्षवर्द्धन को परास्त किया था।

अभिलेखों के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं का तिथि–निर्धारण–

अभिलेखों से हमें काल–निर्धारण के जो संकेत मिलते हैं वे दो प्रकार के हैं–

1. लिपि के आधार पर काल–निर्धारण
2. विषयवस्तु के आधार पर काल निर्धारण

1.3 सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालने वाले स्रोतों में सर्वाधिक महत्व के एवं प्रामाणिक स्रोत अभिलेख है, क्योंकि अभिलेख समकालीन होते है। जिस राजा अथवा राज्य के विषय में अभिलेख पर लिखा होता है अभिलेख की रचना उसी राजा के शासन काल के समय की गई होती है। अतः उस तथ्य के सत्य होने की सम्भाना अधिक होती है। अभिलेखों से तत्कालीन राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है।

इसके अतिरिक्त राज्य की सीमाओं का निर्धारण राजाओं के चरित्र एवं व्यक्तित्व के विषय में भी थे। जानकारी उपलब्ध कराते हैं। अभिलेख तत्कालीन कला को भी प्रदर्शित करते है।

अब तक विभिन्न कालों एवं राजाओं के हजारों अभिलेख प्राप्त हो चुके है। जिनमें प्राचीनतम उपलब्ध अभिलेख पांचवी शताब्दी ई0पू0 का पिप्रावा (जिला बस्ती) कलश लेख है। अभिलेख विभिन्न रूपों में प्राप्त हुए हैं। उदाहरणार्थ शिलाओं पर स्तम्भों पर धातुओं पर प्रस्तर पट्टो पर स्तूपों अथवा मन्दिरों की दिवारों आदि पर। अभिलेखों की भाषा, ब्राह्मी, खरोष्ठी, अरमाईक, प्राकृत, पालि, संस्कृत, देवनागरी, तमिल, मलयालम, कन्नड़ व तेलुगू आदि है।

1.4 शब्दावली

धातु–फलक – धातु का सपाट टुकड़ा

जय–पत्र – न्याय संबंधी अभिलेख

प्रशस्यिाँ – राजाओं की प्रशंसा में लिखे गये अभिलेख

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न –अभिलेखों के महत्व को रेखांकित करें?

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे उत्तर के लिए 1.2

स्मारक की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

1.0उद्देश्य

1.1प्रस्तावना

1.2स्मारक

1.3सराश

1.4शब्दावली

1.5बोधप्रश्न

1.6बोधप्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इतिहासनिर्माणमेंस्मारकोंकाअत्यधिकमहत्वहै।साथही धार्मिक एवंसांस्कृतिकदृष्टिसेभीस्मारकोंकामहत्वहै।स्मारकों के अन्तर्गतसभीप्रकार के भवन, मूर्तियाँ, इमारतें, कलात्मकवस्तुएँ, मंदिर, विहार, स्तूपआदि रखेजासकतेहैं, जोभीवस्तुस्थान, कला, इतिहासकास्मरणदिलातीहो, स्मारक के अन्तर्गत रखीजासकतीहैं

1.1 प्रस्तावना

स्मारककिसीभीदेश के इतिहासकाजीवंतप्रारूपवर्तमानमेंहोतीहै। अध्ययन की सुविधा के लिए स्मारकों के दोभागों (1) देशीस्मारक व (2) विदेशीस्मारकमेंबाँटाजासकताहै।इनस्मारकोंसेइतिहासकीप्रमाणिकजानकारीप्राप्तह ोतीहै।सिन्धुसभ्यतासेलेकर 100 वर्षपूर्वतक के सभीवास्तु, कलाकोस्मारकों के अंतर्गत रख के समझा जासकताहै।

1.2 स्मारक

स्मारक–प्राचीनभारतीय स्मारकभीप्राचीनभारतीय साहित्य की भाँतिभारतीयों केउच्चआध्यात्मिक एवंलौकिकचिन्तन के परिचायकहैं।उन्होंनेजहाँ

साहित्य मेंअपनीलेखनी एवंभाषा के माध्यम सेअपनेअनुभव, चिन्तन एवंभावनाओं को साकारबनायाहै, वहींछेनी, कन्नी एवंतूलिकाजैसेनिर्जीवसाधनों की सहायतासेप्रस्तुतप्राचीनभारतीय स्मारकभीमनीषीभारतीय वास्तुकारों, शिल्पकारों एवं चित्रकारों केगहनचिन्तनजन्य हृदय के उद्गारों को मूकभाषामेंप्रस्तुतकरतेहैं।दोनोंही क्षेत्रोंमेंभारतीयों की आध्यात्मिक एवंबौद्धिक चेतनापराकाष्ठापरपहुँचीहै, परन्तुजहाँ साहित्य निराकारहोतेहुए मुखरहै, वहींस्मारकसाकारहोतेहुए मौनहैं।भारतीय स्मारकोंमेंप्रासाद कम, परन्तुमन्दिर, विहार, आराम, स्तूप, गुहायें, स्तम्भ, मूर्तियाँ, तोरण, चित्रइत्यादिप्राचीनभारतीय संस्कृति के विकास की अविकलपरम्पराप्रस्तुतकरतेहैं।

हड़प्पा एवंमोहनजोदड़ों सेप्राप्तअवशेष आर्यों के पूर्वउच्चभारतीय सभ्यताकास्वरुपस्थापितकरतेहै। यत्र–तत्रप्राप्तमिट्टी के बर्तन, पत्थर, धातु एवंमिट्टी की लघुमूर्तियाँ, आभूषणें केटुकड़े, प्रसाधन की सामग्रीआदिनिरन्तरप्रगतिशीलभारतीय सभ्यता की अविच्छिन्नकड़ियाँ हैं। ऐतिहासिककालमेंप्राचीनभारतीय स्मारकों की अटूटश्रृंखलाअशोक के समय के प्रारंम्भहोतीहैजबकला के क्षेत्र मेंपाषाणका प्रयोग प्रारम्भहुआ।कुछप्राचीनकला–कृतियाँ अपने युग के धार्मिकविचारों की प्रतीकहैं, जैसेसिन्धु–घाटी की खोदाईसेप्राप्तशिव की मूर्तियाँ, तत्कालीनसमाजमेंप्रचलितशिव–पूजा की तथागुप्तकाल की वैष्णव, शिव, बौद्ध एवंजैनमूर्तियाँ तत्कालीन धार्मिकसहिष्णुता की द्योतकहैं।विभिन्नकालों की मूर्तियों एवं चित्रों के अध्ययन सेकाल एवंस्थान–विशेष की वेश–भूषा, धार्मिकप्रथाओं एवंसामाजिकरीति–रिवाजों की जानकारीहोतीहै।विभिन्न शैलियों एवंस्वरुपोंमेंप्रस्तुतकला–कृतियाँ सांस्कृतिकउत्थान एवंपतन की कहानीकहतीहैं। इनके अध्ययन से ऐतिहासिककाल–क्रम को समझने मेंभीसहायतामिलतीहै।

अशोककालीनस्मारकोंमेंउसकेप्रस्तर–स्तम्भ, उन पर की गईपालिशतथा उनके शीर्षउत्कृष्टकला के उदाहरणहैं।साथहीउसकेस्तुपभीअपनीविशालतामेंमहान् हैं।कुषाण–काल की गांधार शैली की मूर्तियाँ यूनानी एवंभारतीय कलाकासुन्दरमिश्रणप्रस्तुतकरतीहैं।

यहीकलाक्रमशः अपनेबाह्यपरिधानकापरित्यागकरतेहुए मथुरासेहोतेहुए गुप्तकालमेंसारनाथमेंपहुँचकर न केवल शुद्ध भारतीय हो गईहैं, वरन् भारतीय मूर्तिकलाकासुन्दरतमउदाहरणभीप्रस्तुतकरतीहै।देवगढ़ (झाँसी) तथाभीतरगाँव (कानपुर) के मंदिरगुप्तकालीनवास्तुकला को उजागरकरतेहैं। एलोराकाकैलाशमंदिरअपनेढंग काविश्वमेंबेजोड़ हैं। खजुराहो एवंउड़ीसा के मंदिरभारतीय
स्थापत्य–कलाकासुन्दरउदाहरणप्रस्तुतकरतेहैं।तंजौरकाराजराजेश्वरमंदिरद्रविड़ शैलीकाउत्कृष्टतमस्वरुपउपस्थितकरताहैऔरकला को भीकलात्मक रुप सेसजायेहुए खड़ाहै।कला के क्षेत्र मेंअद्वितीय है।अजन्ता एवंदेश के अन्य अनेकभागोंमेंनिर्मितगुहा–मंदिरअपनेनिर्माताओं की अमरकीर्तिकागुणगानकरतेहैं।दक्षिण–पूर्व एशियामेंबने बौद्ध प्रतिमायेंभारतीय वास्तुकारों एवंपार्वती, गणेश, नन्दीआदि के मूर्तियाँ तथा बौद्ध प्रतिमायेंभारतीय वास्तुकारों एवंशिल्पकारों की देनहैं जो उन दूरस्थ क्षेत्रोंमेंप्राचीनभारतीय संस्कृति के विस्तार की द्योतकहैं।

1.3 सरांश

प्राचीननगरों के उत्खननसेप्राप्तअनेकप्रकारकीकलात्मकवस्तुओंसेसिन्धु–सभ्यतापर, तक्षशिलासेप्राप्तउत्खननसामग्रीसेभारतीय संस्कृतिपरकुषाणवंश के राजाओंतथागांधारकालीनकालपर यथोचितप्रकाशपड़ताहै।स्तूप, चैत्य, विहार, स्तंम्भआदिसेमौर्यकालीनइतिहासतथाझांसाकादेवगढ़ मंदिर व ईंटोसेनिर्मितभिरगांव (कानपुर) कामंदिरगुप्तकालीनइतिहासपरअच्छाप्रकाशडालताहै।

1.4 शब्दावली

स्तूप – बौद्ध स्मारक, जोबौद्ध सामाधियाँ सेसम्बन्धितहोतीहै।

चैत्य – बौद्ध पूजा, स्थल

विहार – बौद्ध भिक्षु–भिक्षुओं के निवास एवं शैक्षणिकस्थल

स्तम्भ – लौह, पाषाणनिर्मित खम्भेजिनपरलेख एवंकालकृतियाँउकेरेजातेथे।

1.5 बोधप्रश्न

प्रश्न (1) स्मारकोंकीविशद् विवेचनाकरें?

(2) इनमेंकौनस्मारकहै?

(I) मूर्तियाँ (Ii) स्तंभ (III) चैत्य, विहार, गुफा (I)(II)(III) सभी

1.6 बोधप्रश्नो के उत्तर

उत्तर (I) उत्तर के लिए 1.2 देखे

उत्तर (II) (IV) सभी

MAAH-107N/MAHY-111

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

इतिहास दर्शन एवं लेखन
सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियां

खण्ड
6

भारतीय इतिहास लेखन की परम्पराएँ

इकाई- 1

विदेशियों के विवरण 195

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 पी0पी0 दूबे — कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार — निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (1,2,3 खंड)
प्रो0 एम0पी0 अहिरवार — आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी इकाई–1,2,3,4,5 (5खंड)
डॉ. रमाकान्त सिंह — सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (4,6 खंड)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव — आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, म0जो0फुले रु0वि0वि0, बरेली (इकाई 1–30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष – 2022

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–2810 03

विदेशियों के विवरण

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2विदेशियों के विवरण

1.3 सरांश

1.4शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

भारत विषयक ज्ञान के लिए विदेशी यात्रियों के वृतांत एवं वर्णन अत्यंत महत्वपूर्ण है, इसकी महत्ता को देखते हुए, इसे इतिहास के साक्ष्य के रूप में रखा गया है। जिन विषयों में भारतीय साक्ष्य मौन है, उनके विषय में विशेष रूप से इन विदेशी विद्वानों के वृतांतों से जानकारी मिलती है। अतः इसका अध्ययन आवश्यक है।

1.1 प्रस्तावना

समय—समय पर अनेक विदेशी विद्वानों ने भारत की यात्रा की व अपने संस्मरण लिखे। यद्यपि विदेशी यात्रियों में से अनेक के संस्मरण नहीं है तथा किंवदन्तियों से प्रभावित होने के कारण कहीं—कहीं पूर्णतया प्रामाणिक नहीं है किन्तु फिर भी इन वृतांतों से भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रकाश डाला है।

1.2 विदेशियों के विवरण

(क) यूननी लेखक– भारत की भाँति यूनान भी प्राचीन सभ्यता का एक प्रमुख केन्द्र था और दोनों देशों के निवासी एक–दूसरे के विषय में जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा रखते थे। चूँकि यूनानियों में तथ्याधारित मानव क्रिया–कलापों के वर्णन करने की कला अपेक्षाकृत अधिक विकसित थी, फलतः भारत के सम्बन्ध में ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त करने का उनका प्रयास छठीं शताब्दी ई0पू0 से निरन्तर बना रहा। यूनानी विद्वानों एवं इतिहासकारों ने अपने व्यक्तिगत ज्ञान, अनुभव एवं अध्ययन के आधार पर भारत के विषय में बहुत–कुछ लिखा है जिनमें अधिकांश बातें निराधार एवं मनगढ़न्त हैं। अतः इनका प्रयोग आलोचनात्मक दृष्टि से समझ–बूझ कर ही करना होता है। काल–क्रम के अनुसार समस्त यूनानी लेखकों को तीन वर्गों में बाँटा गया हैः–

(क) **सिकन्दर के पूर्ववर्ती लेखक**, (ख) **सिकन्दर के समकालीन लेखक एवं** (ग) **सिकन्दर के परवर्ती लेखक।**

(क) **पूर्ववर्ती लेखक**– सिकन्दर के पूर्ववर्ती लेखकों में सर्वप्रथम नाम स्काइलैक्स का आता है। यह एक यूनानी सैनिक था जिसे ईरान के सम्राट दारयवौष ने सिन्धु–प्रदेश की जानकारी प्राप्त करने के लिये भेजा था। फलतः उसकी जानकारी उस क्षेत्र तक ही सीमित है। दूसरा यूनानी लेखक हिकेटियस मिलेटस था। इसने स्काइलैक्स के विवरण एवं ईरानियों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अपने ग्रन्थ 'भूगोल' की रचना की, जो मात्र सिन्धु प्रदेश से सम्बन्धित है। इन दोनों ही के विवरण भारतीय इतिहास की दृष्टि से नगण्य है। ई0 पू0 पाँचवी शताब्दी के मध्य में हिरोडोटस ने, जिसे 'इतिहास का पितामह' कहा जाता है, 'हिस्टोरिका' नामक अपने ग्रन्थ की रचना की जिसमें उसने पश्चिमोत्तर भारत की जातियों का उल्लेख किया है। परन्तु सुना–सुनाया होने के कारण यह विवरण भी अपूर्ण एवं अप्रामाणिक ही है। टेसियस ने जो ईरानी दरबार में राजवैद्य था, भारतीयों एवं ईरानियों से तथ्य संग्रह कर अपने ग्रन्थ 'इण्डिका' की रचना की थी जो अब अलभ्य है,

और परवर्ती लेखों में उसके उद्धरण ही प्राप्त होते है। इसका विवरण भी अतिरंजित एवं अविश्वसनीय ही है, क्योंकि उसके ग्रन्थ में भारत के सम्बन्ध में अनेक किस्से–कहानियाँ ही हैं।

(ख) **समकालीन लेखक–** सिकन्दर अपनी ऐतिहासिक दिग्विजय–यात्रा में अपने साथ सैनिकों के अतिरिक्त लेखकों एवं विद्वानों को भी लेकर आया था, जिन्होंने उसकी दिग्विजय–यात्रा एवं युद्धों का विस्तृत विवरण लिपि–बद्ध किया था। सिकन्दर की भारतीय विजय एवं युद्ध की कठिनाइयों का विवरण किसी भी भारतीय गन्थ में नही मिलता है, अतः यदि इन यूनानी विद्वानों ने भी उनका उल्लेख न किया होता तो एक बहुत बड़ी एवं महत्वपूर्ण जानकारी से विश्व वंचित रह गया होता। दुर्भाग्यवश इन लेखकों के ग्रन्थ नष्ट हो गये, परन्तु परवर्ती लेखकों ने इनके ग्रन्थों के उद्धरण अपनी पुस्तकों में सुरक्षित रख छोड़ा है जो हमारे बड़े काम के हैं। इन समकालीन लेखकों में निआर्कस, ओनेसाइक्रिटस तथा एरिस्टोब्यूलस के नाम उल्लेखनीय है। निआर्कस सिकन्दर के जहाजी बेड़े का सेनापति था। इसके लेखों के अवशेष स्ट्रैबो एवं एरियन के ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। ओनेसाइक्रिटस भी जहाजी बेड़े से ही सम्बन्धित था। इसने सिकन्दर की जीवनी लिखी है। इसके विवरण भी महत्वपूर्ण है यद्यपि उनमें किम्वदन्तियों का ही बाहुल्य है। एरिस्टोब्यूलस ने 'युद्ध का इतिहास' लिखा है। एरियन एवं प्लूटार्क के विवरण इस ग्रन्थ से पर्याप्त प्रभावित हैं।

(ग) **परवर्ती लेखक**–उपर्युक्त लेखकों ने भारत एवं सिकन्दर की भारतीय दिग्विजय के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री संगृहीत कर दी थी, अतः परवर्ती लेखकों को इन विषयों पर लिखने के लिये प्रचुर साधन उपलब्ध रहे। साथ ही उन्होंने अपने अध्ययन एवं अनुभव का भी आश्रय लिया, फलतः भारत के सम्बन्ध में इन विद्वानों के लेख अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इन परवर्ती लेखकों में मेगास्थनीज का स्थान सर्वोपरि है। यह यूनानी सम्राट् सेल्युकस का राजदूत था जो कई वर्षों तक चन्द्रगुप्त मौर्य के राज–दरबार में रहा। यह भारतीय घटनाओं एवं तथ्यों का प्रत्यक्षदर्शी था जिनका उल्लेख

इसने अपने ग्रन्थ 'इण्डिका' में किया था। दुर्भाग्यवश यह ग्रन्थ भी कालान्तर में विलुप्त हो गया, परन्तु परवर्ती लेखकों ने इस ग्रन्थ के अनेक अंश उद्धरण के रुप में अपने–अपने ग्रन्थों में सुरक्षित रख छोड़े हैं, जिनका संग्रह सर्वप्रथम डॉ0 स्वानवेक ने प्रकाशित किया और मैक क्रिंडल ने बाद में उसका अंग्रेजी अनुवाद किया। चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में इसकी उपयोगिता सर्वमान्य है।

चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी बिन्दुसार के दरबार में दो यूनानी राजदूत आये जिनमें डीमेकस सीरिया के यूनानी सम्राट् का प्रतिनिधि एवं डायोनीसियस मिस्र के यूनानी सम्राट् टालमी का राजदूत था। डीमेकस एवं डायोनीसियस के विवरण भी नष्ट हो चुके हैं। और जो उद्धरण के रुप में उपलब्ध भी हैं वे बहुत महत्व के नहीं हैं। स्ट्रैबो ने तो मेगास्थनीज एवं डीमेकस को झूठा एवं अविश्वसनीय ठहराया है। इसमें सन्देह नहीं कि इनके विवरण जगह–जगह अशुद्ध, अतिंरजित एवं अज्ञानपूर्ण हैं। सम्भव है कि भिन्न दृष्टिकोण के कारण भारतीय विशेषतायें उनकी समझ में न आई हों या उनहें असत्य सूचनायें प्राप्त हुई हों। पेट्रोक्लीज ने, जो सेल्यूकस एवं ऐण्टियोकस प्रथम के अधीन साम्राज्य के पूर्वी प्रान्त का शासक था, भारत एवं अन्य देशों के सम्बन्ध में जो विवरण प्रस्तुत किया है उसे स्ट्रैबों ने अपेक्षाकृत सत्य माना है।

ईसा की प्रथम शताब्दी एवं उसके बाद के लेखकों में स्ट्रैबों का स्थान बहुत ऊँचा है। यह एक आलोचनात्मक इतिहासकार था जिसने समस्त पूर्ववर्त ग्रन्थों के अध्ययन एवं देश–विदेश की अपनी यात्रा के अनुभव के आधार पर अपने ग्रन्थ 'भूगोल' की रचना की, जिसमें भौगोलिक बातों के अतिरिक्त विभिन्न देशों की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक अवस्थाओं के भी विवरण प्रस्तुत हैं। अतः भारत सम्बन्धी वर्णन की उपयोगिता असंदिग्ध है। प्लिनी के बृहत् ग्रन्थ 'प्राकृतिक इतिहास' के छठें अध्याय में भारतवर्ष का वर्णन है जो मेगास्थनीज की 'इण्डिका' पर आधारित है। 'पेरिप्लस ऑफ दि एरिथ्रियन सी' के यूनानी लेखक ने भारतीय समुद्रतट की यात्रा करते हुए उसके व्यापार एवं बन्दरगाहों का विवरण प्रस्तुत किया है। ईसा की दूसरी

शताब्दी के रोमन लेखक टालेमी ने 'भूगोल' पर एक ग्रन्थ लिखा जो त्रुटिपूर्ण होते हुए भी बड़ा उपयोगी है। इसका भारत विषयक मानचित्र बड़ा अशुद्ध है।

ईसा की दूसरी शताब्दी में एरियन ने सिकन्दर के समकालीन लेखकों एवं मेगस्थनीज के वर्णनों के आधार पर 'इण्डिका' एवं 'सिकन्दर का आक्रमण' नामक दो पुस्तकों की रचना की। इसका दृष्टिकोण भी स्ट्रैबो की भाँति पर्याप्त आलोचनात्मक है। इसी काल में एरियन ने भी पूर्ववर्ती ग्रन्थों के आधार पर अपना ऐतिहासिक संग्रह तैयार किया जिससे भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में अनेक आवश्यक बातों की जानकारी प्राप्त होती है।

उपुर्यक्त सभी लेखकों द्वारा प्रस्तुत सामग्री का आलोचनात्मक अध्ययन भारतीय इतिहास के प्रणयन में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

चीनी लेखक—यूनानी लेखकों की भाँति चीनी लेखकों के भारत—विषयक विवरण भारतीय इतिहास की अमूल्य निधि है। चीन ने भारतीय बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था, अतः उनमें अपने धर्म के प्रवर्तक एवं उनसे सम्बन्धित स्थानों तथा धर्म के विषय में जानकारी प्राप्त करने की उत्कण्ठा स्वाभाविक थी। फलतः समय—समय धर्म के जिज्ञासु विद्वान मार्ग की दूरी एवं कठिनाईयों की अवहेलना कर अपने धर्म के मूल देश की यात्रा पर निकल पड़ते रहे। यद्यपि उनकी यात्रा का मूल उद्देश्य बौद्ध धर्म सम्बन्धी ज्ञानार्जन एवं बौद्ध तीर्थ—स्थानों का दर्शन ही रहा, परन्तु अपने दीर्घ भ्रमण—काल में वे अपनी आँखें एवं ज्ञान—कपाट खुला रखते रहे जिसके फलस्वरुप उनके यात्रा— विवरण में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक बातों का उल्लेख होना विषयान्तर नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त अनेक दूसरे चीनी विद्वानों ने अपने देश मे ंरहते हुए भी अपने उपास्यदेव की सभ्यता, संस्कृति एवं धर्म के विषय में अनेक बहुमूल्य उल्लेख किये है। बहुत—से बौद्ध ग्रन्थ, जो अपने मूल भारतीय रुप में विलुप्त हो गये हैं, आज भी चीनी अनुवाद में उपलब्ध हैं, जो धर्म सम्बन्धी मामलों में उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करते हैं। महत्त्वपूर्ण चीनी लेखकों के विवरण निम्नांकित हैं—

फाह्यान– फाह्यान भगवान बुद्ध एवं बौद्ध धर्म के विषय में अपनी ज्ञान–वृद्धि हेतु 399 ई0 में चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन–काल में भारत आया था और इसने अपने 15–16 वर्षों के निवास–काल में विभिन्न बौद्ध धर्म–ग्रन्थों का अध्ययन एवं अनुशीलन किया। इसने अपने यात्रा–विवरण में देश की धार्मिक अवस्था पर और विशेषतः बौद्ध धर्म पर प्रचुर प्रकाश डाला है। यद्यपि प्रसंगवश इसने तत्कालीन अन्य बातों का यत्र–तत्र अवश्य उल्लेख किया है, परन्तु ऐसे विवरण अति न्यून है। यह भी आश्चर्य की ही बात है कि जिस गुप्त–सम्राट् की छत्र–छाया में यह इतने दीर्घकाल तक निर्विघ्न घूमता रहा उसका इसने नामोल्लेख तक नहीं किया है। परन्तु फिर भी उसने तत्कालीन भारतीय राजनीति, समाज, धर्म एवं समृद्धि का जो भी उल्लेख किया है वह प्रत्यक्षदर्शी वर्णन होने के कारण बहुत उपयोगी एवं सप्रमाण है।

ह्ेनसांग–'यात्रियों में राजकुमार' समझा जाने वाला चीनी यात्री हेनसांग 629ई0 में सम्राट् हर्षवर्द्धन के शासन–काल में भारत आया और लगभग 15 वर्षो के प्रवास के उपरान्त स्वदेश लौटा था। इसने समस्त उत्तरी भारत तथा दक्षिण में महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश से लेकर काँची तक की यात्रा की, विभिन्न बौद्ध विहारों और विशेषकर नालन्दा विहार में अनेक वर्षों तक बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया एवं स्थानीय लोगों की सहायता से अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार कराई। देश के अनेक राजाओं का आतिथ्य स्वीकार किया तथा बड़े–बड़े विद्वानों का साहचर्य–लाभ उठाया। हर्ष ने इसे राजकीय सम्मान प्रदान किया, कन्नौज के बौद्ध धर्म– सम्मेलन में इसने महायान सम्प्रदाय की श्रेष्ठता स्थापित की और प्रयाग के दानोत्सव में भाग लेने के पश्चात् सम्राट् हर्ष से ससम्मान विदा लेकर बहुसंख्यक प्रस्तुकों के साथ यह स्वदेश वापस लौटा। यद्यपि फाह्यान की ही भाँति इसका मुख्य उद्देश्य भी अपनी धर्म–पिपासा को शान्त करना था, परन्तु उसने अपने यात्रा–विवरण में देश की राजनीतिक, समाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक अवस्थाओं का भी विशद चित्रण उपस्थित किया है, जो देश के इतिहास के साधन के रुप में बहुत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

हूली–यह हेनसांग का मित्र था जिसने उसकी जीवनी लिखी है। हेनसांग से प्राप्त भारत विषयक जानकारी पर आधारित यह ग्रन्थ उतना ही महत्वपूर्ण है जितना हेनसांग का यात्रा–विवरण।

इंत्सिंग–यह चीनी यात्री 673 ई0 में भारत आया था और 695 ई0 तक भ्रमणशील रहा। इसके ग्रन्थ में भी समकालीन इतिहास के लिए प्रचुर सामग्री है परन्तु उसका विवरण हेनसांग की भाँति सांगोपांग एवं विशद नहीं हैं।

चीनी ऐतिहासिक पुस्तकों में वहाँ की कुछ भ्रमणशील जातियों का, जो कालान्तर में भारत आईं, विवरण मिलता है, जो भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि तैयार करने में सहायक है। चीन के 'डाटेड रेकार्ड्स' की परम्परा अनेक भारतीय तिथियों के निर्धारण में सहायक हुई है।

तिब्बती लेख– तिब्बती ग्रन्थों में भारत–सम्बन्धी अनेक उल्लेख हमारे बड़े काम के हैं। बारहवीं शताब्दी के लामा तारानाथ के ग्रन्थों में बौद्ध धर्म के अतिरिक्त भारतीय नरेशों की वंशावलियों एवं उपलब्धियों का भी विवरण दिया गया है। बौद्ध होने के कारण उसके लेख प्रायः पक्षपातपूर्ण हो गये हैं, अतः उनका उपयोग करते समय सतर्क रहना पड़ता है।

अरब लेखक–अरब देशों के साथ भारत का व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध अति प्राचीन है। अरब सौदागर अपने व्यापारिक कामों के निमित्त निरन्तर भारत आते–जाते रहते थे। इन्हीं में एक सौदागर सुलेमान भी था जिसने अनेक बार की यात्रा की थी। इसके ग्रन्थ 'सलसिलातुत्त्वारीख' (851ई0) में भारत सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं। इस ग्रन्थ के दूसरे भाग को अबू जईद ने पूरा किया। इनका विवरण सुनी–सुनाई बातों पर आश्रित है। इब्न खुरदाद्ब ने 900 ई0 के आस–पास अपने ग्रन्थ 'किताबुलमसालिक वल् ममालिक' (राजमार्गों एवं राज्यों की पुस्तक) की रचना की थी। इस ग्रन्थ में अनेक भारतीय स्थानों एवं नगरों का उल्लेख है। अरब लेखकों में अल् मसूदी का उँचा स्थान है। यह बहुश्रुत था तथा इसने अनेक देशों की यात्रा की थी और तथ्य–निरुपण में इसका दृष्टिकोण आलोचनात्मक

रहता था। इसने दसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में अपने ग्रन्थ 'मुरुजुल् जहव' (स्वर्ण की रम्य क्षेत्र) की रचना की थी जिसमें उसने तत्कालीन भारतीय राजनीति, समाज और धर्म की चर्चा की है। वह अपने ग्रन्थ का भारत सम्बन्धी अध्याय इस कथन के साथ प्रारम्भ करता है कि यह जन–मान्य धारणा है कि भारत पृथ्वी का वह भाग है जहाँ अति प्राचीन काल में शान्ति एवं ज्ञान की प्रधानता थी वहाँ पूर्वकाल में राजतन्त्र की स्थापना हुई। इस देश में ब्राह्मण अपनी कुलीनता एवं सदाचार के कारण पूज्य माने जाते हैं। अबू इसहाक अल् इस्तखरी ने अनेक देशों की यात्रा की थी। इसने दसवीं शताब्दी के मध्य में अपने ग्रन्थ 'किताबुल् अकालीम' (जलवायु की पुस्तक) की रचना की। इसने इस पुस्तक में सिन्ध एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्र का एक मानचित्र भी दिया है तथा सिन्धु एवं भारत के प्रसिद्ध नगरों का नामोल्लेख भी किया है। इस गन्थ में राष्ट्रकूटों एवं प्रतीहारों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी संगृहीत है। इब्न हौकल ने अपने ग्रन्थ 'इश्कालुल बिलाद' या 'किताबुल' मसालिक वल् ममालिक' (राजमार्गों एवं राज्यों की पुस्तक की रचना 976 ई0 में की थी। इस ग्रन्थ में अनेक देशों के साथ सिन्ध एवं हिन्द का भी उल्लेख किया गया है और सिन्ध का एक मानचित्र भी दिया है। सिन्ध एवं हिन्द का भौगोलिक एवं राजनीतिक विवरण महत्वपूर्ण है। अल् इदरीसी का ग्रन्थ 'नुजतुल् मुश्ताक' भूगोल से सम्बन्ध रखता है। इसकी रचना सिसली में बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई थी। इसमें अन्य देशों के अतिरिक्त सिन्ध एवं हिन्द के भौगोलिक विवरण तथा भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक अवस्था आदि का अच्छा उल्लेख हुआ है। रशीदुद्दीन ने अबू रेहान अल् बेरुनी की भारत विषयक प्रसिद्ध पुस्तक को अपने ग्रन्थ 'जामिउत् तवारीख' की रचना का आधार बनाया है।

अबू रेहान अल् बेरुनी–यह ख्वारिजम (खीवा) का निवासी था जिसे गजनी के सुल्तान महमूद ने 1017 ई0 में वहाँ के शासक के साथ बन्दी बनाया था और बन्धक के रुप में भारत भेज दिया था। यह प्रारंभ से ही कला एवं विज्ञान का प्रेमी था और ज्योतिष में इसकी विशेष रुचि थी। भारत

आने पर उसने भारतीय ग्रन्थों के अध्ययन के लिए न केवल संस्कृत सीखी, वरन् भारतीय पण्डितों से सम्पर्क स्थापित कर भारतीय धर्म, दर्शन, योग, ज्योतिष, साहित्य, पुराण, शास्त्र, वर्ण–व्यवस्था, व्रत, पर्व, सम्वत्सार, कल्प, चतुर्युग, नारायण, कृष्ण, महाभारत–युद्ध, ग्रह, नक्षत्र, सौरमण्डल, तीर्थ–यात्रा, दान, ग्राह्य एवं अग्राह्य भोजन, विवाह, विधि–व्यवहार आदि विषयों का विधिवत् ज्ञानार्जन किया। उसने अपनी पुस्तक में हिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का चित्र उपस्थित किया है और पूर्ण समीक्षा के उपरान्त ही तथ्यों को ग्राह्य या अग्राह्य माना है। ऐसा करने में उसने कभी आग्रह या दुराग्रह की शरण नहीं ली है। फलतः ग्यारहवीं शताब्दी में भारत की सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्थिति के परिचय के लिए अल् बेरुनी का ग्रन्थ अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुतः भारत के सम्बन्ध में इतना विशद विवरण न तो अल् बेरुनी के पूर्व और न तो बाद में ही किसी भी विदेशी लेखक ने लिपिबद्ध किया है।

1.3 सरांश

भारत में विभिन्न कालखंडों में विदेश से कई विद्वान आते रहे, उनकी जीवनी संस्समरण विवरण याथावृतांत तत्कालीन समय के ज्ञान के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य हो जाती है। इन विदेशियों में यूनानी, चीनी, तिब्बती, अरबी, फारसी, एवं मध्य एशिया के विभिन्न विद्वनों को रखा जा सकता है। भारतीय इतिहास के तिथि क्रम को निर्धाति करने में विधि के वृतांतों का विशेष महत्व है।

1.4 शब्दावली

वृतांत – जीवनी, आँखों देखा सत्य

संस्मरण –देखे गये यथार्थ को स्मरण कर लिखना या दोहराना

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न–अरब यात्रियों के विवरणों का वर्णन करें?

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे 1.2

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAAH-107N/MAHY-111

इतिहास दर्शन एवं लेखन सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियां

खण्ड

7

भारतीय इतिहास लेखन की परम्पराएँ

इकाई- 1

मौखिक परंपरा की विवेचना 207

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 पी0पी0 दूबे	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (1,2,3 खंड)
प्रो0 एम0पी0 अहिरवार	आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी इकाई–1,2,3,4,5 (5खंड)
डॉ. रमाकान्त सिंह	सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (4,6 खंड)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, म0जो0फुले रु0वि0वि0, बरेली (इकाई 1–30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष – 2022

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–2810 03

मौखिक पंरपरा की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 मौखिक पंरपरा

1.3 सरांश

1.4शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

प्राचीन काल में जब लेखन कला विकसित नहीं हो पाई थी, उस समय पठन–पाठन श्रुति परंपरा के आधार पर चलती थी, गुरू शिष्य को सूत्र रूप में सम्पूर्ण ज्ञान कंठस्थ करा देता था। समय के साथ लेखन कला एवं लिपि का विकास होता गया, किन्तु अधिकांश जन–जीवन इससे दूर ही रहा। अतः इस दशा में प्राचीन ज्ञान–विज्ञान की अमूल्य स्रोत श्रुति परंपरा अथवा मौखिक परंपरा में हौ जो विरासत के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरि होती रहती है।

1.1 प्रस्तावना

मौखिक इतिहास को समने के लिए भारतीय इतिहास परंपरा को समझना आवश्यक है। भारत धर्मप्रधान श्रुति पंरपरा का देश है शताब्दियों तक मंत्रद्रष्टा ऋषि–मुनियों की वाणी मौखिक रुप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रवाहमान रही। साथ ही साथ भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की आधारशिला बनी रही। वैदिक ग्रन्थ अथर्ववेद में पुराण और इतिहास का

साथ–साथ उल्लेख इंगित करता है कि श्रुति अथवा मौखिक पंरपरा के रुप में कहीं न कहीं इतिहास अवश्य विद्यमान था। वैदिक वाग्मय में गाथा–नाराशंसी आख्यान, आख्यिका प्रभृति पद प्राचीन मौखिक इतिहास के ही विभिन्न रुप में प्रकट होते है। इस मौखिक इतिहास का पुराणों की भांति महत्व दृष्टिगत होता है।

1.2 मौखिक पंरपरा

भारत धर्मप्रधान श्रुति पंरपरा का देश है शताब्दियों तक मंत्रद्रष्टा ऋषि–मुनियों की वाणी मौखिक रुप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रवाहमान रही। साथ ही साथ भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की आधारशिला बनी रही। वैदिक ग्रन्थ अथर्ववेद में पुराण और इतिहास का साथ–साथ उल्लेख इंगित करता है कि श्रुति अथवा मौखिक पंरपरा के रुप में कहीं न कहीं इतिहास अवश्य विद्यमान था। वैदिक वाग्मय में गाथा–नाराशंसी आख्यान, आख्यिका प्रभृति पद प्राचीन मौखिक इतिहास के ही विभिन्न रुप में प्रकट होते है। इस मौखिक इतिहास का पुराणों की भांति महत्व दृष्टिगत होता है।

वेदकालीन मौखिक इतिहास की पंरपरा भृगु, आंगिरस, सूत्र के रुप में शताब्दियों तक अस्तित्व में रही और तो और उत्तरवैदिक काल में पुराणोंतिहास की मौखिक पंरपरा दृढ़ आधार प्राप्त की। तैत्तरीय आरण्यक से ज्ञात होता है कि अनेक मौखिक रुप से पुराण और इतिहास की पंरपराएँ इस काल तक प्रचलित हो गयी थी। वेदकालीन अनेक मिथकीय कथाएँ लोकप्रचलित कथा–कहानियों से ही ग्रहण की गयी प्रतीत होती है। कालान्तर में आख्यायिका, वंश, वंशानुचरित के रुप में यही क्षेत्रीय एवं लोक साहित्य के अनेक विषय पुराणों में समाहित हुए। बौद्ध जगत में जातक कथाएँ इसी मौखिक पंरपरा का निदर्शन कराती है। स्पेन्सर हार्डी के अनुसार रामायण एवं महाभारत की भाँति जातक कथाओं का भी प्रचलन होता रहता था। लोग बड़ी श्रद्धा एवं उत्सुकता से इसका श्रवण करते थे। छत्तीसगढ़ की पाण्डवान गायिका तीजनबाई की रामकथा का प्रदर्शन उसी प्राचीन मौखिक पंरपरा की

निरंतरता का बोध करता हैं। इसी प्रकार ग्वालियर क्षेत्र में प्रचलित लाँगुरिया लोकगीत ग्वालियर क्षेत्र के समसामयिकी इतिहास के धार्मिक–आर्थिक पक्ष पर पड़ने वाले प्रकाश के आलेक में समसामयिक इतिहास –लेखन को स्पष्टतः प्रभावित करता है।

आज क्षेत्रीय तथा लोक साहित्यों के माध्यम से वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन हेतु जनमानस को समझने की चेष्टा की जा रही है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दलित एवं सर्वहारा वर्ग के योगदान कों आंकने की प्रवृत्ति बढ़ी है। प्राचीन इतिहास के साथ –साथ विशेष कर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उपाश्रयी वर्ग के महत्व को उजागर करने का प्रयास चल रहा है। बाल्मिकी, महाभारत मे ंवर्णित अनेक जनजातियों तथा नारियों, अनेक छोट–छोटे क्षेत्रीय शासकों, युनान्तरकारी महापुरुषों के अतिरिक्त लक्ष्मीबाई, झलककारी बाई, उदादेवी, सुहेलदेव आदि के महत्व को उजागर कर इतिहास के पृष्ठों पर महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जा रहा है जो निश्चित ही क्षेत्रीय एवं लोक संस्कृति की देन है।

मौखिक इतिहास का सीधा संबंध लोक संस्कृति से है। लोकगीतों एवं कथाओं में लेखक अज्ञात ही होते हैं , उनका कोई प्रामाणिक मूलपाठ नहीं मिलता तथापि उनमें स्थानीय एवं सांस्कृतिक तत्व अवश्य मिलते है। सत्यता तो यह है कि कोई भी लोककथानक तभी तक जीवित रहता है जब तक वह मौखिक परंपरा में विद्यमान रहता है। लोक साहित्य के प्रखण्ड विद्वान सिजविल के अनुसार यदि कोई लोकगाथा को लिपिबिद्ध करता है तो वह उसे मारने या नष्ट करने में योगदान देता है। गूगर के अनुसार मौखिक परंपरा किसी गाथा की जीवन्तता की प्रधान कसौटी है। इसी जीवन्तता का लाभ इतिहासकारों को उठाना चाहिए जो क्षेत्रीय तथा लोक साहित्य में विखरी पड़ी है।

विभिन्न क्षेत्रों की लोकपरम्पराओं, राजस्थानी कवियों की चारण–गाथाओं, लोकगीत, फडो एवं कहावतों–पहेलिओं आदि में अनेक ऐतिहासिक तथ्य, तत्व, घटनाएँ आदि अन्तर्निहित होती है। इस प्रकार की

मौखिक परम्पराओं ने सम्यक एवं अनुशीलन से स्थानीय एवं आचंलिक अथवा क्षेत्रीय इतिहास पर प्रर्याप्त प्रकाश पड़ता है। क्षेत्रीय एवं लोक साहित्य में वर्णित लोक में राजा हरिश्चन्द्र, भागीरथी, राम, कृष्ण, परशुराम, भीष्म तथा आख्यानों के माध्यम से गंधर्वसेन, जगदेव परमार, गोगाजी चौहान, तेजाजी, जैसे लोकनायक आज भी ऐतिहासिक छाप छोड़ते हैं। बुन्देलों हरबोलों के मुख से ''खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी'' का आख्यान समक्ष प्रकट हुआ। फड़ो के माध्यम से भवानी चारणी एवं चन्द्रावतों का इतिहास ज्ञात होता है। राजा भरथरी का इतिहास लोक–नाट्यका उदाहरण है। चारणों ने ढोला–मारु की ऐतिहासिक प्रणय गाथा को प्रकट किया है।'' कहाँ राजा भोज वहाँ गंगू तेली। की कहावत राजा भोज, कलचुरी शासक गांगेयदेव तथा चालुक्य नरेश तैलप पर प्रभाव डालता तथा दोनों पर राजा भोज की विजय की स्मृति को दर्शाता है। इसी प्रकार राजा हरिश्चन्द्र बनल हवन जैसे वक्तव्य समाज में राजा हरिश्चन्द्र के दान की परपरा को सुरक्षित रखें हुए हैं। सूफी लोक परंपराएं भी इन साहित्यों पर प्रकाश डालती हैं। लोरिक एवं चन्दा की क्षेत्रीय कथाएं इतिहास की पुनर्संरचना में योग देती वहीं पद्मावती अलाउद्दीन की कथा भी जीवित स्मृति ही है जो मौखिक परम्परा साहित्य तक में मौजूद है। मालवा क्षेत्रों में 'होलकर मर्दाना तुझे कौन कहे काना' के माध्यम से जसवन्त राव होलकर की प्रशस्ति गान की जाती है, जो मराठा इतिहास का प्रमुख स्तम्भ रहा है।

बुन्देलखण्ड की ग्रामीण महिलाओं ने लोक कथाओं के माध्यम से ही हरदौल के त्याग एवं बलिदान की गाथा जन–जन तक पहुंचाई। आल्हा–ऊदल के लोकप्रचलित गीत उसकी वीरता तथा पराक्रम को उद्घाटित कराते हैं। एक ओर इतिहासकारों का एक वर्ग उज्जैन के राजा एवं विक्रम संवत के प्रचलनकर्ता राजा विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता को सिद्ध करने के लिए प्रमाण ढूढ़ रहे हैं वहीं राजा विक्रम की नगरिया चले अइयों री जैसे लोकगीत विक्रमादित्य को जीवित रखे हुए हैं। बिहार के कुवँरसिंह का नाम बड़ी श्रद्धा एवं सम्मान से लिया जाता है जो जनचेतना

का परिचायक है। इसी प्रकार स्वतंत्रता संघर्ष में चित्रू पाण्डेय, मंगल पाण्डेय, बिरसा मुण्डा, भगतजी, सिद्ध–कान्हू, रामोजी के पराक्रम क्षेत्रीय तथा लोक साहित्य की धरोहर है जो इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं।

मौखिक परम्पराएँ इतिहास लेखन को अनेक प्रकार से संपन्न कर सकती है। इस आधार पर किए गये लेखन से स्थानीय एवं क्षेत्रीय इतिहास तथा लोक संस्कृति एवं साहित्य का पर्याप्त परिज्ञान होता हैं। इतिहास में समय एवं क्षेत्र का जो अन्धकार दिखता है, उसे आलोकित करने में मौखिक इतिहास सार्थक परिणाम दे सकता है। इस प्रकार की सूचनाएं समग्र इतिहास में जो समय एवं क्षेत्र का खालीपन आ जाता है उसे भरने में सहायक सिद्ध होती है। मौखिक परंपरा से जुड़ने के कारण इतिहास वस्तुनिष्ठ होने के साथ–साथ भावनिष्ठ भी हो जाता है क्योंकि लोकसंस्कृति एवं साहित्य जिस जन चेतना से जुड़ी होती है उसे इन्ही मौखिक परंपरा माध्यम से जाना जाता है। भारतीय इतिहास में जिन युगों को अन्धकार काल कहा जाता है यदि क्षेत्रीय एवं लोक साहित्य के आधार पर उसका अध्ययन किया जाए तो कुहासा छँट सकता है।

मात्र ऐतिहासिक ही नहीं वरन् सामाजिक एवं आर्थिक परंपराएं सहायक सिद्ध होती हैं। क्योंकि लघु एवं क्षेत्रीय आधार पर सामाजिक जीवन के जो भी पहलू मौखिक रुप से लोक परम्परा में प्रचलित होते हैं वह जनता द्वारा भोगे गये यथार्थ के प्रतिनिधि होते हैं। यद्यपि मौखिक इतिहास सम्पूर्ण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नहीं रखता, तथापि इतना निश्चित है कि कई बार इतिहास के लिए प्राथमिक सामग्री प्राप्त हो जाती है। ये स्रोत कई बार इतिहास को ऐसी सूचनाएं प्रदान कर जाते हैं जो अन्य साधनों से ज्ञात नहीं होती तथा जो प्रामाणिक इतिहास की कड़ियों को जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। क्षेत्रीय तथा लोकसाहित्य से लोकसंस्कृति की मूलभूत विचार एवं अनुभुति के साथ–साथ रागात्मकता का भी ज्ञान होता है, इस कारण इतिहासकार उसे खारिज करते है जो उचित नहीं है। सभी मौखिक परंपरा पर आंख मूंद कर विश्वास भी नहीं करना चाहिए तथा जो ऐतिहासिक हैं वो

प्रामाणिक स्रोतों का निर्माण करते दिखते हैं। राजस्थान की पंचायतों द्वारा लिखित दस्तावेज जो प्राचीन काल से चले आ रहे है वे पंरपरा, रीतिरिवाजों के उद्घाटन के प्रमुख स्रोत के रुप में स्थापित हैं।

क्षेत्रीय तथा लोक साहित्य की एक बड़ी सीमा यह है कि आगे समय या क्षेत्र में परिवर्तन के साथ–साथ प्रक्षिप्तांशों की भरमार हो जाती है जिससे प्रामाणिकता, ऐतिहासिकता नष्ट हो जाती है। इस हेतु इतिहासकारों को चाहिए कि वे मौखिक परम्परा से संबंधित क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों तथा उससे संबंधित क्षेत्रीय इतिहास की प्रवृतियों पर ध्यान दे तथा परम्परा से सुने हुए पात्रों , घटनाओं तथा तथ्यों के प्रमाणीकरण के लिए पाण्डुलिपियों, चारणों–भाँटों पण्डों–गौरों की पोथियों का सहारा ले। पूर्व की लोक परंपरा का ज्ञान होने से प्रक्षिप्तांशों को हटाना संभव होगा। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय इतिहास लेखनों को क्षेत्रीय, सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों से मुक्त रहना चाहिए।

धीरे–धीरे भौतिकतावाद के बढ़ते चलन तथा प्रौद्योगिकी के असंतुलित विकास के कारण लोक संस्कृति एवं साहित्य का क्षरण एवं मौखिक परंपराओं का तेजी से विलोपन हो रहा है। अतः आवश्यकता है कि सुधीजन इस क्षेत्र में आगे बढ़े एवं प्राचीन कथानकों, जनश्रुतियों, लोकगीतों के संरक्षण हेतु सुदूरवर्ती, ग्रामों में प्रवेश कर उसे खोजों तथा लिपिबद्ध कर उसे नष्ट होने से बचाएँ। बिहार के एक शैक्षणिक संस्थान द्वारा लोकगीतों के माध्यम से छठ पूजा की ऐतिहाकिता खोजने का प्रयास किया तथा उसने इसकी प्राचीनता गुप्तकाल से स्थापित की। पुराणों की कथाएँ भी इसी ओर इंगित कराती है। इस प्रकार यह सौर पूजा के उद्भव पर प्रकाश डालता है, निश्चित ये लोक कथाएँ एवं गीत जो क्षेत्रीय तथा लोक साहित्य का आधार है। अपने प्रचलन क्षेत्र में ऐतिहासिक परिवेश को उजागर करने में समर्थ सिद्ध होती है। इन्हें अनुमानित तिथि देते हुए सतर्कतापूर्वक विम्बप्रतीको की विवेचना कर अंचल विशेष का समसामयिक इतिहास लिखा जा सकता हैं।

भारतीय इतिहास के लेखन एवं परीक्षण हेतु क्षेत्रीय एवं लोक साहित्य जो अधिकांशतः मौखिक परंपरा के आधार पर महत्व के हैं, स्रोत के रुप में उनकों नकारा नहीं जा सकता। इतिहासकार मौखिक स्रोत को सदैव सन्देह की दृष्टि से देखता है वह भूल जाता है कि लिखित रुप में जो ऐतिहासिक सामग्री आज उपलब्ध है वह अधिकांशत मौखिक परंपरा का ही अंग रहा है। वेदों का सन्दर्भ बताता है कि भारतीयों ने दक्षता के साथ स्मृति पर आधारित पद्धति का विकास कर लिया था। माण्डूक्य उपनिषद इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। आज भी राजस्थान, उत्तराखण्ड, हिमांचल, बिहार, मध्यप्रदेश, हरियाणा, छत्तीसगढ़ और अन्य क्षेत्रों में ऐसा अपार साहित्य है जो छपा नहीं है किन्तु जिसने अनेक पीढ़ियों तक श्रोताओं का मनोरंजन किया। इन लोक गाथाओं में बहुधा ऐसी अनेक ऐतिहासिक घटनाओं और नायकों का उल्लेख मिलता है जिनका मुद्रित जगत में तो उल्लेख नहीं मिलता और यदि मिलता है तो लोक साहित्य तक ही सीमित है। राष्ट्रीय मुख्यधारा में उसे स्थान नहीं मिला, किन्तु जिस समाज ने उसे अपने साहित्य में स्थान दिया हे, सुरक्षित रखा है, उनका उससे गहरा सम्बन्ध है।

1.3 सरांश

भारतीय इतिहास के लेखन एवं परीक्षण हेतु क्षेत्रीय एवं लोक साहित्य जो अधिकांशतः मौखिक परंपरा के आधार पर महत्व के हैं, स्रोत के रुप में उनकों नकारा नहीं जा सकता। इतिहासकार मौखिक स्रोत को सदैव सन्देह की दृष्टि से देखता है वह भूल जाता है कि लिखित रुप में जो ऐतिहासिक सामग्री आज उपलब्ध है वह अधिकांशत मौखिक परंपरा का ही अंग रहा है। वेदों का सन्दर्भ बताता है कि भारतीयों ने दक्षता के साथ स्मृति पर आधारित पद्धति का विकास कर लिया था। माण्डूक्य उपनिषद इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। आज भी राजस्थान, उत्तराखण्ड, हिमांचल, बिहार, मध्यप्रदेश, हरियाणा, छत्तीसगढ़ और अन्य क्षेत्रों में ऐसा अपार साहित्य है जो छपा नहीं है किन्तु जिसने अनेक पीढ़ियों तक श्रोताओं का मनोरंजन किया। इन लोक गाथाओं में बहुधा ऐसी अनेक ऐतिहासिक घटनाओं और नायकों का उल्लेख मिलता है

जिनका मुद्रित जगत में तो उल्लेख नहीं मिलता और यदि मिलता है तो लोक साहित्य तक ही सीमित है। राष्ट्रीय मुख्यधारा में उसे स्थान नहीं मिला, किन्तु जिस समाज ने उसे अपने साहित्य में स्थान दिया हे, सुरक्षित रखा है, उनका उससे गहरा सम्बन्ध है।

1.4 शब्दावली

श्रुति परंपरा –सुनकर याद करना और फिर उसे सुनाना।

गाथा नारांशसी –वैदिक काल में वीर पुरूषों एवं राजाओं की वीर गाथा।

लोक संस्कृति –साधारण जन की व्यावहारिक जीवन एवं परंपरा को लोक संस्कृति

कहा जाता है।

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न –मौखिक परंपरा की विशद् व्याख्या करें?

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर देखे 1.2

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्।।

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAAH-107N/MAHY-111

इतिहास दर्शन एवं लेखन सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियां

खण्ड

8

भारतीय इतिहास लेखन की परम्पराएँ

इकाई- 1

दरवारी साहित्य का ऐतिहासिक महत्व 217

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डा0 पी0पी0 दूबे	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	आचार्य इतिहास एवं प्रभारी निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हिमांशु चर्तुवेदी	आचार्य, इतिहास विभाग दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागा अध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
श्री सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो0 संतोषा कुमार	आचार्य इतिहास एवं प्रभारी निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. संतोष चतुर्वेदी	एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास, महामती प्राणनाथ पी0जी0 कालेज, मऊ चित्रकूट
डॉ0 बालकेश्वर	सह आचार्य, इतिहास राजकीय महाविद्यालय, जखनी, वाराणसी
डॉ0 तनवीर हुसैन	सहायक आचार्य, इतिहास गॉधी–फैज–आम महाविद्यालय, शाहजहॉपुर
डॉ0 उमाशंकर गुप्ता	सह आचार्य, इतिहास राजकीय महाविद्यालय, चन्दौली
डॉ0 पंकज कुमार झॉ	सह आचार्य इतिहास राजकीय महाविद्यालय, चन्दौली

सम्पादक

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15,16,17,18,19,20,21,22,23,24,25,26,27,28,29,30)

समन्वयक

श्री सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

2021 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विष्वविद्यालय, प्रयागराज 2021

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–2810 03

दरबारी साहित्य का ऐतिहासिक महत्व

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2दरबारी साहित्य

1.3 सरांश

1.4शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस ईकाई में हम दरबारी साहित्य का अध्ययन करेंगे। दरबारी साहित्य से आशय इस साहित्य से है, जो राजाओं–महाराजाओं के दरबार में रहकर शासकीय प्रश्रय से लिखी जाती थी, जिसमें तत्कालीन समय के राजा के शौर्य वर्णन मिलता है, किन्तु प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन सांस्कृति जीवन का भी वर्णन प्राप्त हो मात्रा है। इतिहास के साक्ष्य के रूप में दरबारी साहित्य का बड़ा महत्व है।

1.1 प्रस्तावना

दरबारी साहित्य से तात्पर्य राजाओं अथवा सुल्तानों के राजदरबार में रहते अथवा उनका संरक्षण प्राप्त करते हुए साहित्य अथवा इतिहास का लेखन। दरबारी साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। प्राचीन भारत के अन्तर्गत यह चरित काव्य एवं प्रशस्तियों के रुप में दिखता है। सल्तनत काल तथा मुगल काल में सुल्तानों का स्पष्ट संरक्षण एवं आदेश से भी इनके सृजन का उल्लेख प्राप्त होता है।

1.2 दरबारी साहित्य

दरबारी साहित्य से तात्पर्य राजाओं अथवा सुल्तानों के राजदरबार में रहते अथवा उनका संरक्षण प्राप्त करते हुए साहित्य अथवा इतिहास का लेखन। दरबारी साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। प्राचीन भारत के अन्तर्गत यह चरित काव्य एवं प्रशस्तियों के रुप में दिखता है। सल्तनत काल तथा मुगल काल में सुल्तानों का स्पष्ट संरक्षण एवं आदेश से भी इनके सृजन का उल्लेख प्राप्त होता है।

भारतीय इतिहास लेखन, इतिहास पुराण की भारतीय परंपरा की कड़ी के रुप में 7वीं शताब्दी में बाणभट्ट कृत हर्षाचरित से आगे बढ़ता हुआ दृष्टिगत होता है। हर्षचरित सहित अब ऐसे अनेक काव्य लिखे जाने लगे थे, जिन्हें संस्कृत साहित्य के इतिहास मे चरित काव्यों की संज्ञा प्रदान की गई है। ये काव्य दरबार में रहने वाले कृपापात्र, राज्याश्रयी, बहुत हद तक वन्दनकार और उपकृत कवियों द्वारा समसामयकि शासकों के सीमित ऐतिहासिक वृन्तों पर ही लिखे गए। तथापि ऐसा नहीं है कि इनके वृत अनैतिहासिक और असत्य है। अभिलेखों एवं विदेशी साक्ष्यों से उनको पूर्ण समर्थन प्राप्त होते हैं तथापि इन रचनाओं में तिथियों के उल्लेख का अभाव स्पष्टतः दिखता है।

हर्षचरित के अतिरिक्त अन्य दरबारी साहित्य के अन्तर्गत प्राकृत भाषा में वाक्यकृत गउडहों पद्मगुप्त रचित नवसाहसांक चरित, विल्हण्कृत विक्रमाकदेव चरित, संन्ध्याकर नन्दी कृत रामपालचरित और जयानकभट्ट कृत पृथ्वीराजविजय। वस्तुत 7वीं शताब्दी से जब ऐतिहासिक काव्य लिखे जाने लगे तथा लेखन का लक्ष्य समकालीन इतिहास का वर्णन करना था विवरण देना ही निश्चित हो गया, तब भी कालक्रम का तथा क्रम्यवार घटनाओं के सम्बन्ध में उल्लेख करना आवश्यक नहीं माना गया। यह भी आवश्यक नहीं माना गया है कि सम्बद्ध दरबारी साहित्य के ऐतिहासिक नायकों में सम्पूर्ण इतिहास का विवरण दिया जाये। बल्कि अनके ऐतिहासिक जीवन के कुछ मानों मात्र का ही विवरण दिया गया है। वैसे देखा जाये तो ये गाथा–नाराशंसी में ही स्थान हैं। हर्षचरित हमें हर्षकालीन राजनैतिक,

भौगोलिक एवं धार्मिक इतिहास पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध कराता है। यद्यपि तिथि नहीं दी गई तथापि हेनसांग तथा आर्यमंजूश्रीमूलकल्प से उसके विवरण की पुष्टि होती है। ग्रहवर्मा, शशांक, भास्करवर्मन जैसे शासनों, हर्ष की चतुसमुद्राधिपति, सकलराजचक्र चूड़ामणि, महाराजधिराज परमेश्वर जैसी उपाधियों, उसकी दिग्विजय यात्रा के प्रस्थान तथा राजश्री की खोज का विवरण अन्य साक्ष्यों के तुलनात्मक अध्ययन से सही सिद्ध होता है।

गउडबाहो में कन्नौज नरेश यशोवर्मा के गौड़ अर्थात् उत्तरी बंगाल, मगध आदि विजयों का उल्लेख है, जो अन्य साक्ष्यों से ज्ञात नहीं होता है लेकिन जब नालन्दा क्षेत्र से यशोवर्मा के अभिलेखों की प्राप्ति हुई तो स्पष्ट हो गया कि यशोवर्मा ने इन क्षेत्रों पर अधिपत्य स्थापित किया था। उसके सेनापति पुत्र मालाद का अभिलेख भी इस तथ्य की पुष्टि करता है। गउडवहों का सम्पूर्ण ऐतिहासिक विवरण यशोवर्मा की दिग्विजय मात्र तक सीमित है तथा ज्ञात होता है कि विन्ध्याचल पर्वत स्थित देवी का दर्शन कर वह मगध एवं गौड़ को जीता। इस विजय के बाद वह हिमालय की तलहटी होते हुये कन्नौज लौटा। यदि इन विवरणों की राजतरंगिणी तथा तत्कालीन चीनी तथा कोरियाई यात्रियों के विवरण से संगति बैठाई जाय तो यशोवर्मा के सन्दर्भ में प्रभूत सूचनाएं प्राप्त होता है तथा एक उज्जवल एवं व्यापक फलक का निर्माण हो जाता है। यद्यपि गउडवहों में ऐतिहासिक सामग्री कम है लेकिन यशोवर्मा को इतिहास में वहीं स्थापित एवं ध्यानार्षित कराती है।

दरबारी साहित्य की सारणी में अगल साहित्य नवसाहसांकचरित है जिसकी रचना धारा के सिन्धुराज के दरबारी कवि पद्मगुप्त परिमल ने की। इस ग्रन्थ में उज्जयिनी नगरी का विस्तृत वर्णन मिलता है। उज्जयिनी को चर्चा के बाद नायक सिन्धुराज का विवरण मिलता तथा ज्ञात होता है कि नवसाहसांक तथा कुमारनारायण उसकी उपाधियाँ थी। एक नाटक में उसने द्वारा वराहलीला के अभिनय का संकेत मिलता है जो उसे विष्णुभक्त सिद्ध करता है। इन सबके अतिरिक्त ज्ञात होता है कि उसने कुनतल के राजा तैलप II, सत्याश्रय, को पराजित किया। ये रचना सिन्धुराज का वंश परिचय

देने के साथ–साथ उसके धार्मिक जीवन एवं कृत्यों पर प्रकाश डालती है। उसका कोई अभिलेख नहीं मिला ताकि इस साहित्य की पुष्टि संपुष्टि हो सके तथापि नवसाहसांक चरित नहीं रचा जाता तो सिन्धुराज इतिहास के पन्नों से ओझल रहता।

बिल्हण कृत विक्रमांकदेव चरित्र में काव्यकार नायक विक्रमादित्य पष्ठ हेतु जो कुछ लिखता है, वह ऐतिहासिक तथ्यों की कसौटी पर कसने से बहुत कुछ असत्य जान पड़ता है किन्तु उसकी यह असत्यता ही तत्कालीन चालुक्य इतिहास की सत्यता को पूरक रुप में उपस्थित करती है। जिसने अभाव में उस इतिहास की वास्तवकिता धूमिल ही रही होती। यदि यह ग्रन्थ नहीं लिखा जाता था न मिलता तो विक्रमांकदेव का इतिहास समसामयिक अभिलेख से ही पूरी तरह प्रकाशित नहीं हुआ होता। इससे उसके विशाल सम्राज्य विस्तार, व्यापक विजयों, उदान्त एवं अनुकरणीय प्रशासनिक कार्यो तथा विद्या और संस्कृति के उन्नयन वाले कार्यो की लम्बी सूची मिलती है वही दूसरी ओर उसके अत्याचारों का भी वर्णन है। नैतिक दृष्टि से सही न होते हुए भी बिल्हण की इस रचना में सभी विवरण पूर्णतः ऐतिहासिक है।

सन्ध्याकरनंदी की कृत रामपाल चरित दरबारी साहित्य की प्रमुख रचना है। काव्यकार ने रामपाल के जीवन के उत्तरार्थ में अनेक राज्यों–राजाओं पर विजयों का उल्लेख अवश्यकिया, जिसके फलस्वरुप वह केवल पालसम्राज्य के गौरव को एक बार पुनः लौटाने में सफल हुआ दिखाई देता, अपितु समकालीन अन्तराज्यीराजनीति और सम्बन्धों में अग्रणी स्थान रखने वाला सिद्ध होता है। इसमें राजनीतिक एवं भौगोलिक इतिहास में साथ–साथ के वर्ता में विद्रोह का उल्लेख मिलता जो अन्यत्र नहीं है।

चाहमान इतिहास लेखन में दरबारी साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान हे। जयानकभट्ट कृत पृथ्वीराज विजय, सोमेश्वर कृत ललितविग्रहराज, चन्द्रबरदाई कृत पृथ्वीराज रासों, नयचन्द्रसूरि कृत हम्मीर महाकाव्य, चन्द्रशेखर कृत सुर्जनचरित, जयसिंह सूरी कृत कुमारपाल भूपाल चरित, राजशेखर कृत प्रबन्धकोश तथा मेरुतुंग कृत प्रबन्धचिन्तामणि जैसे ग्रन्थ चौहान–चौलुक्य

इतिहास के निर्माण में महती योगदान प्रदान करते हैं। पूर्वमध्यकालीन इतिहास का लगभग राजस्थान–गुजरात दिल्ली अजमेर का सम्पूर्ण घटनाक्रम इन साहित्यों से प्रचुरता से प्राप्त होता है। राजपूतवंशीय राजाओं के आपसी विवाद के अतिरिक्त इनके निर्माण कार्यो तथा तुर्को से युद्धों की भी सूचना प्राप्त होती है। विदेशी आक्रमणों के हिन्दू संस्कृति पर विनाशक क्रियाकलापों ने भारतीयों के मन में निराशा पतनोन्मुखता और अधःपतन का ऐसा भाव पैदा किया, जिसे उस समय में लेखनों, स्मृतियों, निबन्ध ग्रन्थों व दरबारी साहित्य ने स्पष्टतः उल्लेख किया है। जिसका अन्य स्रोतों में विस्तृत विवरण मिलता है।

इन सब रचनाओं से अलग है कल्हणरचित राजतरंगिणी। दरबारी साहित्यों में जहाँ केवल एक–एक शासनों के ही ऐतिहासिक क्रियाकलाप आदि उकेरे गए हैं वहीं राजतरंगिणी एक ऐसा विशाल ग्रन्थ है जिसमें कश्मीरी शासकों की लगभग 6–7 शताब्दियों का इतिहास संकलित है। श्रीहर्ष ने दरबारी कविक कल्हण ने इसकी रचना जयसिंहII के काल में पूरी की वह घटनाओं का वर्णन एक न्यायधीश की तरह करता है।

दरबारी इतिहास लेखन का क्रम सल्तनत काल में थी गतिमान रहा। शासकों ने स्पष्ट आदेश देकर रचनाकारों को अपनी उपलब्धियों को लिखने हेतु राजदरबार में रखा ताकि इतिहास लेखन हो सके। 13वीं शताब्दी की रचनाओं में नासिरुद्दीन के काल में मिन्हाजुद्दीन सिराज की कृति तबकाते–नासिरी प्रमुख है। इस रचना में इस्लाम के उदय से लेकर दिल्ली सल्तन के प्रथम सुल्तान इल्ततुमिश के कुछ उत्तराधिकारियों तक इतिहास वर्णित है लेकिन तिथि क्रम नहीं दिया गया। प्रारंभिक तुर्क आक्रमणों एवं तुर्की राज्य स्थापना पर प्रकाश डालने वाला प्रमुख स्रोत है। जियाउद्दीन बरनी की तारीख फिरोजशाही बलबल से लेकर फिरोजशाह तुगलक के समय तक शासनों की नीति एवं उनकी विजय नीतियों का वर्णन करती है। इस काल का दरबारी साहित्य राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं भौगोलिक तथा

आर्थिक सभी पहलुओं को उद्घाटित कर सल्तनतकालीन इतिहास पर प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध करता है।

मुगलकाल में तो शासकों द्वारा अपने शासन काल का अधिकृत इतिहास लिखवाने की परंपरा आरंभ हुई और इस प्रकार दरबारी इतिहास की रचना आरंभ हुई। जिसका श्रेय अबकर को प्रदान किया जाता है। अबुलफजल कृत अकबरनामा इसमें अग्रणी है। इसमें प्राचीन काल से अकबर तक का इतिहास वर्णित है। यह दरबारी इतिहासकार अतिश्योक्तिपूर्ण ढंग से सम्राट के गुणों की प्रशंसा करता तथा उसका पूरा ध्यान राजदरबार एवं शासकवर्ग पर ही केन्द्रित है। अकबर के शासन काल में अन्य रचनाएँ भी लिखी गयी जिसकी सहायता से दरबारी इतिहासकार के विवरण की सत्यता को परखा जा सकता है।

अकबर द्वारा आरंभ की गई परंपरा को जहाँगीर और शाहजहाँ ने बनाये रखा। उनके समय में भी दरबारी साहित्यकारों ने विभिन्न साहित्य लिखने के साथ–साथ ऐतिहासिक रचनाएं भी लिखी। जो राजनैतिक के साथ–साथ सामाजिक–धार्मिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति पर प्रचुर प्रकाश डालती है। अशोक के धर्म समन्वय तथा जहाँगीर की न्याय की जंजीर की सूचना इन्ही दरबरी साहित्य से ही मिलती है, जिसकी पुष्टि विदेशी जातियों का विवरण भी करता है।

इस प्रकार उपरोक्त दरबारी साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इन साहित्यों ने अनेक शासकों को उनके कार्यो सहित इतिहास के पन्नों में दर्ज कराया। यद्यपि इससे इनका ऐतिहासिक महत्व समाप्त नहीं होता बल्कि अन्य साक्ष्यों के साथ इनको तथ्यों की कसौटी पर कसा जाये तो प्रामाणित सूचना देते भी दृष्टिगत होते हैं।

1.3 सरांश

राजाओं द्वारा अनुदानित लेखन कार्य दरबारी साहित्य के अंतर्गत आते है। दरबार के विद्वान, कवि अपने राजा के प्रशंसा में साहित्य की रचना करते

थे, बदले में राजा उन्हें उचित सम्मान, पुरस्कार, वृत्ति आदि प्रदान करता है। प्राचीन काल से लेकर पूर्वमध्यकाल, मध्यकाल एवं ब्रिटिश काल तक ऐसी रचनाओं को सहजता से देखा जा सकता है। इतिहास निर्माण के स्रोतों के रूप में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

1.4 शब्दावली

वीरगाथा– वीर पुरूषों का शौर्य, पराक्रम वर्णन – वीरों की गाथाएँ

राज्याश्रय – राजा द्वारा अनुदानित

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न – दरबारी साहित्य से आप क्या समझते है?

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे उत्तर के लिए 1.2

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAAH-107N/MAHY-111

इतिहास दर्शन एवं लेखन सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियां

खण्ड 9

इतिहास लेखन मे गवेषणा

इकाई- 1

गवेषणा का अर्थ, अवधारणा एवं सीमाएं 227

इकाई- 2

गवेषणा एवं उनके कार्य 241

इकाई- 3

साक्ष्य विश्लेषण के आधार तत्व 254

इकाई- 4

इतिहास में तथ्य 266

इकाई- 5

इतिहास में वस्तुनिष्ठता 280

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 पी0पी0 दूबे	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (1,2,3 खंड)
प्रो0 एम0पी0 अहिरवार	आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी इकाई–1,2,3,4,5 (5खंड)
डॉ. रमाकान्त सिंह	सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (4,6 खंड)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, म0जो0फुले रु0वि0वि0, बरेली (इकाई 1–30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष – 2022

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–2810 03

इकाई 1

गवेषणा का अर्थ, अवधारणा एवं सीमाएँ

इकाई की रूपरेखा-

1:0 उद्देश्य

1:1 प्रस्तावना

1:2 गवेषणा का सामान्य अर्थ और परिभाषा

1:3 गवेषणा की अवधारणा

1:4 गवेषणा के विविध स्तर

1:4.1 नवीन तथ्यों की गवेषणा

1:4.2 उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या

1:4.3 सिद्धान्तों के परिवेश में तथ्यों का निरूपण

1:5 इतिहास-लेखन में गवेषणा का महत्व

1:6 ऐतिहासिक गवेषणा की सीमाएं

1:7 बोध-प्रश्न

1:8 सन्दर्भ-ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इतिहास चिन्तन और इतिहास-लेखन बड़ा ही कठिन विषय है और ऐतिहासिक गवेषणा इतिहास-लेखन की आधारशिला है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेगें कि –

- गवेषणा क्या है या शोध किसे कहते हैं?
- गवेषणा की आधुनिक अवधारणा क्या है तथा विज्ञान ने इसे किस तरह प्रभावित किया है?
- गवेषणा के विविध सोपान/चरण कौन-2 से हैं?
- इतिहास-लेखन में इसकी क्या भूमिका होती है?
- गवेषणा के कार्य में शोधार्थी को किन-किन सावधानियों का ध्यान रखना चाहिए?

1.1 प्रस्तावना

मानव शुरू से ही जिज्ञासु प्राणी रहा है। क्या, क्यों, कैसे उसके मस्तिष्क में हमेशा उमड़ते रहे, जिससे दर्शन, विज्ञान आदि का विकास सम्भव हुआ। कारणात्मक सम्बन्धों को जानने की उत्कृष्ट अभिलाषा ने गवेषणा की सुव्यवस्थित पद्धति को जन्म दिया। आज प्राकृतिक पद्धति को जन्म दिया। आज प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, इतिहास आदि अनुशासनों में गवेषणा सुस्थापित हो चुकी है। ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक अवधारणा सवर्था वैज्ञानिक विचारधारा की देन है। ऐतिहासिक गवेषणा इतिहास-शोध का ही पर्यायवाची है। इसे इतिहास-लेखन का आधार स्तम्भ माना जाता है। यह वह क्रिया है जिसके द्वारा किसी नवीन विचार या ज्ञान विस्तार के लिए कुछ नवीन प्रयास किये जाते हैं। यह एक प्रयास है जिसके द्वारा सुसंगठित, सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्धता के चरणों को ध्यान में रखते हुए नवीन तथ्यों की खोज की जाती है या पूर्व ज्ञात तथ्यों के सम्बन्ध में नवीन अवधारणायें प्रतिपादित की जाती हैं। गवेषणा की प्रक्रिया के तीन चरण होते हैं,

जिनमें नवीन तथ्यों की गवेषणा प्रथम चरण है। उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या दूसरा तथा सिद्धान्तों के परिवेष में तथ्यों का निरूपण क्रमशः तीसरा चरण है। इस इकाई में गवेषणा के विविध पक्षों से आपका परिचय कराया गया है।

1.2 गवेषणा का सामान्य अर्थ और परिभाषा

सामान्यतया ज्ञान की किसी विशिष्ट शाखा में जिज्ञासा रखते हुए इस दिशा में खोज द्वारा उपलब्ध होने वाली सामग्री का क्रमशः परीक्षण तथा समीक्षा ही गवेषणा है। अनुसंधान, अन्वेषण, गवेषण, शोध अथवा रिसर्च आदि शब्द गवेषणा के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होते हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से अनुसंधान शब्द 'अनु' तथा 'संधान' शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ है विशिष्ट लक्ष्य को सम्मुख रखकर उसकी पूर्ति के लिए दिशा-विशेष में कार्य करने के लिए तत्पर रहना। दूसरे शब्दों में अनुसंधानकर्ता तथ्यों की स्थापना के लिए निरन्तर शोध-कार्य में संलग्न रहता है। 'अन्वेषक' से अभिप्राय है- किसी विशेष इच्छा से प्रेरित होकर, इससे सम्बद्ध चिन्हों के अनुसार लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना। गवेषणा में भी खोज की इच्छा ही व्यक्त होती है।

यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ में भारतीय संस्कृति वनों तथा पर्वतों में फल-फूल रही थी। पशुपालन आर्यो का एक मुख्य व्यवसाय था। गोचारण बालकों और प्रौढ़ों की एक प्रमुख क्रिया थी। वन में गायें बहुत दूर-दूर तक चली जाती थीं तथा संध्या-समय उन गायों को घर लाने के लिए उनकी व्यापक खोज होती थी। इस क्रिया को प्राचीन भारतीय साहित्य में 'गवेषणा' नाम से पुकारा गया। गोधूलि-बेला, गोपाल, गवेषणा आदि हिन्दी के शब्दों में यही 'गो' शब्द प्रधान है। वर्तमान संदर्भ में 'गवेषणा' शब्द का प्रयोग किसी वस्तु, पदार्थ अथवा किसी नितान्त नवीन तथ्य की खोज के लिए किया जाता है। 'शोध' के अन्तर्गत किसी अज्ञात तथ्य से सम्बद्ध बिखरी हुई सामग्री की खोज तथा उसके परिष्कार अथवा शोधन का अर्थ निहित है। अंग्रेजी का रिसर्च (Research) शब्द भी गवेषणा

का पर्याय है। वस्तुतः सर्च (search) तथा अंग्रेजी के 'रि' (Re) उपसर्ग से इस ओर पुनः प्रवृत्त होने का भाव व्यक्त होता है अर्थात् उपलब्ध सामग्री का पुनः अनुशीलन एवं सर्वेक्षण अनुसंधानकर्ता का दायित्व है। इस प्रकार सूक्ष्म अन्तर होने पर भी इन्हें पर्यायवाची शब्दों के रूप में ग्रहण करना ही उचित होगा।

गवेषणा अथवा शोध को विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। 1931ई0 में अमेरिकन इतिहास परिषद के अध्यक्षीय भाषण में कार्ल बेकर ने कहा था कि इतिहासकार ऐतिहासिक गवेषणा में उन्हीं ऐतिहासिक प्रतिमानों को पा सकता है जो उसके समाज ने पाने के लिए सिखाया है। वह केवल उन्हीं तथ्यों का चयन करता है जिन्हें उसका समाज महत्वपूर्ण बताता है (जी. सी. पाण्डेय, पृष्ट-222)। ऐतिहासिक गवेषणा में अतीत के अन्तर्निहित ऐसे ही प्रतिमानों की गवेषणा इतिहास करता हैं। कार्लबेकर के उक्त विचार का खण्डन करते हुए बर्नहीम लिखते हैं कि शोध स्वयमेव इतिहास नहीं अपितु इतिहासकार द्वारा अपने लक्ष्य तक पहुँचने का साधन तथा प्रक्रिया है। अतएव शोध का अभिप्राय केवल समाज निर्दिष्ट अतीत के अंतर्निहित प्रतिमानों को खोजना ही नहीं, अपितु इसके अतिरिक्त कुछ और भी है (बर्नहीन, रेनियर द्वारा उद्धृत, पृष्ठ-51)।

बेवर ने इतिहासकार और शोधकर्ता में अन्तर बतालाते हुए लिखा है- यदि भाग्य अथवा परिस्थितियों के परिणामस्वरूप कोई इतिहासकार ऐतिहासिक स्रोतों को प्राप्त कर उन्हें प्रकाशित करा देता है तो ऐसे कार्य को शोध की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। उसने एक उदाहरण दिया है- पोगियों ने धूलधूसरित ग्रन्थालयों से अनेक ऐतिहासिक स्रोतों को खोजकर उन्हें प्रकाशित कराया था, परन्तु उन्हें कुशल शोधकर्ता की श्रेणी की अपेक्षा एक महान इतिहासकार की ही श्रेणी मिल पायी थी (रेनियर, पृष्ठ-51) ।

शेक अली ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक इतिहासः उद्देश्य एवं विधि में स्पष्ट किया है कि- ''शोध एक प्रकिया है जिसका अभिप्राय अतीत सम्बन्धी नवीन तथ्यों

को प्रकाश में लाना तथा ज्ञान की सीमा को विस्तृत करना है।'' रेनियर के अनुसार ''शोधकर्ता का उद्देश्य नवीन तथ्यों की खोज करना, नवीन तथ्यों का संशोधन करना तथा नवीन साक्ष्यों के आधार पर अतीत की घटना का यथार्थ एवं परिकल्पनात्मक प्रस्तुतीकरण करना है''। इस प्रसंग में वह पुनः लिखता है- ''नवीन साक्ष्यों के आलोक में घटना के महत्व तथा उसके अर्थ को स्पष्ट करना, घटना के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्तियों को दूर करना तथा तत्कालीन समाजिक मूल्यों के परिवेश में तथ्यों की व्याख्या शोधकर्ता का उद्देश्य होना चाहिए (रेनियर, पृष्ठ-52-53।''

एच.सी. हाकेट के अनुसार- ''शोध का अभिप्राय अतीतकालीन घटना के सम्बन्ध में नवीन सूचना या विचार का प्रस्तुतीकरण होता है (हाकेट-1955, पृ0-10)।'' हेगल ने 'कार्य-कारण की गवेषणा' पर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है कि इतिहास घटनाओं का अन्वेषण और संकलन ही नहीं अपितु उनके भीतर छिपी हुई कार्यकारण की गवेषणा है। कालिंगवुड ने भी घटनाओं के परिवेश में विचार-विधि की गवेषणा को मुख्य कहा है (कालिंगवुड, पृ015)।

उपर्युक्त विमर्श से स्पष्ट होता है कि इतिहासकारों या विद्वानो द्वारा लिखी गयी प्रत्येक बात शोध के अन्तर्गत नहीं आती। शोध-गवेषणा को एक ऐसे क्रिया-कलाप के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उद्देश्य किसी वस्तु के नवीन पक्षों को प्रकाशित करना होता है। साथ ही साथ यह वर्तमान को समृद्ध करती है और इसमें विषय विशेष के सम्बन्ध में क्रमबद्धता एवं व्यवस्था होती है। शेक अली का शोध सम्बन्धी कथन विशेषतया विमर्शनीय है- ''शोध वह क्रिया है जिसके द्वारा किसी के नवीन विचार या ज्ञान-विस्तार के लिए कुछ नवीन प्रयास किये जाते हैं। यह एक प्रयास है जिसके द्वारा सुसंगठित, सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्धता के चरणों को ध्यान में रखते हुए नवीन तथ्यों की खोज की जाती है या पूर्व ज्ञात तथ्यों के संदर्भ में नवीन आवधारणाएं प्रतिपादित की जाती हैं।''

1.3 गवेषणा की अवधारणा

इतिहास में गवेषणा की प्रक्रिया का प्रादुर्भाव अठ्ठारहवीं सदी की देन है। इस प्रक्रिया के शिलान्यासकर्ताओं ने बड़े परिश्रम से वैज्ञानिक विधाओं के आधार पर इतिहास का अध्ययन कर ऐतिहासिक अवधारणा की शिलाशायिका तैयार की। वे इस बात से अवगत थे कि विज्ञान ने भौतिक जगत में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके मानव-जीवन के लिए सुखद परिणाम प्रस्तुत किया है। यदि वैज्ञानिक विधाओं का प्रयोग इतिहास के अध्ययन में किया जाय तो इस विषय के महत्व एवं उपादयेता में अवश्य वृद्धि होगी। विज्ञान की उपयोगिता ने प्रो0 जे.बी. ब्यूरी जैसे इतिहासकारों को इस उद्घोषणा के लिए विवश कर दिया कि "इतिहास विज्ञान है, न कम और न अधिक"। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों ने कठिन परिश्रम से ऐतिहासिक स्रोतों को क्रमबद्ध किया, त्रुटिपूर्ण स्रोतों की व्याख्या कर उनको विश्वसनीय स्वरूप प्रदान किया। इसके लिए इन विद्वानों ने विद्वतापूर्ण ऐतिहासिक विधाओं को प्रस्तुत किया। उनका उद्देश्य त्रुटियों मात्र को दूर करके ऐतिहासिक ज्ञान को सुनिश्चित तथा सुव्यवस्थित अध्ययन द्वारा एक सुदृढ़ शिलाशायिका प्रदान करना था, जो भावी शोधकर्ताओं के लिए सुगम मार्गदर्शन कर सके।

प्रो0 जे0बी0 ब्यूरी के बाद जर्मनी में नेबूर तथा रांके, ब्रिटेन में एक्टन, अमेरिका में कार्ल वेबर तथा फ्रांस में टेने जैसे सुप्रसिद्ध इतिहासकारों ने विद्वता के उच्चतर आदर्श को प्रदर्शित करते हुए न केवल ब्यूरी का समर्थन किया अपितु इन विद्वानों ने इतिहास-विज्ञान के तकनीकि ज्ञान की आधारशिला भी रखी। इन्होनें न केवल ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं का प्रतिपादन किया, बल्कि आलोचना-पद्धति की नवीन विधियों को भी प्रस्तुत किया जिसे ऐतिहासिक अध्ययन की "वैज्ञानिक प्रणाली" की संज्ञा दी जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 19वीं शताब्दी में ऐतिहासिक गवेषणा तथा ऐतिहासिक अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली अपनी परिपक्वता एवं प्रौढ़ता को प्राप्त हुई। बर्नहीम, लांग्लाय, तथा सेनवास ने इतिहास-अध्ययन में वैज्ञानिक प्रणाली के माध्यम से अतीत का अवलोकन किया तथा अपने समसामयिक समाज को अनेक अन्तर्निहित तथ्यों का दिग्दर्शन कराया। बाद में उनके उत्तराधिकारियों ने उसे और परिष्कृत करके यथार्थ तथ्यों के संकलन-कार्य एवं शृंखलाबद्धता को प्रोत्साहित किया। इसी समय में अतीत से समसामयिक समाज के प्रश्नों का उत्तर दिया गया था। परिणामस्वरूप उनके उत्तराधिकारी इतिहासकारों ने न केवल उनकी विधाओं का अनुसरण किया बल्कि समय-समय पर यथोचित उपादानों द्वारा उन्हें परिष्कृत भी किया। इन विद्वानों के समवेत प्रयास से ऐतिहासिक गवेषणा की नवीन विधाएं प्रस्फुटित हुईं तथा अतीत के कोणों में निहित ऐतिहासिक तथ्य ने प्रकाशित होकर इतिहासकारों की अभिरूचि तथा ध्यान को आकृष्ट किया। इस प्रकार यथार्थ तथ्यों का संकलन किया गया तथा इतिहासकारों ने अपने कलात्मक कौशल के प्रयोग से बिखरे हुए तथ्यों को शृंखलाबद्ध कर अतीत का एक सुन्दर, सजीव तथा रोचक चित्र प्रस्तुत किया। उनका एकमात्र लक्ष्य अतीत से समसामयिक समाज के प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करना था।

18वीं तथा 19वीं सदी के इतिहासकारों की रचनाओं में विज्ञान तथा कला का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। झारखण्ड चौबे (2001, पृष्ठ-222) ने अपनी पुस्तक में स्पष्ट किया है कि इतिहास वैज्ञानिक विधा द्वारा तथ्यों का संकलन नहीं, अपितु एक कुशल कारीगर द्वारा निर्मित प्रासाद होता है। प्रत्येक समाज अपने युग के इतिहासकारों से ताजमहल जैसी सुन्दर रचना की अपेक्षा रखता है। आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणा का एकमात्र लक्ष्य इस उद्देश्य की प्राप्ति है।

1.4 ऐतिहासिक गवेषणा के विविध स्तर

ऐतिहासिक गवेषणा के तात्पर्य बोध तथा उसकी आधुनिक अवधारणा से परिचय प्राप्त करने के उपरान्त गवेषणा की कार्य प्रणाली के विविध स्तरों तथा चरणों का परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक है। रेनियर महोदय ने गवेषणा की जो परिभाषा दी है उसके अनुसार हम गवेषणा अथवा गवेषणा की कार्य-प्रणाली को मुख्य रूप से तीन भागों (स्तरों) में बाँट सकते हैं-

1.4.1 नवीन तथ्यों की गवेषणा (Invesgitaion of new data)

1.4.2 उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या (Fresh interpretation of the data already known),

1.4.3 तथ्यों की सहायता से सिद्धान्तों का प्रतिपादन (subordination of the data to a principal),

1.4.1 नवीन तथ्यों की गवेषणा (Invesgitaion of new data): - एच. सी. हाकेट ने (1955,पृ-110) निरूपित किया है कि शोध का अभिप्राय अतीतकालिक घटना के सम्बन्ध में नवीन सूचना, तथ्य तथा विचार का प्रस्तुतीकरण है। भारतीय इतिहास में इस प्रकार के प्रमाण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम जेम्स प्रिंसेप ने ब्राह्मीलिपि को पढ़कर अशोक महान के सम्बन्ध में अज्ञात तथ्यों को प्रकाशित किया। उनके इस अन्वेषण ने सम्राट अशोक के संदर्भ में शोध के लिए अनेक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। सर जॉन मार्शल तथा अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय इतिहास के आगाध समुद्र में प्रवेश कर बहुमूल्य मोतियों को सामाजिक सतह पर लाने में अद्भुत सफलता प्राप्त की। ऐसी प्रक्रिया को शोध की साधारण प्रणाली के अन्तर्गत रखा जा सकता है। उसका एकमात्र उद्देश्य अतीत के उन तथ्यों को प्रकाश में लाना है जिनका ज्ञान समसामयिक समाज को न हो।

1.4.2 उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या (Fresh interpretation of the data already known)- शोध की उक्त प्रथम प्रणाली साधारण एवं सरल है। किन्तु यह दूसरी प्रणाली जटिल है। इसके अन्तर्गत शोधकर्ता ज्ञात तथ्यों का विश्लेषण,

व्याख्या, स्पष्टीकरण, मूल्यांकन तथा आलोचनात्मक परीक्षण करता है। इस प्रणाली में शोधकर्ता अपने पूर्ववर्ती लेखक के विचारों पर मानसिक शक्ति के सहारे अपनी आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए उस लेखक के निष्कर्ष को गलत सिद्ध करके वहाँ अपना विचार प्रस्तुत करता है और अपने विचार को सही मनवाने पर बल देता है। भारतीय इतिहासकारों ने स्मिथ के ''आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया'' तथा 'अकबर द ग्रेट मुगल' में वर्णित विचारों को गलत सिद्ध किया है। उदाहरणार्थ स्मिथ अकबर के दीन-इलाही के विषय में लिखा है कि दीन-इलाही अकबर की बुद्धिमता नहीं अपितु मूर्खता का परिचायक है।

वस्तुतः पाश्चात्य इतिहासकारों ने अपनी भाषा में अपने दृष्टिकोण तथा रूचि के अनुसार भारतीय अतीत का इतिहास लिखा है। जे. एच. मिल कृत, 'हिस्ट्री आफ इण्डिया', तथा मोरलैण्ड लिखित- 'एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इण्डिया' में तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर रखा गया है। इन पाश्चात्य इतिहासकारों का एकमात्र उद्देश्य मुस्लिम शासकों की अपेक्षा भारतीयों के लिए ब्रिटिश शासन की उपादेयता को सिद्ध करना था। भारतीय शोधकर्ताओं ने बड़े परिश्रम से, अतीत का निरूपण, व्याख्या तथा मूल्यांकन किया। प्रो. एस. आर. शर्मा ने (द क्रेसेन्ट इन इण्डिया, पृ0-363)। अकबर की दीन-इलाही नीति की उपादेयता और औचित्य को सिद्ध करते हुए लिखा है कि दीन-इलाही सम्राट अकबर की राष्ट्रीयता सम्बन्धी उच्च कोटि का आदर्श था। प्रो. ईश्वरीय प्रसाद की दृष्टि में दीन-इलाही मातृत्व भाव का परिचायक है। इस प्रकार तथ्यों का व्याख्यात्मक प्रस्तुतीकरण द्वितीय श्रेणी के शोध के अन्तर्गत आता है।

इस प्रणाली में शोधकर्ता ऐतिहासिक गवेषणा की विधाओं का प्रयोग तथ्यों के संकलन, उनके घनिष्ट सम्बन्धों को परखने तथा सामान्यीकरण के सिद्धान्त के आधार पर उनमें सुधार करने में करता है। उसमें ऐसा कर सकने की क्षमता का होना भी आवश्यक है। बेवर ने भी इसे आवश्यक कहा है। पुनः वह अपनी कथा की पुनर्रचना बदले हुए दृष्टिकोण से तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप

करता है। यदि वह इसमें असमर्थ रहा तो उसे सफल इतिहासकार नहीं कहा जा सकता। जब वह अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करने लगे तो वह न सोचने लगे कि अन्यों के निष्कर्षों की तुलना मे उसका निष्कर्ष अन्तिम सत्य है। यदि इस तरह के विचार उसके मन-मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं तो उसे इसका परित्याग करना होगा। तभी वह एक अच्छा गवेषक कहा जा सकता है।

1.4.3 तथ्यों की सहायता से सिद्धान्तों का प्रतिपादन (subordination of the data to a principal)- शोध-प्रक्रिया का यह तीसरा स्तर और अधिक जटिल है। इस स्तर पर पहुँचकर गवेषक दार्शनिक बन जाता है और एक सामान्य नियम और सिद्धान्त के माध्यम से अतीत की घटनाओं का निरूपण तथा उसके व्यवहारिक स्वरूप की व्याख्या करता है। उदाहरणार्थ- हीगल, मार्क्स, काम्टे, क्रोचे, स्पेंगलर, टायनबी, बिको आदि ने अपने विशेष दृष्टिकोण से अतीत का मूल्यांकन किया, अपने दार्शनिक विचार प्रस्तुत किये तथा इतिहास में आदर्शवाद, भौतिकवाद, आध्यात्मवाद, सर्वोत्कृष्टवाद, व्यक्तिवाद तथा चुनौती-प्रक्रिया के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इन विद्वानों की मौलिक रचनाएँ शोध का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत करती है।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक गवेषणा के उक्त तीनों चरण अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। उनकी गुणवत्ता और निष्कर्ष शोधार्थी के श्रम और शोध के प्रति समर्पण पर निर्भर करता है। एक गम्भीर शोधार्थी शोध के आधार पर समपर्ण की असीम सम्भावनाओं को प्रगट करता है।

1.5 इतिहास-लेखन में गवेषणा का महत्व

इतिहास-लेखन में गवेषणा का कार्य बड़ा ही जटिल तथा दुष्कर कार्य है। यह गवेषक से श्रम, समय, धैर्य और कड़ी मेहनत की अपेक्षा करता है। यद्यपि ये सभी चुनौतियाँ शोध-कार्य के मध्य में ही शोधार्थी को उसके कार्य से अलग करने के लिए बाधा डालती है, फिर भी बहुत से उत्साही शोध-विद्वान, संगठन तथा संस्थाएं

हैं जो ऐतिहासिक गवेषणा पर अत्यधिक ध्यान दे रहे हैं। इतिहास में विद्वानों की संख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही है और विद्वान् दिन-प्रतिदिन ऐतिहासिक गवेषणा के कार्य में स्वयं को समर्पित करते जा रहे हैं जो इतिहास-लेखन में गवेषणा की महत्ता का अभिद्योतन करता है। गवेषक, गवेषणा के क्षेत्र में नयी तकनीक का उपयोग कर रहे हैं। उनके विचार दिन प्रतिदन विश्लेषणात्मक तथा समालोचनात्मक होते जा रहे हैं। आधुनिक वैज्ञानिक खोजों ने गवेषणा के निष्कर्षों को वस्तुनिष्ठ बनाने में बड़ा सहयोग दिया है। ऐतिहासिक गवेषणा के कार्य की उपयोगिता तथा महत्ता को ध्यान में रखते हुए विद्वान इसमें दिलचस्पी ले रहें। ऐतिहासिक गवेषणा के कार्य के कुछ महत्वपूर्ण लाभों तथा उपयोगिता को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है- 1- व्यत्तिगत हित, 2- राष्ट्रहित, 3- विश्वहित

1- व्यक्तिगत हित- ऐतिहासिक गवेषणा का बड़ा लाभ उनके लिए हैं जिन्होनें अपनी वृत्ति अभी शुरू नहीं की है। अपना शोध-कार्य समाप्त करने के पश्चात् और ऐतिहासिक शोध का कुछ अनुभव प्राप्त करने के उपरान्त वे किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में रोजगार प्राप्त कर सकते हैं। वे अभिलेखागार अथवा पुरातत्व विभाग आदि में भी नियुक्त हो सकते हैं। एक शोध डिग्री व्यक्ति की प्रतिष्ठा को समाज में बढ़ाती है। एक अच्छा शोध-कार्य योग्य शोधार्थी को मनोवैज्ञानिक तथा मानसिक संतुष्टि प्रदान करता है।

2-राष्टहित– ऐतिहासिक गवेषणा के द्वारा समाज, व्यक्ति की अपेक्षा अधिक लाभ उठाता है। प्राचीन राष्ट्रों के इतिहास की कई कड़ियाँ खो चुकी हैं। इन खाली स्थानों को केवल ऐतिहासिक शोधों से दूर किया जा सकता है। गवेषणा किसी भी राष्ट्र के उत्थान और पतन की तस्वीर प्रस्तुत करती है। कुछ नई खोजों ऐतिहासिक गवेषणा के माध्यम से भी होती हैं। इनमें से कुछ खोजें न केवल व्यक्तियों के लिए महत्वपूर्ण होती है बल्कि पूरी दुनियाँ के लिए होती हैं। हड़प्पा सभ्यता की खोज लोगों के पुराने विचारों को बदल चुकी है। इससे पहले भारतीय इतिहास में वैदिक

युग सबसे प्राचीन था। ऐतिहासिक गवेषणा लोगों में फैली मिथ्या धारणाओं को भी दूर करता है, जो प्रायः औपनिवेशिक इतिहासकारों द्वारा स्थापित की गयी थीं।

3-विश्व हित- ऐतिहासिक गवेषणा पूरे विश्व के लिए लाभप्रद तथा उपयोगी है। ऐतिहासिक शोध विभिन्न राष्ट्रों के मध्य आपसी समझ विकसित करने में मदद देते हैं। संघर्ष के बहुत से कारण होते हैं जो कि विभिन्न बिन्दुओं पर राष्ट्रों को विभक्त करते हैं, इन्हें गवेषणा के माध्यम से दूर किया जा सकता हैं। अतः केवल व्यक्ति या राष्ट्र ही नहीं बल्कि विश्व ऐतिहासिक शोधों से लाभ उठाता है। ऐतिहासिक गवेषणा दूसरे देशों के साथ अपने सम्बन्धों की जानकारी का लाभ भी प्रदान करती है तथा राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को प्रगाढ़ करती है।

1.6 गवेषणा की सीमाएं

इस समय हम जिस युग में जीवन यापन कर रहे हैं, सर्वथा वैज्ञानिक युग हैं। विज्ञान ने हमारे जीवन तथा समाज के विविध पक्षों को विशेष तौर से प्रभावित करते हुए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सृजन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। नवसृजित वैज्ञानिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप इतिहास लेखन तथा गवेषणा के कुछ नये प्रतिमान भी स्थापित हुए हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि विज्ञानवाद ने ऐतिहासिक गवेषणा के विविध क्षेत्रों में गवेषक के कार्य को सुगम कर दिया है तथा ऐतिहासिक निष्कर्ष को वस्तुनिष्ठता की ओर अग्रसारित किया है, किन्तु विषयवस्तु, संसाधनों की उपलब्धता और शोध-समस्या एवं शोधप्रचना के कारण गवेषणा की सीमायें भी हो जाती हैं। नीचें की पंक्तियों में ऐतिहासिक गवेषणा की सीमाओं की तरफ आपका ध्यान केन्द्रित किया गया है।

बेस्ट और कान (Best & Kahn) ने अपनी पुस्तक 'रिसर्च इन एजुकेशन', में स्पष्ट करते हैं कि एक मुख्य कठिनाई समस्या को इस हद तक सीमित करने की होती है कि इसका संतोषजनक विश्लेषण सम्भव हो सके। अनुभवी इतिहासकार इस तथ्य को महसूस करते हैं कि ऐतिहासिक शोधों में सीमित समस्या का अन्दर गहराई

तक जाकर विश्लेषण आवश्यक है, अपेक्षाकृत वृहद समस्या की सतही विश्लेषण से। दूसरी बड़ी कठिनाई पर्याप्त और विश्वसनीय आंकड़ों की कमी से सम्बद्ध हैं। आधुनिक और निकट के अतीत का विश्लेषण प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास की तुलना में सरल इसलिए हो जाता है कि अतीत जितना दूर होगा, आंकड़े अपर्याप्त होगें और इनकी विश्वसनीयता खतरे में होगी। अध्ययन काल और इतिहासकार के जीवन में लम्बा फासला होता है। अतः अनुमान, आकलन तथा तार्किक विश्लेषण पर निर्भरता बढ़ जाती है। प्राथमिक स्रोतों से आकड़ों को एकत्रित करना मुश्किल है। इसमें भी कल्पना, कठिन श्रम और संसाधन की जरूरत होती है।

इतिहासकार जिन द्वितीयक स्रोतों पर आश्रित होता हैं वह अलग-अलग काल-खण्डों के होते है, खासकर तब जब किसी समाज में इतिहासलेखन के प्रति बहुत रूचि न हो। साथ ही तत्कालीन परिवेश में जो कुछ लिखा गया है उसमें इतिहास कितना है, आग्रह कितना यह देखना भी जरूरी है। जिन लोगों ने लिखा है उनकी मान्यताएँ, उनके पूर्वाग्रह और उस समय के राजनैतिक, सामाजिक वातावरण को जानना समझना भी आवश्यक है। यह भी ऐतिहासिक गवेषणा की सीमा निर्धारित करता है। ऐतिहासिक गवेषणा की सीमा यह भी है कि इसमें सांख्यिकीय विधि का प्रयोग और गणनात्मक विश्लेषण असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

1.7 बोध प्रश्न-

1- इतिहास-लेखन में गवेषणा की प्रक्रिया पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

2- गवेषणा का क्या अर्थ है? इतिहास-लेखन में इसकी अवधारणा तथा महत्व की विवेचना कीजिए।

3- ऐतिहासिक गवेषणा के विविध स्तरों को उदाहरण सहित समझाइए?

4- गवेषणा की आधुनिक अवधारणा तथा इस पर विज्ञान के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

5- गवेषणा क्या है? ऐतिहासिक गवेषणा की कार्यप्रणाली की विवेचना कीजिए।

1.8 संदर्भ-ग्रन्थ

1- शेक अली : इतिहास-दर्शन : उद्देश्य एवं विधि

2- बुद्ध प्रकाश : इतिहास दर्शन

3- ए. एल. राउज : द यूज आफ हिस्ट्री

4- जी. एल. रेनियर : हिस्ट्री इट्स परपज एण्ड मेथड

5- जी. सी. पाण्डेय : इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त

इकाई - 2

गवेषणा एवं उसके कार्य

इकाई की रूपरेखा-

2:0 उद्देश्य

2:1 प्रस्तावना

2:2 गवेषणा के सामान्य कार्य

- 2:2.1 सतर्कता
- 2:2.2 विषय- शीर्षक का चयन
- 2:2.3 रचना- पुनर्रचना
- 2:2.4 अतीत की पुनर्प्राप्ति
- 2:2.5 कल्पना-परिकल्पना तथा अनुमान
- 2:2.6 समीक्षा
- 2:2.7 विश्लेषण
- 2:2.8 प्रश्न-प्रश्नावली
- 2:2.9 कथन
- 2:2.10 अवलोकन-निरीक्षण एवं परीक्षण
- 2:2.11 तर्क प्रस्तुति
- 2:2.12 सामान्यीकरण एवं निष्कर्ष प्राप्ति
- 2:2.13 भविष्यवाणी
- 2:2.14 गर्वेषणा के विशिष्ट कार्य

2:3 बोध-प्रश्न

2:4 सन्दर्भ-ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में गवेषणा के सामान्य कार्यों की विवचेना की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेगें कि एक गर्वेषक को अपने विषय शीर्षक के चयन में किन-किन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए? रचना पुनर्रचना क्या है? क्या गवेषक के लिए अतीत की पुनर्प्राप्ति सम्भव है? गवेषणा में कल्पना, परिकल्पना तथा अनुमान की क्या भूमिका है? समीक्षा, विश्लेषण, प्रश्न-प्रश्नावली, कथन, अवलोकन, तर्कप्रस्तुति, सामान्यीकरण, भविष्यवाणी आदि गवेषणा के विविध कार्यों का निष्पादन कैसे किया जा सकता है।

2.1 प्रस्तावना

इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा ने गवेषणा की क्रियाविधि एवं उसके सम्पादन तथा निष्कर्ष के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन कया है। पिछली इकाई में गवेषणा, उसकी अवधारणा, उसका अर्थ, उसकी त्रिस्तरीय कार्यविधि आदि की सामान्य जानकारी कर लेने के बाद हमें यह जान लेना भी आवश्यक है कि गवेषणा में एक गवेषक को किन-किन कार्यों को सामान्य रूप से सम्पादित करना पड़ता है। यह इकाई मूलतः गवेषणा के विविध कार्यों की जानकारी से सम्बन्धित है, जिसमें विषयः शीर्षक चयन से लेकर अध्ययन-लेखन कार्य तक की क्रियाविधि की विशद विवेचना की गयी है।

2.2 गवेषणा के सामान्य कार्य

ऐतिहासिक गवेषणा एक अत्यन्त कठिन एवं दुष्कर कार्य है, जो गवेषक के धैर्य, मेहनत तथा ज्ञान की कठिन परीक्षा लेता है। ऐतिहासिक गवेषणा की प्रक्रिया को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने विशेष रूप से प्रभावित किया है। विज्ञान से अनुशासित गवेषणा के विविध आयामों का प्रभाव स्पष्ट रूप से इतिहासलेखन में परिलक्षित हो रहा है। गवेषणा की आधुनिक विधाओं ने इतिहास के स्वरूप को वस्तुनिष्ठता की ओर बड़ी तेजी से अग्रसारित किया है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि गवेषणा वर्तमान ऐतिहासिक अध्ययन या इतिहास-लेखन का सर्वस्व है। पिछली इकाई में हम लोगों ने गवेषणा के अर्थ, अवधारणा तथा उसकी सीमाओं के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त की थी। उसके बाद हमें यह जान लेना भी आवश्यक है कि गवेषणा में एक गवेषक को किन-किन कार्यों को सामान्य रूप से सम्पादित करना पड़ता है। चूँकि गवेषणा एक वैज्ञानिक विधा है, अतः इसमें प्रायः सभी वैज्ञानिक अनुसंधान के कार्य सम्पादित करने पड़ते हैं। ऐतिहासिक गवेषणा में जो सामान्य रूप से कार्य करने होते हैं वे इस प्रकार हैं:- सतर्कता, विषय-शीर्षक चयन, रचना-पुर्नरचना, प्रश्न-कथन, सामान्यीकरण, परीक्षण, तर्कप्रस्तुति, समीक्षा, अनुमान, भविष्यवाणी, निष्कर्ष आदि। इनके विषय में कुछ आवश्यक जानकारी ऐतिहासिक सातत्य से संक्षेप में करायी जा रही है।

2.2.1 सतर्कता

गवेषणा एक ऐसा कार्य है जिसमें एक गंवेषक को काफी सतर्कता एवं सावधानी बरतनी होती है। यह सतर्कता उसे विषय:शीर्षक चयन से लेकर अध्ययन-लेखन, कार्य-सम्पादन तक रखनी पड़ती है। जैसे- गलत विषय न चुन जाय, भ्रामक शीर्षक न मिल जाय, व्यर्थ के स्रोत संदर्भ न सामने आयें। मौलिक-वास्तविक ग्रन्थ ही अध्ययन किये जायें, संदर्भ-ग्रन्थों की भौतिक रचना का सही ज्ञान हो। उचित कथन, प्रश्न, परीक्षण, तर्क, अनुमान तथा निष्कर्ष आदि निकल सकें। तथ्यों की प्रस्तुति सहीं ढंग से हो सके। यथार्थ पर आवरण न चढ़े। गवेषक के लिए गवेषणा-कार्य के अन्तर्गत जो भी कार्य निर्दिष्ट हों उन सबके करने में पूरी सतर्कता रखना ही गवेषणा में सतर्कता की अवधारणा है,. जिसे अनावश्यक विस्तार से बचने के लिए संक्षेप में बतलाया गया है।

2.2.2 विषय:शीर्षक का चयन

गवेषणा कार्य के लिए विषय का चयन एक दुष्कर कार्य है तथा उस विषय के अन्तर्गत शोध-शीर्षक का चयन तो और भी अधिक सावधानी की अपेक्षा करता

है। यह कार्य एक बौद्धिक प्रचेष्ठा है। इसका अर्थ केवल नवीन आविष्कार और अन्वेषण नहीं है। इसका अर्थ एक नवीन विन्यास, एक नवीन दृष्टिकोण तथा एक नवीन साक्ष्य आदि भी है। यदि शोधकर्ता अपना विषय ढंग से चुनने में असफल होता है तब वह अपने कार्य के प्रति न्याय करने में असमर्थ होगा।

एक योग्य गवेषक को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए अपने विषय-शीर्षक का चयन करना चाहिए तथा इसके बाद ही प्रारम्भिक तैयारी शुरू करनी चाहिए। अपने शोध के विषय का निर्णयात्मक चयन करने में गवेषक को अपनी योग्यताओं, क्षमताओं का ख्याल रखते हुए अपनी अभिरूचि के अनुसार सावधानी पूर्वक विषय का चयन करना चाहिए क्योंकि उसे अपनी ऊर्जा तथा स्त्रोतों का उपयोग करते हुए वर्षों तक चयनित विषय पर कार्य करना पड़ता है। शोधकर्ता को जिस विषय का ज्ञान सबसे अधिक हो, उसी विषय पर शोध-कार्य करना चाहिए। गवेषणा का कार्य विद्यमान स्त्रोतों तथा अभी तक अज्ञात स्त्रोतों, आँकड़ों पर आधारित होता है। इसलिए विषय-शीर्षक का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि गवेषणा हेतु प्रचुर स्त्रोत-सामग्री तथा आँकड़ों की उपलब्धता है कि नहीं। गवेषक को अपने मस्तिष्क में ख्याल रखना चाहिए कि उसे सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जाय तथा उपलब्ध शोध-सामग्री विश्वसनीय भी हो। शोधकर्ता को यह भी विचार करना चाहिए कि शोध का विषय समाज तथा व्यक्ति के लिए लाभदायक सिद्ध होगा।

एक योग्य तथा मेहनती शोधकर्ता को अन्तिम रूप से एक विषय चुनने से पूर्व उपलब्ध सामग्री की भाषा को भी ख्याल में रखना चाहिए। सामग्री की उपलब्धता अर्थहीन सिद्ध हो जायेगी, अगर शोध-सामग्री जिस भाषा में है, उसे शोधार्थी न जानता हो। तुलनात्मक विषयों पर शोध-कार्य करने में कठिनाई होती है क्यों कि इसमें दो तरह की संस्कृति, भाषा और विषय-सामग्री का अध्ययन करना पड़ता है। अतः ऐसे विषयों से शोधकर्ता को बचना चाहिए। विषय-शीर्षक चयन में ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं की संदर्भ-सूचियों से भी सहायता ली जा सकती है। समय-

समय पर इतिहास से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थ-सूचियों में प्रकाशित समालोचनाओं का अध्ययन करना चाहिए ताकि शोधकर्ता को अपने विषय शीर्षक चयन में मदद मिल सके। प्रायः समीक्षाओं, ग्रन्थ सूचियों, संदर्भों में कुछ समस्याएँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें शोध-कार्य की पुनः आवश्यकता होती है।

2.2.3 रचना पुनर्रचना

चयनित विषयान्तर्गत गवेषक रचना अथवा पुनर्रचना का कार्य करता है। जब वह सर्वथा नये विषय पर लिखता है तो उसे रचना कहते हैं और जब वह किसी पूर्व विज्ञप्त विषय पर अपने भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए लिखता है तो उसे पुनर्रचना कहते हैं, (रेनियर, पृ-22)। रचना किसी विषय की सीमा के अन्तर्गत तथ्यों की यथार्थ समालोचना के साथ क्रमबद्ध घटना-वर्णन के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत की जाती है जो समसामयिक मानव-समाज को छूती हुई होनी चाहिए। इसकी शैली सरल, सुबोध, सरस, तथा साहित्यिक होनी चाहिए। हाकेट के अनुसार रचना रोचक तथा मूल्यसंम्पृक्त होनी चाहिए। यह कार्य रचनाकार सामान्यीकरण, व्याख्या, विश्लेषण तथा मूल्यांकन के सिद्धान्तों के आधार पर करता है। हेनरी पिरेन के अनुसार विषय की सीमा तथ्यों की यर्थाथता, ऐतिहासिक स्रोतों की विश्वसनीयता तथा घटनाओं की क्रमबद्धता के पश्चात् गवेषणा में कलात्मक पुनर्रचना प्रमुख हो जाती है।

2.2.4 अतीत की पुर्नप्राप्ति

वैज्ञानिक इतिहासकारों द्वारा ऐतिहासिक गवेषणा की नवीन विधाओं के प्रतिपादन का एकमात्र उद्देश्य अतीत की पुनर्प्राप्ति था। यह एक गम्भीर विचारणीय प्रश्न है कि क्या अतीत की पुनर्प्राप्ति इन विधाओं द्वारा सम्भव है? 19वीं सदी के जर्मन इतिहासकार यह मानते थे कि अतीत का यथावत् प्रस्तुतीकरण ही गवेषक का कर्तव्य है। उनकी यह मान्यता उस समय मिथ्या सिद्ध हुई जब गवेषकों ने अपने मनोनुकूल तथ्यों का चयन तथा व्याख्या और विश्लेषण के माध्यम से तोड़-मरोड़ कर उनका प्रस्तुतीकरण किया। परिणामस्वरूप हेनरी फोर्ड जैसे प्रख्यात इतिहासकारों

ने इतिहास को "अंधकार कोठरी" की संज्ञान प्रदान की। इस अवधारणा ने कार्लबेकर जैसे इतिहासकार को यह कहने के लिए बाध्य किया कि कोई भी इतिहासकार अतीत की पुनर्प्राप्ति नहीं कर सकता। चार्ल्स बियर्ड ने लिखित इतिहास को विश्वास की प्रक्रिया इंगित किया।

उपर्युक्त विद्वानों के वाक्यांशों मे कुछ सच्चाई अवश्य है क्योंकि इतिहास-गवेषक के पास वैज्ञानिक की तरह कोई ऐसा उपकरण नहीं है जिसके द्वारा वह अपने समसामयिक समाज को अतीत का दिग्दर्शन करा सके अथवा स्वयं कर सके। ऐतिहासिक स्रोतों में वर्णित तथ्यों के आधार पर वह अतीत का काल्पनिक पुनर्निर्माण करता है। वह अतीत का प्रत्यक्ष निरीक्षण नहीं कर सकता है। इसलिए अतीत की प्रस्तुति अथवा पुनर्प्राप्ति एक विश्वास मात्र कहा जायेगा। इसे यथातथ्य कहना उचित नहीं प्रतीत होता है। कार्ल बेकर ने इसी सत्य के सदंर्भ मे कहा है कि अतीतकालिक ऐतिहासिक सत्य एक प्रतीक है जो इतिहासकार के मस्तिष्क में विद्यमान रहता है।

इतिहास के संदर्भ में कार्ल बेकर तथा बियर्ड के अभिमत की कुछ लोगों ने कटु आलोचना की है और बताया है कि उन पर ईसाई धर्म का प्रभाव होने से ही इस तरह की निराशावादी बाते कही गयी है। इतिहास न तो 'अंधेरी कोठरी' है और न विश्वासप्रधान। क्या गौतम बुद्ध, अशोक, अकबर आदि ऐतिहासिक तथ्य नहीं, बल्कि विश्वास के कारण इन्होनें इतिहास में स्थान प्राप्त किया है? इसलिए यह गलत है कि ऐतिहासिक अतीत की पुनर्प्राप्ति सम्भव नहीं है। परन्तु यह शोधकर्ता के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि वह अतीत की पुनः प्राप्ति किस रूप में चाहता है, क्योंकि अतीत की पुनर्रचना कुछ चुने हुए तथ्यों के आधार पर की जाती है। इतिहासकार सामाजिक आवश्यकता के अनुसार अतीत का प्रस्तुतीकरण करता है। इसलिए प्रत्येक युग में इतिहास-लेखन की आवश्यकता की अनुभूति की गयी है।

ऐतिहासिक गवेषणा की विधाओं का प्रतिपादन अतीत की पुनर्प्राप्ति के लिए किया गया है। रेनियर का अभिमत है कि ऐतिहासिक गवेषणा की विधाओं का प्रमुख अभिप्राय अतीत सम्बन्धी उस कहानी का प्रस्तुतीकरण होना चाहिए जो वर्तमान को प्रकाशित कर सके तथा समसामयिक समाज को संतुष्ट कर सके। क्रोचे के अनुसार इतिहासकार का उद्‌देश्य उस अतीत की पुनर्प्राप्ति होनी चाहिए जो गवेषक की आत्मा को स्पदिन्त कर सके। ओकशाट का अभिमत है कि वर्तमान का अविर्भाव अतीत के गर्भ से हुआ है जो वर्तमान को प्रभावित तथा नियंत्रित करता है तथा सुखद भविष्य का मार्गदर्शन करता है। ऐसे ही अतीत की पुनर्प्राप्ति ऐतिहासिक गवेषणा की विधाओं का प्रमुख उद्देश्य है। अतीत की पुनर्प्राप्ति विषय में रेनियर लिखता है कि घटना, साक्ष्य, संदेह, क्रमबद्धता, तिथिक्रम, कार्य-कारण सम्बन्ध, अनुमान, वस्तुनिष्ठता, भाषा तथा व्याकरण का ज्ञान और कलात्मक पुनर्रचना आदि के प्रयोग से गवेषणा को अत्यधिक सम्पुष्टता प्राप्त होती है और अतीत की पुनर्प्राप्ति का मार्ग सुगम हो जाता है।

2.2.5 कल्पना-परिकल्पना तथा अनुमान

इतिहास-लेखन में कारणों की व्याख्या में परिकल्पना सहायक होती है। हाल्फन का कहना है कि कल्पना के अभाव में कारणों की क्रमबद्धता कठिन है। इसी सत्य को ध्यान में रखकर क्रोचे तथा कालिंगवुड ने कहा है कि कल्पना ऐतिहासिक ज्ञान की मूलस्रोत है। इसी को भारतीय दर्शन में अनुमान कहा गया है।

इतिहास में अनुमान भी लगाया जाता है। रीतिवादी इतिहासकार किसी रेखांकन के आधर पर घटना का अनुमान कर लेते हैं। वे इस तथ्य को भूल जाते हैं कि इतिहास पूर्ण रूप से काल्पनिक नहीं अपितु साक्ष्यों पर आधृत है। जैसे- किसी स्थान पर खण्डहर को देखकर अनुमान किया जाता है कि यहाँ कभी एक विशाल नगर रहा होगा। किन्तु अनुमान कभी काल्पनिक भी हो सकता है। दो चार भवनों के अवशेष देखकर विशाल नगर के बारे में अनुमान कर लेना बहुत अधिक ठीक नहीं

कहा जा सकता। यही कारण है कि इतिहासकार का निष्कर्ष अनुमानात्मक अथवा सम्भावनात्मक ही होता है, विज्ञान की भाँति निश्चयात्मक नहीं। कालिंगवुड ने इस अनुमान को ''साक्ष्यों का प्रस्तुतीकरण'' इंगित किया है

2.2.6 समीक्षा

ऐतिहासिक गवेषणा में समीक्षा एक आवश्यक प्रक्रिया है। समीक्षा एक इतिहासकार की एक विशेषता है जो वह इतिहास-लेखन के प्रयोग में लाता है। वह प्राप्त तथ्यों/साक्ष्यों की विविध प्रकार से समीक्षा करता है- उसकी काल्पनिकता और निश्चयात्मकता की जाँच करता है। डा. वी. शेकअली के अनुसार गलतियों तथा भ्रम को दूर करने के लिए और एक दस्तावेज की सत्यता या यथार्थता की गणना करने हेतु 'समीक्षा' विद्वान के हाथ में महत्वपूर्ण हथियार है।

2.2.7 विश्लेषण

समय के साथ ऐतिहासिक अवधारणा बदलती रहती है। पहले इतिहास में प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में जो साक्ष्य प्राप्त होते थे उनको यथावत स्वीकार कर लेने की परम्परा ज्यादा थी। किन्तु वर्तमान वैज्ञानिक युग में इतिहासकार साक्ष्यों का विधिवत विश्लेषण करते हैं, क्योंकि अतीत का चिन्तन कभी पूर्ण नहीं होता और प्रत्येक युग में नवीन साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य मे अतीत का चित्रण परिवर्तनशील होता है। इसलिए नवीन साक्ष्य पुरातन साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन तथा विश्लेषण के लिए शोधकर्ता को विवश करते हैं। इस प्रकार विश्लेषण ऐतिहासिक गवेषणा का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है।

2.2.8 प्रश्न-प्रश्नावली

बेकन के अनुसार वैज्ञानिक प्रकृति से प्रश्न करता है तथा वैज्ञानिक विधाओं द्वारा अपने प्रश्न का उत्तर प्राप्त करता है। इतिहास अतीत से प्रश्न पूछता है परन्तु यह इतिहासकार का व्यक्तिगत प्रश्न नहीं बल्कि समसामयिक समाज का प्रश्न होता है। इतिहासकार अतीत के अगाध अन्तस्तल में प्रवेश करके समाज के प्रश्नों का

उत्तर ढूँढता है। प्लेटो ने भी अतीत से अपने प्रश्नों का उत्तर चाहा है। सुकरात की शिक्षा उसके प्रश्नों द्वारा ही दी गयी थी। भारतीय इतिहासकारों के निष्कर्ष भी उनके प्रश्नों के ही उत्तर हैं। इस विचारधारा को हम कल्पना, पूर्वाग्रह अथवा मूलभूत प्रश्नोत्तर कह सकते हैं। प्रश्नोत्तर में सहायक को साक्ष्य कहते हैं। प्रश्नों के अभाव में साक्ष्यों का संकलन कठिन होता है। कालिंगवुड के अनुसार इतिहासकार साक्ष्य पर आधारित अतीत की पुनरावृत्ति करता है।

2.2.9 कथन

ऐतिहासिक गवेषणा में साक्ष्यों की तरह 'कथन' का भी विशेष महत्व है। कथन सत्य और असत्य दोनों से सम्बद्ध हो सकता है। कथन साक्ष्ययुक्त एवं साक्ष्यरहित, दोनों हो सकता है। साक्ष्य सहित कथन अधिक विश्वसनीय होता है। कथन प्रिय एवं अप्रिय दोनों हो सकता है। इतिहास में केवल सत्य किन्तु अप्रिय कथन को महत्व देने वालों की संख्या अब घटती हुयी दर पर प्राप्त होती है, जबकि वैज्ञानिक इतिहासकार यह मानने लगे हैं कि अप्रिय कथन से बचने के लिए इतिहास को असत्य का भी सहारा लेना पड़ सकता है, जो विशेष परिस्थिति में अन्यथा नहीं कहा जा सकता। कथन एक प्रकार के साक्ष्य-स्वरूप होते हैं, जबकि साक्ष्य के रूप में हम कुछ कहते हैं और कुछ प्रदर्शित भी करते हैं। साक्ष्य के सातत्य से ऐतिहासिक आधार पर कैंची तथा गोंद शैली के समर्थक इतिहास के प्राधिकारी के कथन के यथावत स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु वैज्ञानिक इतिहासकारों ने इस शैली को मान्यता प्रदान नहीं की। ये लोग प्राधिकारी के कथन को यथावत् स्वीकार न करके अन्य साक्ष्यों के विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में अपना यथार्थ कथन प्रस्तुत करते हैं। कालिंगवुड के अनुसार प्रायः सिक्कों, इमारतों आदि में उपलब्ध साक्ष्य अधिक विश्वसनीय होते हैं और वैज्ञानिक इतिहासकार को मनोनुकूल परिणाम देते हैं। अतः आधुनिक शोधकर्ता उसी कथन को साक्ष्य के रूप में स्वीकार करता है, जो उसके विचारों की पुष्टि कर सके।

2.2.10 अवलोकन-निरीक्षण एवं परीक्षण

गवेषणा में अतीत की घटना और समसामयिक स्थिति का उचित ढंग से अवलोकन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। तथ्यों की विश्वसनीयता के लिए उनका सभी प्रकार से निरीक्षण एवं परीक्षण भी किया जाना चाहिए। लेखक कालीन परिस्थितियों की जाँच करके सत्य का अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने जिस घटना का वर्णन किया है वह सही है या गलत। हाकेट ने विज्ञान की भाँति इतिहास में भी विश्वसनीयता के निरीक्षण को आवश्यक बताया है। कभी-कभी प्रत्यक्षदर्शी का कथन भी असत्य हो जाता है और वह किन्हीं कारणों से तथ्य को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है। इसलिए निरीक्षण-परीक्षण आवश्यक होता है।

2.2.11 तर्क प्रस्तुति

गवेषणा में अपने कथनों को प्रतिष्ठित करने और अन्य विचारों को अपुष्ट सिद्ध करने के लिए तरह-तरह के साक्ष्यों को अपनी तार्किक शक्ति के सहारे प्रस्तुत किया जाता है। तर्क आवश्यक है किन्तु वह विषयान्तर्गत एवं व्यवहारिक होना चाहिए। वह अनावश्यक एवं बिना किसी कारण के नहीं होना चाहिए कि लोग उसे वितर्क की संज्ञा देने पर विवश हो जायें। गवेषक को सदैव रचनात्मक तर्क प्रस्तुत करना चाहिए।

2.2.12 सामान्यीकरण एवं निष्कर्ष प्राप्ति

ऐतिहासिक घटनाओं की क्रमबद्धता के पश्चात इतिहासकार सामान्यीकरण के माध्यम से महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। गवेषणा कार्य में सामान्यीकरण का विशेष महत्व है। गार्डिनर के अनुसार सामान्यीकरण ऐतिहासिक घटना का मार्गदर्शन है। ऐतिहासिक गवेषणा में सामान्यीकरण का अभिप्राय सामान्य ज्ञान तथा बौद्धिक ज्ञान का प्रस्तुतीकरण होता है, जो जटिल विषय को सरल, सुबोध तथा सुगम बना देता है। उदाहरणार्थ-शक्ति भ्रष्ट करती है तथा सर्वशक्तिमान सभी को भ्रष्ट बना देता है (फ्रैंकेल, पृ0414)। इस प्रकार एक भ्रष्ट व्यवस्था की अभिव्यक्ति इतिहासकार

एक वाक्य द्वारा करता है। इसी प्रकार मानसिक प्रक्रिया, व्यक्तिगत योग्यता तथा एक वर्ग को स्पष्ट करने के लिए कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे- प्यूरिटन मस्तिष्क, प्रशियन अधिकारी, विक्टोरियन व्यापारी आदि। इसी सामान्यीकरण के सिद्धान्त के अन्तर्गत हम 'चाणक्य' शब्द का जब प्रयोग करते हैं तो एक प्रतिशोधयुक्त व्यक्ति का बोध होता है और जब 'विभीषण' का नाम लेते हैं तो 'घर का भेदी लंका ढाहे' की उक्ति की ओर इंगित करता है। चार्ल्स फैकेल के अनुसार सामान्यीकरण इतिहासकार के वर्ण्य-विषय को सजीवता प्रदान करता है।

प्रत्येक रचना अपने आप में एक स्थान पर चलकर सीमित की जाती है इसलिए उसके अन्त में पूरे लेखन कार्य का निष्कर्ष लिखना पड़ता है। निष्कर्ष के साथ ही किसी गवेषणा की समाप्ति मानी जाती है। रचना यदि सुन्दर प्रासाद या महल हो तो उसे और अधिक सुन्दर बनाने के लिए निष्कर्ष एक बाग-बगीचे, फूल-पौधे और गमले की तरह से है जो कि उस प्रासाद की सुन्दरता में चारचाँद लगाने की तरह। निष्कर्ष का आभरण है जो कि रचना रूपी दुल्हन को सजाने-सवाँरने का कार्य करता है। अपनी रचना को रोचक एवं ग्राह्य बनाने के लिए एक गवेषक कुछ नवीन विधाओं का प्रयोग करता है इसी को निष्कर्ष-प्रक्रिया की संज्ञा दी जाती है। गवेषणा का सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तिगत विचारों (मानसिक अवस्था) से होता है जिसे वह कल्पना के आधार पर नहीं अपितु साक्ष्यों के आधार पर एक विशिष्ट साहित्यिक शैली से सुशोभित तथा परिष्कृत करता है जिससे कि लोग उसका अध्ययन करने के लिए आकर्षित एंव विवश किये जा सकें। इसी को किसी ऐतिहासिक गवेषणा में निष्कर्ष-प्रक्रिया अथवा निष्कर्षप्राप्ति की संज्ञा दी जा सकती है।

2.2.13 भविष्यवाणी

इतिहास को विज्ञान की श्रेणी से पृथक रखने वाले इतिहासकार यह मानते हैं कि एक वैज्ञानिक की भाँति एक इतिहासकार भविष्यवाणी करने में असमर्थ होता है।

प्रो0 कार ने भी इसे स्वीकृत किया है। वाल्श का कहना है कि वैज्ञानिक एक सफल भविष्यवक्ता है जबकि इतिहासकार में इस गुण का अभाव दिखायी देता है। कार्ल आर. पापर के अनुसार वैज्ञानिक भविष्यवाणी करता है और इतिहासकार परिस्थितियों के संदर्भ में भविष्य के लिए मार्गदर्शन करता है। प्रो0 कार के अनुसार इतिहासकार की भविष्यवाणी तथा भावी मार्गदर्शन का आधार सामान्यीकरण का सिद्धान्त है। इसलिए भविष्यवाणी जैसी बात गवेषणा का विषय हो ही नहीं सकता। परन्तु घटना विशेष की सामयिक पुनरूक्ति के आधार पर गवेषक भविष्यवाणी करने का प्रयास करता है।

2.3 गवेषणा में विशिष्ट कार्य

गवेषणा-कार्य केवल वहीं तक स्थिर नहीं रहता, अपितु उसकी परिणति लेखन-कार्य के रूप में होता है, जिसके फलस्वरूप एक पुस्तक अथवा शोधप्रबन्ध का निर्माण होती है। उसकी रचना में एक इतिहास-लेखक को लेखन की सभी मर्यादाओं को शिरोधार्य करके चलना पड़ता है। लेखन के कई एक नियम होते हैं, किन्तु गवेषणा के नियम कुछ विशेष भी होते हैं। इस इकाई में हमने गवेषणा के कुछ प्रमुख सामान्य कार्यों का उल्लेख किया है। गवेषणा में कुछ विशिष्ट कार्य ऐसे होते हैं, जो गवेषणा की दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य होते हैं। जैसे- वास्तविक तथ्यों की प्राप्ति (संग्रह), साक्ष्यों की प्रस्तुति, तथ्यों की व्याख्या, उसका स्पष्टीकरण, उसकी आलोचना-समालोचना आदि। विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान के विषयों में गवेषणा अथवा ग्रन्थ-रचना के समय कुछ और विशिष्ट कार्यों (नियमों) को एक लेखक तथा गवेषक सम्पादित करता है। वस्तुतः इतिहास-लेखन एवं ऐतिहासिक गवेषणा में ये कुछ सूत्र एवं सिद्धान्त मुख्य होते हैंः 1- तथ्य, 2-साक्ष्य, 3-व्याख्या, 4-स्पष्टीकरण, 5-आलोचना। इनके बारें में अन्य इकाई में विस्तार से चर्चा की जायेगी।

2.4 बोध-प्रश्न

1- ऐतिहासिक गवेषणा में गवेषक की सामान्य भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

2- शोध-विषय के चयन के लिए गवेषक को किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? स्पष्ट कीजिए।

3- ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं का उद्देश्य अतीत की पुनः प्राप्ति है। संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

4- सामान्यीकरण क्या है? ऐतिहासिक गवेषणा में इसकी क्रियाविधि तथा महत्व का वर्णन कीजिए।

2.5 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास दर्शन - झारखण्ड चौबे

2- इतिहास दर्शन - कौलेश्वर राय

3- इतिहास क्या है - ई. एच. कार

4- इतिहास दर्शन - बुद्ध प्रकाश

5- इतिहास दर्शनः उद्देश्य एवं विधिः वी0 शेक अली

इकाई-3

साक्ष्य विश्लेषण के आधार तत्व

इकाई की रूपरेखा

3:0 उद्देश्य

3:1 प्रस्तावना

3:2 ऐतिहासिक साक्ष्य

3:3 ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में तथ्य

3:4 ऐतिहासिक साक्ष्यों का विश्लेषण

3:5 इतिहासकार तथा साक्ष्य

3:6 साक्ष्य तथा विश्लेषण

3:7 साक्ष्य-विश्लेषण के आधार-तत्व

- 3:7.1 दुर्गम छलाँग
- 3:7.2 घटना का ज्ञान
- 3:7.3 स्मृति इतिहास नहीं है
- 3:7.4 प्रमाण
- 3:7.5 कैंची तथा गोंद इतिहास
- 3:7.6 ऐतिहासिक अनुमान
- 3:7.7 कबूतरी कोटर
- 3:7.8 प्रश्न
- 3:7.9 कथन और साक्ष्य

3:8 साक्ष्यों की आलोचना

3:9 साक्ष्यों की विश्वसनीयता को परखने के आधार

- 3:9.1 सत्य कहने की योग्यता
- 3:9.2 सत्य कहने की इच्छा
- 3:9.3 सूचना की सत्यता
- 3:9.4 स्वतंत्र परिपुष्टि

3.10 बोध-प्रश्न

3.11 संदर्भ-ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें कि –

- साक्ष्य क्या है?
- इतिहासकार तथा साक्ष्य के बीच किस तरह का सम्बन्ध होता है।
- इतिहास-लेखन में साक्ष्यों के विश्लेषण की क्या उपयोगिता होती है।
- किन आधारों पर साक्ष्यों का विश्लेषण किया जाता है?
- साक्ष्यों की विश्वसनीयता के परखने के आधार कौन-कौन से हैं?

3.1 प्रस्तावना :

ऐतिहासिक गवेषणा में साक्ष्य की सहायता से ही किसी घटना का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इतिहासकार और साक्ष्यों के मध्य अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वह व्याख्या और विश्लेषण के माध्यम से साक्ष्यों को न केवल क्रमबद्धता प्रदान करता है अपितु उसके प्रभाव का भी विश्लेषणात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। वैज्ञानिक विधा में आस्था रखने वाले आधुनिक इतिहासकारों ने निश्चित विश्लेषणात्मक विधियों से साक्ष्यों की आलोचना पर बल दिया है जिससे इतिहास का स्वरूप वस्तुनिष्ठता की ओर अग्रसर हुआ है। इस इकाई में साक्ष्यों की विश्लेषण-विधियों के साथ-2 उनकी विश्वसनीयता को परखने के विभिन्न आधारों को भी विमर्श का विषय बनाया गया है।

3.2 ऐतिहासिक साक्ष्य :

किसी घटना का क्रमबद्ध ज्ञान प्रदान करने वाले रेखांकन को साक्ष्य कहते हैं। रेखांकन घटना का वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ से साक्ष्य का संकलनकर्ता अपना कार्य प्रारम्भ करता है। साक्ष्य का शाब्दिक अर्थ है- सबूत, गवाही, प्रमाण। आक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार साक्ष्य वह रेखांकन है जो अतीत अथवा वर्तमानकालिक घटना से सम्बद्ध ज्ञान की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सके। जैसे- प्राचीन हिमनदी की प्रक्रिया के साक्ष्य। रेनियर के अनुसार किसी घटना सम्बन्धी जांचकर्ता के प्रश्नोत्तर में

जो भी तथ्य सिद्ध हो सके उसे साक्ष्य कहा जाता सकता है। समाज में साक्ष्यों का प्रयोग वैज्ञानिक, अधिवक्ता तथा इतिहासकार करते हैं। इनके प्रयोग की विधियों में समानतायें तथा विभिन्नतायें होती हैं। साक्ष्यों के आधार पर प्राप्त एक वैज्ञानिक निष्कर्ष सर्वव्यापी तथा सर्वकालिक होता है किन्तु इतिहासकार के साक्ष्यों का निष्कर्ष किसी विशेष घटना तथा विशेष काल से होता है। इसी प्रकार इतिहासकार के साक्ष्य जहाँ एक ओर ऐतिहासिक स्रोतों में निहित होते हैं वहीं अधिवक्ता जीवित व्यक्तियों को साक्ष्य के रूप मे प्रस्तुत करता है।

3.3 ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में तथ्य

सामान्यतः ऐतिहासिक तथ्यों को ही साक्ष्य कहते हैं। साक्ष्यों का अन्वेषण नहीं अपितु खोज की जाती है। डेविड थामसन के अनुसार साक्ष्यों तथा उनकी व्याख्या की अंतर्क्रिया की निरन्तर प्रक्रिया ही इतिहास है। ई.एच. कार के अनुसार सभी तथ्य ऐतिहासिक अध्ययन के आधार हैं परन्तु व्याख्या के अभाव में तथ्य अनुपयोगी तथा नीरस होते हैं। वास्तव में तथ्यों की व्याख्या से तात्पर्य साक्ष्यों पर आधारित क्रमबद्ध वर्णन ही होता है। मानव जाति को पीढ़ी दर पीढ़ी प्रभावित करने वाले वे कार्य जो विशेष समय पर किये जाते हैं, तथ्य कहे जाते हैं। इनका संकलन करके इनके कारणों की खोज की जाती है, तब तथ्यों की व्याख्या करते हैं, क्योंकि तथ्यों की व्याख्या ही मुख्य मानी जाती है। यह व्याख्या तथ्यों पर आधारित तथा क्रमबद्ध होती है। इस तरह साक्ष्यों पर आधारित व्याख्या उत्तम होती है। किट्सन क्लार्क ने इस मत का समर्थन करते हुए कहा है कि तथ्यों को यथावत स्वीकार न करके उनकी पुष्टि साक्ष्यों से करनी चाहिए।

3.4 ऐतिहासिक साक्ष्यों का विश्लेषण

प्रसिद्ध विद्वान कालिंगवुड की धारणा है कि इतिहासकार द्वारा प्रस्तुत अतीत का चित्रण कभी पूर्ण नहीं होता है। क्योंकि प्रत्येक युग का इतिहासकार नये साक्ष्यों की गवेषणा द्वारा इतिहास लिखता है। वर्तमान इतिहासकार के लिए अतीत का जो चित्रण यथार्थ प्रतीत होता है वह नवीन साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में भावी पीढ़ी के

इतिहासकार के लिए गलत हो सकता है। अतः अतीत का स्वरूप निरन्तर परिवर्तनशील है। प्रत्येक पीढ़ी समसामयिक इतिहासकारों से कुछ मूलभूत प्रश्नों का उत्तर चाहती है (डेविड थॉमसन,पेज-39)। समसामयिक इतिहासकार साक्ष्यों के परिवेश में इन्हीं प्रश्नों का उत्तर अतीत से प्रस्तुत करता है। प्रत्येक युग में साक्ष्य-विश्लेषण की यही परम्परा रही है।

3.5 इतिहासकार तथा साक्ष्य

इतिहासकार तथा साक्ष्य के मध्य अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहासकार के बिना साक्ष्य मृत एवं अर्थहीन है तथा साक्ष्य के अभाव में इतिहासकार का अस्तित्व अर्थहीन हो जाता है। डेविड थामसन की मान्यता है कि इतिहासकार व्याख्या और विश्लेषण के माध्यम से साक्ष्यों को न केवल क्रमबद्धता प्रदान करता है अपितु उनके प्रभाव का भी विश्लेषणात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। इसीलिए कालिंगवुड ने लिखा है कि साक्ष्यों पर आधारित इतिहास अतीत का विज्ञान है। साक्ष्यों के विश्लेषण में इतिहासकार का यह प्रयास होना चाहिए कि वह इसे अपनी व्यक्तिगत भावनाओं से अतिरंजित न करे।

साक्ष्य को स्वीकार करने का तात्पर्य विश्वास करना होता है। विश्वास करने वाला व्यक्ति इतिहासकार होता है और जिस पर विश्वास किया जाता है उसे प्राधिकारी अथवा स्रोत कहते हैं। स्रोत के तथ्यों को स्वीकार कर अपने समसामयिकों के समक्ष इतिहासकार का प्रस्तुतीकरण ही इतिहास होता है।

इतिहासकार आलोचनात्मक विधि से प्राधिकारी के प्रत्येक वाक्य की यथार्थता को सिद्ध करता है। इतिहासकार की विश्लेषण-पद्धति के संदर्भ में कालिंगवुड ने लिखा है किः-

1- "क्या प्राधिकारी का कथन विश्वसनीय है? घटना सम्बन्धी उसके कथन की पुष्टि अन्य साक्ष्यों द्वारा होती है?"

2- ''क्या प्राधिकारी का कथन इसलिए विश्वसनीय है कि वह घटना का प्रत्यक्षदर्शी रहा है?''

3- ''क्या प्राधिकारी का कथन इसलिए विश्वसनीय है क्योंकि आधुनिक ख्यातिलब्द्ध इतिहासकारों ने उसे स्वीकार किया है?''

4- ''क्या प्राधिकारी कथन इसलिए विश्वसनीय है क्योंकि प्राधिकारी के कथन पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है?''

उपरोक्त विश्लेषणात्मक विधियों से साक्ष्यों की आलोचना का अभिप्राय इतिहास में कैंची और गोंद के सिद्धान्त की मान्यता को नकारना है। इस प्रकार साक्ष्यों की व्याख्या में इतिहासकार स्वयमेव प्राधिकारी (स्रोत) बन जाता है। कालिंगवुड ने उचित ही कहा है– साक्ष्य आधरित इतिहास अतीत का विज्ञान है। इस संदर्भ में अकबर द्वारा असीरगढ़ के किले की घटना को तत्कालीन लेखक अबुल फजल एवं पुर्तगाली लेखकों ने अलग-अलग ढंग से लिखा है। दोनों के कथन में सत्यता का अभाव झलकता है। आधुनिक शोधकर्ताओं ने इस विजय का कारण तत्कालीन परिस्थितियों को उत्तरदायी माना है और रिश्वत देकर किले पर विजय प्राप्त करने के अतिरिक्त मुगलों के पास अन्य कोई विकल्प नहीं था। इतिहास के परिवर्तनशीलता के सम्बन्ध में यह कहना पूर्णतया उचित होगा कि नवीन साक्ष्य पुरातन साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन तथा विश्लेषण के लिए सदैव शोधार्थी को बाध्य करते हैं, क्योंकि प्रत्येक पीढ़ी अपनी रूचि और समसामयिक आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में अतीत के चित्रण की माँग करती है।

3.6 साक्ष्य तथा विश्लेषण

आधुनिक वैज्ञानिक शैली के समर्थक इतिहासकारों ने कैंची और गोंद शैली को नकारते हुए साक्ष्यों की सत्यता की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से करने की आवश्कता पर बल दिया है। साक्ष्य विश्लेषण में नवीन साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में कुछ मूलभूत प्रश्नों का उत्तर घटना के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, जिससे कि अतीत का

अध्ययन समसामयिक तथा उपयोगी बन सके। घटना क्यों, कब, कैसे और किस स्वरूप में हुई, इसी की जानकारी स्रोतों से करते हैं, साक्ष्यों पर पुष्ट करते हैं। इस तरह पुरातन साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन तथा विश्लेषण नवीन साक्ष्यों के आधार पर करते हैं।

3.7 साक्ष्य-विश्लेषण के आधार तत्व

साक्ष्यों का विश्लेषण अत्यन्त आवश्यक है। एक साक्ष्य की प्रामाणिकता को जानने के लिए कई साक्ष्यों का विश्लेषण भी आवश्यक है। इस साक्ष्य-विश्लेषण के कुछ विशेष आधार होते हैं जिनका विवरण निम्नांकित है-

3.7.1- दुर्गम छलांग (Difficult Jump)- एक साक्ष्य की सत्यता की जानकारी हेतु कई साक्ष्यों के विश्लेषण की आवश्यकता होती है। इसलिए साक्ष्यों को ढूंढना अत्यन्त आवश्यक होता है। सम्बद्ध और आवश्यक साक्ष्य बड़ी कठिनता से मिलते हैं। उनकी प्राप्ति के लिए किये जाने वाले प्रयास को कुछ लोग ''दुर्गम छलांग'' की संज्ञा देते हैं। ऐसा इसलिए कि एक साक्ष्य की पुष्टि में जब एक और साक्ष्य मिल जाता है तो स्थिर नहीं रहा जाता अपितु कई अन्य साक्ष्यों को संग्रहीत करके कठिन परिश्रम करने के लिए तैयार रहा जाता है।

3.7.2- घटना का ज्ञान (Knowledge of the event)- गवेषक को घटना का ज्ञान सम्यक् और सम्पूर्ण रूप से होना चाहिए, अन्यथा न तो अन्य सहायक साक्ष्य ढूंढे जा सकेगें और न ही ठीक से उनका मूल्याँकन हो सकेगा। घटना का यदि ज्ञान हो जाये तो भी कथन पक्ष में निश्चयात्मकता न होकर सम्भाविता ही स्पष्ट होनी चाहिए, भले ही वह सम्भावित कहकर लिखी जाय। घटना की जानकारी चाहे जैसे भी, की जानी चाहिए।

3.7.3- स्मृति इतिहास नहीं है (Memory is not history)- स्मृति को ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं स्वीकार किया जा सकता। इब्नबतूता के संस्मरणों का मसविदा मार्ग में कहीं खो गया था। अतः उसने अपनी स्मृति के आधार पर अपने

प्रसिद्ध ग्रन्थ ''रेहला'' की रचना की थी। इसलिए इतिहासकार उसके विवरण को साक्ष्य के रूप में प्रयोग करने में हिचकते हैं। स्मृति के आधार पर व्यक्ति यह तो कह सकता है कि उसने अमुक व्यक्ति को पत्र लिखा था, परन्तु उसका उत्तर आने पर ही उसके कथन की विश्वसनीयता को स्वीकार किया जायेगा। क्योंकि पत्र का उत्तर उसकी सत्यता की प्रामणिकता का साक्ष्य बन जाता है।

3.7.4- प्रमाण (Evidence)- कालिंगवुड का कथन है कि विज्ञान की भाँति इतिहास को भी अपनी समस्याओं को हल करने के लिए वैज्ञानिक विधि के निर्धारण का अधिकार है। यदि घटना का प्रत्यक्षदर्शी, इतिहासकार के प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने में सहयोग नहीं देता है, तो आधुनिक शोधकर्ता उसे पूर्णरूपेण अस्वीकार कर देता है। प्रत्यक्षदर्शी इतिहासकार शोधकर्ता का प्राधिकारी (स्रोत) होता है और उसके कथन को प्रमाण अथवा साक्ष्य (Testimony) कहा जाता है। अतः प्रमाण अथवा साक्ष्य प्राधिकारी का वह कथन है जिसे शोधकर्ता स्वीकार करके अपने इतिहास-लेखन में स्थान देता है। प्राधिकारी के कथन को यथावत स्वीकार करने के पहले शोधकर्ता अन्य ऐतिहासिक स्रोतों से इसकी पुष्टि करता है। इस प्रकार पुष्टि हो जाने के पश्चात प्रत्यक्षदर्शी का कथन जिसे इतिहासकार स्वीकार करता है वही उसका प्रमाण अथवा साक्ष्य हो जाता है।

3.7.5- कैंची तथा गोंद इतिहास (Scissor & Paste History)- ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं के प्रादुर्भाव के पहले अधिकांश इतिहासकार तथ्यों को यथावत् रख देते थे। सम्भवतः वे विश्लेषण की आधुनिक विधाओं से अपरिचित थे। प्राधिकारी के कथन को यथावत् स्वीकार करके इतिहास में स्थान देने को कैंची तथा गोंद की संज्ञा दी गयी है। आधुनिक वैज्ञानिक विधाओं में आस्थावान इतिहासकारों ने इसका विरोध किया तथा इतिहास में तथ्य की अपेक्षा विश्लेषण तथा व्याख्या की प्रधानता को स्वीकार किया। कालिंगवुड का कहना है कि प्राधिकारी के कथन को यथावत् स्वीकार करनें की अपेक्षा अन्य ऐतिहासिक स्रोतों से उसकी पुष्टि की जानी चाहिए। इतिहास के अध्ययन में आलोचनात्मक पद्धति का तात्पर्य

तभी उत्तर एवं निष्कर्ष भी स्पष्ट प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रश्न-प्रक्रिया को हम परिकल्पना (Hypothesis), पूर्वाग्रह अथवा प्रश्नोत्तर कह सकते हैं।

3.7.9- कथन और साक्ष्य (Statement & history)- वैज्ञानिक सोच का इतिहासकार प्राधिकारी के कथन को यथावत् स्वीकार करने के पहले प्रश्न करता है कि इस कथन का क्या अर्थ है? किन परिस्थितियों में प्रत्यक्षदर्शी इतिहासकार ने इस प्रकार का कथन प्रस्तुत किया है।

वैज्ञानिक इतिहासकार प्रत्यक्षदर्शी की परिस्थिति, उद्देश्य तथा मनःस्थिति का अध्ययन करता है। असीरगढ़ के किले की विजय के सम्बन्ध में प्रत्यक्षदर्शी इतिहासकार अबुल फजल ने मात्र इतना ही कहा है कि किले में महामारी के कारण अनेक सैनिकों की मृत्यु हो गयी। परिणामस्वरूप किले पर विजय हो गयी। आधुनिक शोधकर्ता अबुलफजल की परिस्थिति, उद्देश्य तथा मनःस्थिति का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अबुलफजल एक दरबारी इतिहासकार रहा है। वह वास्तविकता का विवरण देकर अपने स्वामी के उज्ज्वल चरित्र पर कलंक का धब्बा नहीं लगाना चाहता था। वास्तविकता यह थी कि अकबर के सैनिक अधिकारियों ने घूस द्वारा किले पर विजय प्राप्त की थी। इसी प्रकार वैज्ञानिक इतिहासकार प्राधिकारी के कथन को यथावत स्वीकार न करके अन्य साक्ष्यों के विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में अपना यथार्थ कथन प्रस्तुत करता है। वह लिपिबद्ध अथवा अन्य ऐतिहासिक स्रोतों में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

3.8 साक्ष्यों की आलोचना

ऐतिहासिक साक्ष्यों की सत्यता को स्थापित करने के लिए आलोचनात्मक पद्धति को अपनाया जाना नितान्त आवश्यक है। कुछ विद्वानों ने वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा स्रोतों की सत्यता को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक साक्ष्यों की विश्वसनीयता के संदेहमय होने के कारण इतिहासकार को सर्वप्रथम वाह्य आलोचना द्वारा उसकी प्रामाणिकता को स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। अज्ञात लेखकों, पत्र-पत्रिकाओं और भाषणों आदि से प्राप्त किये गये साक्ष्य

इतिहासकार के कथन की यथार्थता को सिद्ध करना है। इस प्रकार इतिहास में कैंची और गोंद शैली के लिए स्थान नहीं है। क्योंकि यह इतिहास के वैज्ञानिक स्वरूप में बाधक है।

3.7.6- ऐतिहासिक अनुमान (Historical Inference)- इतिहास पूर्ण रूप से विज्ञान नहीं है, क्योंकि इतिहासकार का निष्कर्ष विज्ञान की भाँति निश्चात्मक नहीं अपितु सम्भावनात्मक होता है। इतिहासकार के पास अपने साक्ष्यों को परखने के लिए वैज्ञानिक की भाँति प्रयोगशाला नहीं होती। साक्ष्यों के आधार पर उसका निष्कर्ष अनुमानात्मक अथवा सम्भावनात्मक होता है। कालिंगवुड ने इतिहासकार के साक्ष्यों के प्रस्तुतीकरण को ऐतिहासिक अनुमान की संज्ञा दी है।

3.7.7- कबूतरी कोटर (Pigeon holing)- इतिहास की कैंची तथा गोंद शैली से असंतुष्ट विको, कांट, हर्डर, हीगेल, काल-मार्क्स, स्पेंगलर, तथा टायनबी जैसे वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों ने ऐतिहासिक स्रोतों के अंतस्थल में प्रवेश करके तथा ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण द्वारा ऐसे निष्कर्ष को प्रस्तुत किया जो इतिहास को विज्ञान के समकक्ष ला सका। इन प्रबुद्ध इतिहासकारों ने अतीत में अन्तर्निहित साक्ष्यों का रहस्योद्‌घाटन किया तथा इतिहास को वैज्ञानिक स्तर प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कालिंगवुड ने इतिहास गवेषणा की विधि की इस विधा को 'कपोति कोटर' की संज्ञा दी है।

8- प्रश्न (Question)- कैंची तथा गोंद शैली के इतिहासकार अतीत का अध्ययन यथावत् करते हैं। वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकार कुछ प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में अतीत का अध्ययन करता है। प्लेटो ने स्पष्ट लिखा है कि वह अपने अतीत से अपने प्रश्नों का उत्तर चाहता है। प्रत्येक सफल इतिहासकार अपने प्रश्नों के अनुसार ऐतिहासिक साक्ष्यों का संकलन तथा निष्कर्ष का प्रस्तुतीकरण करता है। इतिहासकार का प्रश्न समसामयिक समाज का प्रश्न होता है। वह समसामयिक सामाजिक रूचि के अनुसार अतीत से प्राप्त उत्तर प्रस्तुत करता है। कालिंगवुड का कहना है कि इस साक्ष्य-विश्लेषण पद्धति में प्रश्न का स्वरूप स्पष्ट होना चाहिए

अविश्वसनीय होने के साथ ही साथ अवास्तविक भी होते हैं। अतः उनकी सत्यता की जाँच किये बिना उनका प्रयोग करना अनुचित है। वाह्य आलोचना के बाद लेखकों द्वारा आन्तिरक आलोचना के माध्यम से मूल लेख के कथन की विश्वसनीयता को परखा जाता है क्योंकि कभी-कभी प्रत्यक्षदर्शी का कथन भी परिस्थितिवश गलत हो सकता है।

इतिहासकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वाह्य और आन्तिरक आलोचना के बाद ही वह तथ्यों के संकलन, व्याख्या और प्रस्तुतीकरण की ओर ध्यान दे। साक्ष्य की आलोचना संशयवादी होने के स्थान पर बौद्धिक होनी चाहिए। बौद्धिक परिपक्वता के अभाव में इतिहासकार साक्ष्यों को क्रमबद्ध करके अतीत की मानसिक पुनर्रचना नहीं कर सकता है। कालिंगवुड, रांके, डिल्थे तथा बेकर आदि विद्वानों ने तथ्य और साक्ष्य की विश्वसनीयता पर विशेष बल दिया है। उसके अभाव में इतिहास-लेखन सम्भव नहीं है।

3.9 साक्ष्यों की विश्वनीयता के परखने के आधार- (Basis of Recognition of credibility of evidence) प्रो0 गोसचाक के अनुसार ऐतिहासिक साक्ष्यों की विश्वसनीयता चार जाँचों पर निर्भर करती हैः

3.9.1- सत्य कहने की योग्यता- सर्वप्रथम इतिहासकार में सत्य कहने की योग्यता का होना आवश्यक है, जो निम्नांकित तथ्यों पर निर्भर करती हैः - (1) घटना का समय, (2) स्थान की निकटता, (3) पर्यवेक्षक की योग्यता। सत्य को प्रकट करने की योग्यता के अभाव में साक्ष्यों की विश्वसनीयता असंदिग्ध रहती है। अतः इतिहासकार से आशा की जाती है कि साक्ष्य के प्रयोग के पहले उसकी जाँच करें और विश्वसनीयता की स्थापना के बाद ही उन्हें स्वीकार करें।

3.9.2- सत्य कहने की इच्छा- साक्ष्य की विश्वसनीयता की जाँच के लिए केवल सत्य कहने की योग्यता का होना ही अनिवार्य नहीं है अपितु उस सत्य को कहने अथवा प्रस्तुत करने की भावना का इतिहासकार में होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में साक्ष्य की सत्यता-असत्यता की जाँच कदापि सम्भव नहीं है।

सत्य को न कहने के भी कई कारण हो सकते हैं, जिनमें से निम्नलिखित तीन अधिक महत्वपूर्ण हैं-

(क) साक्ष्य के प्रति पूर्वाग्रही विचार

(ख) सत्य को कहने पर किसी के अप्रसन्न होने का भय

(ग) दूसरे के हित के उद्देश्य को ध्यान में रखकर सत्य न कहना

3.9.3- सूचना की सत्यता- सूचना की सत्यता के आधार पर साक्ष्यों की विश्वसनीयता की जाँच की जा सकती है। यदि किसी सूचना के विरूद्ध कोई अन्य सूचना प्राप्त नहीं होती है तो पूर्व सूचना को ही विश्वसनीय स्वीकार किया जाता है। परन्तु कभी-कभी भय के कारण भी अन्य सूचना प्राप्त नहीं होती है और सत्य पर पर्दा पड़ा रहता है। ऐसी स्थिति में असत्य को ही विश्वसनीय मानने की विवशता रहती है, क्योंकि पूर्व सूचना के विरूद्ध कोई अन्य प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ रहता है। अतः साक्ष्यों की विश्वसनीयता संदेहजनक बनी रहती है।

3.9.4- स्वतंत्र परिपुष्टि- जब किन्हीं विद्वानों को दो स्वतंत्र साक्ष्यों की प्राप्ति होती है तो वे दोनों किसी तथ्य की पुष्टि करते हैं, तब उन दोनों तथ्यों की विश्वसनीयता, सत्यता और प्रामाणिकता को स्वीकार कर लिया जाता है। परन्तु दोनों साक्ष्य न तो एक दूसरे से प्रभावित होने चाहिए और न ही उनमें स्वतंत्र परिपुष्टि का अभाव होना चाहिए। कभी-कभी यह भी सम्भव है कि भिन्न-भिन्न दस्तावेजों से जानकारी और तथ्य समान तो होते है, परन्तु उनकी सत्यता की पुष्टि नहीं की जा सकती है, जिसके लिए तथ्य का एक-दूसरे से सम्बद्ध और समन्वित होना अनिवार्य होता है।

वास्तव में इतिहास साक्ष्य तथा इतिहासकार के बीच की अंतर्क्रिया की अविच्छिन्न प्रक्रिया है। साक्ष्य तथा इतिहास का उतना ही घनिष्ठ सम्बन्ध है जितना तथ्य तथा इतिहासकार के बीच होता है। इतिहासकार साक्ष्यों की व्याख्या करता है। उसकी व्याख्या का स्वरूप विषयनिष्ट न होकर वस्तुनिष्ट होना चाहिए। इतिहासकार

को चाहिए कि वह व्याख्या को अपने व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत विचारों से अतिरंजित न करे। यह सत्य है कि वैज्ञानिक तथा इतिहासकार को निष्कर्ष कभी पूर्ण नहीं होते। नवीन साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में अतीत का चित्रण परिवर्तनशील होता है। अतः किसी भी निष्कर्ष को साक्ष्य के आधार पर अन्तिम स्वीकार कर लेना उचित नहीं है।

3.10 बोध-प्रश्न

1- ऐतिहासिक साक्ष्य से आप क्या समझते हैं? उनके विश्लेषण के आधार-तत्वों का वर्णन कीजिए।

2- साक्ष्यों की विश्लेषण-प्रक्रिया पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

3- साक्ष्यों की विश्वसनीयता को परखने के प्रमुख आधार कौन से हैं? बताइए।

4- साक्ष्य की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

5- इतिहासकार और साक्ष्य के परस्पर सम्बन्ध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

3.11 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास दर्शन- झारखण्ड चौबे

2- इतिहास दर्शन- बुद्ध प्रकाश

3- इतिहास क्या है- ई. एच. कार

4- इतिहास दर्शन- परमानन्द सिंह

यूनिट-4:
इतिहास में तथ्य

इकाई की रूपरेखा-

4:0 उद्देश्य
4:1 प्रस्तावना
4:2 ऐतिहासिक तथ्य/परिभाषा
4:3 तथ्यों का निर्माण
4:4 सभी घटनायें तथ्य नहीं होती है?
4:5 तथ्यों का चयन तथा संकलन
4:6 तथ्यों का परीक्षण
4:7 तथ्यों का स्वरूप एवं विभेद
4:8 तथ्य और इतिहास
4:9 तथ्य और इतिहासकार
4:10 तथ्यगत अवधारणायें
4:11 ऐतिहासिक तथ्यों के विविध सिद्धान्त-
4:11.1 इतिहासगत- तथ्यात्मक वैचारिक सिद्धान्त
4:11.2 ऐतिहासिक तथ्यों का व्यक्तिवाद का सिद्धान्त
4:11.3 ऐतिहासिक तथ्यों का समाजवादी सिद्धान्त
4:11.4 ऐतिहासिक तथ्यों का अनुदारवादी सिद्धान्त
4:11.5 सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सिद्धान्त
4:11.6 समस्यावादी तथा मनोविज्ञानवादी सिद्धान्त
4:12 बोध-प्रश्न
4:13 संदर्भ-ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें कि -

- ऐतिहासिक तथ्य क्या है?
- अतीतकालीन घटनायें किस प्रकार से ऐतिहासिक तथ्य बन जाती है।
- ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन/चयन में किन-किन बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है?
- तथ्यों के परीक्षण की क्या प्रक्रिया होती है?
- तथ्य किस प्रकार से इतिहास-सृजन में सहायक होते हैं।
- ऐतिहासिक तथ्यों के विविध सिद्धान्त कौन-कौन से हैं।

4.1 प्रस्तावना :

आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणा में तथ्यों की विशिष्ट भूमिका होती है। तथ्य ही अनुसंधानकर्ता के अध्ययन के पवित्र तथा महत्वपूर्ण आधार होते हैं। गवेषक का सम्पूर्ण कार्य-व्यापार तथ्यों पर ही आधारित होता है। इतिहासकार सावधानीपूर्वक इनका संकलन करता है तथा आधुनिक वैज्ञानिक विधियों के सहयोग से इनका परिष्कार करता है। तदुपरान्त इनके सहयोग से इतिहास-सृजन करता है। इतिहासकार तथ्यों के चयन में सामाजिक रूचि की उपेक्षा किये बिना, सावधानीपूर्वक संकलित, अभिप्राययुक्त, प्रमाणित तथा विश्वसनीय महत्वपूर्ण तथ्यों से अतीत का परिकल्पनात्मक पुनर्निर्माण करता है। इस इकाई में इतिहास-लेखन में ऐतिहासिक तथ्यों की भूमिका की विशद विवेचना की गयी है।

4.2 ऐतिहासिक तथ्य

आधुनिक गवेषणा पद्धति में तथ्य अपना विशेष महत्व रखते हैं। गवेषक का सम्पूर्ण कार्य-व्यापार तथा अध्ययन-निष्कर्ष तथ्यों पर ही आधारित होता है। आधुनिक

ऐतिहासिक गवेषणा में ऐतिहासिक तथ्यों की नई भूमिका की विवेचना करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि ऐतिहासिक तथ्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। इतिहासकार उन सभी वस्तुओं में रूचि रखता है जो अतीतकालिक मनुष्य से सम्बद्ध हैं। कोई कार्य अथवा घटना, कोई भी संवेग जिसकी उसने अभिव्यक्ति की है, कोई भी विचार चाहे वे यथार्थ हों या मिथ्या, किन्तु वह अतीतकालिक घटना का साक्षात्कार नहीं करता, उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध इस घटना के विषय में प्राप्त विवरण से होता है।

ऐतिहासिक तथ्य को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है, जिनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है। तथ्य को परिभाषित करते हुए प्रो० वाल्स कहते हैं कि "एक तथ्य साधारणतः स्वयं व्यवस्थित सिद्धान्त होता है जिसकी विश्वसनीयता के विषय में गम्भीर संदेह न हो।" तथ्यों के सम्बन्ध में इस प्रकार की अवधारणा विज्ञान में सम्भव हो सकती है, इतिहास में नहीं। इतिहास को पूर्णरूपेण विज्ञान मानकर ही वाल्श ने तथ्य के विषय में यह बात कही है। 19वीं शताब्दी के चौथे दशक में विज्ञानवादी, रांके ने इसी आशय से कहा कि- "इतिहास का कार्य सिर्फ इतना है कि वह वस्तुस्थिति से सबको परिचित करा दे"। रांके ने ऐसा इसलिए कहा था कि वह इतिहास को उपदेशात्मक नहीं बनाना चाहता था। डेविड थामसन के अनुसार "सम्पूर्ण समष्टि तथ्य ऐतिहासिक तथ्य होता है।" (डेविड थामसन, द एम आफ हिस्ट्री, लन्दन-1972, पृ04)। हेनरी पिरेन ने एक साधारण घटना और समाज में रहने वाले सभी मनुष्यों के कार्यो एवं उपलब्धियों को ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार किया है (थामसन, पृ037 और रेनियर पृ034)। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि इतिहास में सभी मनुष्यों में कार्यों एवं उपलब्धियों को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्थान नहीं दिया जा सकता। ऐलन बुलाक ने भी यह स्वीकार किया हैं कि ऐतिहासिक तथ्य एक प्रकार का अनुमान होता है। अनुभववादी सम्प्रदाय के इतिहासकारों द्वारा लिखी गयी अच्छी पुस्तक "आक्सफोर्ड सार्टर इंग्लिश डिक्सनरी" में तथ्य को इस तरह परिभाषित किया गया है- "अनुभव के वो

आंकड़े जो निष्कर्ष से भिन्न होते हैं, इसे हम इतिहास का सामान्य दृष्टिकोण कह सकते हैं। इतिहास में हमें जांचे परखे तथ्यों का एक संग्रहीत रूप मिलता है। इतिहासकार को ये तथ्य दस्तावेजों, हस्तलेखों आदि से मिलते हैं। ये सब तथ्य मछुआरे की पटिया पर पड़ी हुई मछलियों की तरह होते हैं। इतिहासकार इन्हें एकत्रित करता है, घर ले जाता है, पकाता है और अपनी पसन्द की शैली में परोस देता है (ई0एच0कार पृ03)।''

अनुभववादी तथा सामान्य ज्ञान सम्प्रदाय के इतिहासकारों का अन्तिम ज्ञान यह है कि पहले सीधे तथ्य अपनाइये फिर उसकी व्याख्या के दलदल में कूद पड़िए। सामान्य ज्ञान दृष्टिकोण के अनुसार कुछ मूलभूत तथ्य होते हैं, जो सभी इतिहासकारों के लिए समान होते हैं, और ऐसे तथ्य ही इतिहास की रीढ़ होते हैं। इतिहास में तथ्यों का ठीक-ठीक विवरण उपस्थित करना हमारा कर्तव्य है। तथ्य की विशेषता यह है कि वे अपनी कथा स्वयं ही कहते हैं। किन्तु आजकल के तथ्य वही कहानी कहते हैं जो उनसे विभिन्न विचारधाराओं के इतिहसकार विभिन्न रूप से कहलवाया करते हैं। इनकी दूसरी विशेषता यह है कि यह चयनात्मक भी होते हैं। महान उदारवादी पत्रकार श्री सी. पी. स्काट के अनुसार ''तथ्य पवित्र हैं'', मन्तव्यों पर कोई बन्धन नहीं है।''

4.3 तथ्यों का निर्माण

हम जानते है कि इतिहासकार अतीतकालिक घटना का साक्षात्कार नहीं करता है। उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध इस घटना के विषय में प्राप्त विवरण से होता है। सभी व्यवहारिक प्रयोजनों के लिए घटना के विषय में प्राप्त विवरण ही ऐतिहासिक तथ्य को बनाता है। इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य अतीतकालिक घटना नहीं है, अपितु एक प्रतीक हैं, जो हमें कल्पना द्वारा उसके पुनर्निमाण में समर्थ बनाती हैं। जहाँ तक ऐतिहासिक तथ्य के स्थान का प्रश्न है, यह किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में होता है अथवा फिर यह कहीं नहीं होता। हम एक सुविज्ञात घटना के उदाहरण से समझें।

14 अप्रैल 1965 में वाशिंगटन में फोर्ड नाट्यशाला में आब्राहम लिंकन की हत्या हुई। जिस समय यह हत्या घटित हुई, यह एक वास्तविक घटना थी, परन्तु अब इसके विषय में कहते हैं कि यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

वास्तविक वृतान्त और तथ्य इनमें चाहे जितना घनिष्ट सम्बन्ध क्यों न हो- दो भिन्न वस्तुएँ हैं। फिर यदि लिंकन की हत्या एक ऐतिहासिक तथ्य है तो यह कहाँ है, वास्तविक घटना तो विलुप्त हो चुकी है और उसका पुनर्प्रत्यक्षीकरण सम्भव नहीं है। इस प्रकार की घटनाओं के धूमिल चित्र बचे रहते हैं जो इतिहासकार के उपादान बनते हैं। कुछ और न पा सकने के कारण वह इनसे ही संतुष्ट होता है और यह धूमिल चित्र अथवा तथ्य इतिहासकार के मस्तिष्क में होते हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि वे लेखों अथवा साक्ष्यों में होते हैं। उदाहरणार्थ- लिंकन की हत्या का विवरण समसामयिक समाचारपत्रों, दैनिन्दियों तथा पत्रों आदि में प्राप्त होता है। किन्तु साक्ष्य अथवा लेख स्वयं किसी व्यक्ति द्वारा प्रणीत हुए हैं, जिसके मस्तिष्क में लिंकन की घटना का चित्रण बना था। कोई भी व्यक्ति द्वारा छोड़े गये साक्ष्य के आधार पर अपने मन में उसी प्रकार के विचार अथवा चित्र बना सकता है जैसा उस व्यक्ति के मस्तिक में बना था। यदि आज कोई भी उन साक्ष्यों अथवा लेखों का अर्थ नहीं जान पाता तो लिंकन की हत्या ऐतिहासिक तथ्य नहीं रह जायेगी।

4.4 सभी घटनायें तथ्य नहीं होती हैं?

तथ्यों के निर्माण में अतीतकालिक घटनाओं के मध्य बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। हेनरी पिरेन के अनुसार ये घटनायें ही ऐतिहसिक तथ्य होती हैं। कार्ल बेकर, सेबोस, ऐनेन बुलाक, आदि विद्वानों के अनुसार ऐतिहासिक तथ्य अतीतकालिक घटना नही, अपितु एक प्रतीक है, जो इतिहासकार को कल्पना द्वारा घटना के पुननिर्माण में समर्थ बनाते हैं। समाज में प्रतिदिन जो घटनायें हुआ करती है वे सबकी सब तथ्य नहीं होती। जब कभी महान व्यक्ति या इतिहासकार छोटी घटना का उल्लेख कर देता है तो वह ऐतिहासिक तथ्य बन जाता है। उदाहरण के लिए यदि

हम यह कहें कि साधारण लोग प्रायः वृद्ध, मृत तथा दुखी लोगों को देखते रहते हैं जिसे उनके लिए एक घटना कहा जा सकता है, किन्तु जब इसे गौतम बुद्ध ने देखा और उससे प्रभावित होकर उन्होंने वैराग्य ले लिया तो वह घटना एक ऐतिहासिक तथ्य बन गयी। इसीलिए यह भी का जाता है कि यदि महान व्यक्ति या इतिहासकार किसी छोटी घटना को लिख देता है तो वह ऐतिहासिक तथ्य बन जाती है। इस तरह भूतकालीन घटना के परिकल्पनात्मक पुनर्निर्माण के लिए ऐतिहासिक तथ्य इतिहासकार के उपादान होते हैं।

4.5 तथ्यों का चयन तथा संकलन

ई0 एच0 कार के अनुसार ऐतिहासिक तथ्य मछली विक्रेता के शिलापट्ट पर सजायी गयी मछलियों की भाँति नहीं हैं, वे अगाध समुद्र में तैरती हुई मछलियों की भाँति होते हैं। यह भाग्य पर निर्भर करता है कि मछुआरा रूपी इतिहासकार समुद्र के किस भाग का चयन करता है तथा किस यंत्र का प्रयोग करता है। ये दोनों कारक उसके चयन को निर्धारित करते हैं कि इतिहासकार किस प्रकार के तथ्यों का संकलन करना चाहता है।

इतिहासकार केवल उन्हीं तथ्यों का संकलन करता है जिसने अतीत की घटना को प्रभावित किया है। ऐतिहासिक तथ्य सामाजिक होता है क्योंकि उसने समसामयिक अतीत में सामाजिक व्यक्तियों के विचारों को प्रभावित किया है। सी. एल. बेकर का कहना है कि व्यक्तियों का विचार ऐतिहासिक तथ्य के परिवर्तन की सामर्थ्य रखता है। इस प्रकार एक सामान्य तथ्य भी ऐतिहासिक तथ्य बन जाता है। किसी महान इतिहासकार द्वारा उसका प्रयोग किया जाता है।इतिहासकार अगाध तथ्यों में केवल उन्हीं तथ्यों का चयन करता है जो उसके वर्णन को सरल और सुबोध बना सके (ई. एच. कार., पृ014)। इस प्रकार इतिहासवाद में कोई भी तथ्य निरपेक्ष नही होता है।

ई. एच. कार का ऐतिहासिक तथ्य के सम्बन्ध में निष्कर्ष है कि ऐतिहासिक तथ्य शुद्ध नहीं होता और इतिहासकार को कभी शुद्ध तथ्य भी प्राप्त नहीं होता। ऐतिहासिक तथ्य-सम्बन्धी अपने निष्कर्ष में एडम स्कैफ ने प्रख्यात विद्वान विटोल्ड कुला को उध्रित करते हुए कहा है कि प्रत्येक तथ्य का संकलन तथा चयन समाज सम्बन्धी ज्ञान तथा उसकी प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है। परन्तु सापेक्षवादी विचारकों ने तथ्यों की प्रामाणिकता को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया है। उनका तर्क है कि इतिहासकार द्वारा संकलित तथ्यों का चयन तथा परित्याग और उनके द्वारा रचित इतिहास सामाजिक रूचि तथा आवश्यकता मात्र की पूर्ति करता है। ऐसी रचना में इतिहासकार की व्यक्तिगत रूचि तथा सामाजिक अकांक्षाओं का प्रस्तुतीकरण निर्णायक होता है।

4.6 तथ्यों का परीक्षण

सर्वथा ज्ञात है कि तथ्य पूर्ण रूपेण शुद्ध नही होते हैं। इसलिए इनको स्वीकार करने के पूर्व इनकी सत्यता की जाँच आलोचनात्मक विधि से कर लेनी चाहिए। यह आलोचना दो प्रकार से हो सकती है- वाह्य प्रकार से और आन्तरिक प्रकार से। तथ्यों की प्राप्ति हमें मुख्यतः अभिलेखों, शिलालेखों तथा मुद्राओं आदि से होती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि ये प्रलेख आदि भी किसी न किसी इतिहासकार के मस्तिष्क की ही उपज होगें। अतः इन्हें तथ्य मान लेना हमारी भूल होगी। ये प्रलेख सहायक सामग्री के रूप में इतिहास के साधन ही कहे जा सकते हैं, इतिहास नहीं। परन्तु इतना सच है कि ये इतिहास को जानने में सहायक होते हैं, बाधक नहीं। प्रो. ई. एच. कार के अनुसार– ''तथ्य और दस्तावेज निश्चय ही इतिहासकार के लिए आवश्यक होते हैं परन्तु उसके लिए वे अन्धश्रद्धा की वस्तु नहीं होते। दस्तावेज और तथ्य अपने आप में इतिहास नहीं होते, और न ही इतिहास क्या है? जैसे थका देने वाले प्रश्न के वे बने-बनाये उत्तर ही होते हैं''। इसीलिए वार वाल्क ने कहा है कि हम जो भी इतिहास-ग्रन्थ पढ़ते हैं वह यद्यपि तथ्यों पर

आश्रित हैं, किन्तु तथ्यात्मक तो नहीं ही है, वे तो इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत मान्यताओं का एक संग्रहालय है। ये ही ऐतिहासिक तथ्य के साधन कहलाते हैं।

4.7 तथ्यों का स्वरूप एवं विभेद

तथ्यों का स्वरूप प्रायः दो प्रकार का होता है- सामान्य तथ्य और ऐतिहासिक तथ्य। ऐतिहासिक तथ्य चयनात्मक भी होते हैं। सामान्य तथ्य किस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य बनते हैं, उसे पहले देखा जा चुका है। बेवर का कहना है कि प्रत्येक ऐतिहासिक तथ्य में कुछ ऐसे तत्व होते हैं जिनके उद्‌गम-स्रोत अनेक होते हैं। इतिहासकार द्वारा चयन किया हुआ तथ्य ऐतिहासिक होता है। इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य दो श्रेणी के होते हैं। प्रथम वे जो अतिसामान्य होते हुए भी इतिहासकारों के कारण ऐतिहासिक तथ्य के रूप में प्रसिद्ध जो जाते हैं और दूसरे वे जो कालान्तर में स्वयं प्रसिद्धि पाकर महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य बन जाते हैं। ये तथ्य कोमल और कठोर भी होते हैं। कठोर तथ्यों को इतिहासकार अपनी इच्छानुसार नहीं बदल सकता। जैसे- 15 अगस्त सन् 1947 को भारत आजाद हुआ, कहने पर हम पायेगें कि 15 अगस्त सन् 1947, भारत और स्वतंत्रता ये कठोर ऐतिहासिक तथ्य हैं जिनका न तो चयन और न ही परिवर्तन सम्भव है। कोमल तथ्य वे होतें हैं जिनका व्याख्यात्मक वर्णन हो सकता है। जैसे- आजादी की लड़ाई में महात्मा गांधी की विजय और अंग्रेजों की पराजय का व्याख्यात्मक ढंग से वर्णन कर सकते हैं। प्रो0 कार के अनुसार कठोर तथ्य बुलवायें नही जा सकते, जबकि कोमल तथ्य बुलवाये जा सकते हैं। रेनियर ने कठोर तथ्य को 'सुस्थित' अथवा 'सुनिश्चित' तथ्य कहकर सम्बोधित किया है और उसमें घट-बढ़ को असम्भव बतलाया है।

पूर्वोक्त प्रकार के कोमल और कठोर तथ्यों को अन्य प्रकार से हम स्वरूप वाला घोषित कर सकते हैं, यथा- व्यक्तिवादी तथ्य, समस्यावादी तथ्य, समाजवादी तथ्य, अनुदारवादी तथ्य, सामाजिक नैतिक तथ्य, मनोविज्ञानवादी तथ्य, औपन्यासिक तथ्य, संख्यात्मक तथ्य, भाग्यवादी तथ्य, विद्रोही तथ्य इत्यादि।

4.8 तथ्य और इतिहास

तथ्य और इतिहास के बीच अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। तथ्य सदैव इतिहास से जुड़े हुए होते हैं। इसीलिए इतिहास को निश्चित तथ्यों का क्रमबद्ध संग्रह कहा जाता है। सर जॉन क्लार्क ने इतिहास की तुलना एक गूदेदार फल से की है जिसमें उन्होनें ने तथ्यों को गुठली कहा है, जिसमें फल का बीज निहित होता है तथा उन तथ्यों से निकाले गये विभिन्न निष्कर्षों को फल का गूदा कहा है जो जायकेदार होता है, हालांकि उसमें उत्पादन क्षमता का अभाव होता है। इतिहास के तथ्यों को वह निश्चित और निष्कर्षों को अनिश्चित मानते हैं। तथ्य अपरिवर्तनशील होते हैं क्योंकि वे पवित्र होते हैं। इतिहासकार स्वतंत्रतापूर्वक मत-निर्माण कर सकते हैं और किसी भी तथ्य से किसी प्रकार का निष्कर्ष भी निकाल सकते हैं। इसी आधार पर कहा जाता है कि हम जो भी इतिहास-ग्रन्थ पढ़ते हैं वह यद्यपि तथ्यों पर आधारित होता है किन्तु वह तथ्यात्मक तो नहीं ही है, वह तो इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत मान्यताओं का संग्रह मात्र है। बैर क्लाफ के अनुसार यद्यपि इतिहास तथ्य पर आश्रित होता है परन्तु कुछ तथ्य ऐतिहासिक तथ्य न होकर मान्यताप्रदत्त विचार होते हैं। इतिहास में यथातथ्य होना एक दायित्व है, कोई गुण नहीं। तथ्य इतिहास की रीढ़ होते हैं इसलिए इतिहास में अधिकाधिक तथ्यों को संकलित करने की बात कही जाती है। परन्तु फिर भी इतिहास केवल तथ्यों का संकलन नहीं है।

4.9 तथ्य और इतिहासकार

इतिहास-लेखन में यह बात सर्वदा सत्य है कि ऐतिहासिक तथ्य और इतिहासकार दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिये हैं। बिना तथ्य के इतिहासकार अपंग है तथा इतिहासकार के अभाव में तथ्य निर्जीव हैं। तथ्य इतिहासकार से अन्योन्याश्रित रूप से सम्बद्ध होते हैं। इतिहासकार उन्हें एक निश्चित विधि से प्रस्तुत करता है। वह पहले तथ्यों का संग्रह करता है, कालक्रमानुसार क्रमबद्ध करता है और फिर उसे व्यवस्थित रूप में पाठकों के सम्मुख रखता है। समुचित तथ्यों को समुचित रूप में

व्यवस्थित करके लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करने में उनका आकर्षण एवं महत्व भी बढ़ जाता है। इतिहास के तथ्य भी वहीं कहानी कहते दिखायी देते हैं जो इतिहासकार उनसे कहलवाना चाहता है। किसी घटना को कितना महत्व दिया जाय और उससे कितना और कहलवाया जाय यह निश्चय करना एक इतिहासकार का ही कार्य है।

ऐतिहासिक गवेषणा में इतिहासकार वैज्ञानिक-पद्धति का अनुश्रवण करते हुए सर्वप्रथम तथ्यों को खोज निकालता है, उन्हें ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान करता है और कुछ को इतिहासगत तथ्यों के समान पाकर भी उन्हें अनैतिहासिक करते हुए छोड़ता चला जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि इतिहासकार प्रधान होता है और तथ्य उसकी तुलना में गौड़ स्थान रखते हैं । परन्तु यह स्पष्टतः नही कहा जा सकता, क्योंकि ऐतिहासिक तथ्यों तथा इतिहासकार में प्रधानता का विचार करना बहुत कठिन कार्य है। इस प्रकार तथ्य तथा इतिहास के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध ही दिखायी पड़ता है।

इतिहास-लेखन में सामान्य ज्ञान दृष्टिकोण से यदि देखा जाये तो हमें कुछ मूलभूत तथ्य ऐसे दिखायी पड़ते हैं जो सभी इतिहासकारों के लिए समान हैं। ये कच्चे माल की तरह होते हैं, जिनका प्रयोग इतिहासकार इतिहास-निर्माण में करता है। जनभावना के अनुरूप चुने हुए तथ्यों को उचित विधि से प्रस्तुत किया जाता है। तथ्यों को प्रस्तुत करना ही इतिहासकार का कार्य है। इतिहास स्वयं को स्वतः ही प्रस्तुत नहीं कर पाता है। इतिहास के तथ्य किसी भी इतिहासकार के लिए तब तक अस्तित्व में नहीं आते जब तक वह इनका निर्माण नहीं करता। प्रो. ई. एच. कार के अनुसार इतिहासकार न तो अपने तथ्यों का क्रीतदास होता है, न ही उनका निरंकुश शासक। प्रो. जी. सी. पाण्डेय ने लिखा है कि इतिहासकार का अपने तथ्यों के साथ बराकर का स्तर होता है। दोनों एक दूसरे के लिए आवश्यक होते हैं। तथ्यों के बारे

में तो यहाँ तक कहा गया है कि हमें तथ्यों की खोज है और जीवन में केवल तथ्यों की ही आवश्यकता है।

4.10 तथ्यगत अवधारणायें

तथ्यों के संदर्भ में कुछ इतिहासकारों की भी अपनी अवधारणायें है। इतिहास के निर्माण में टायनबी ने समाज से सम्बद्ध सभी तथ्यों को नहीं अपितु केवल क्रमशः विकसित समाज की सभ्यताओं से सम्बद्ध ऐतिहासिक तथ्यों को अंगीकार करने की सहमति दी है। उनके अनुसार ऐतिहासिक स्रोतों की संकलित सूची होने पर इतिहासकार के लिए तथ्य संकलन-कार्य सरल हो जाता है, किन्तु नैतिकता तथा निहितार्थता के परिप्रेक्ष्य में ही तथ्यों का अन्वेषण किया जाना उचित होता है। उनका यह विचार उचित लगता है क्योंकि इतिहास के ऐतिहासिक तथ्यों के पीछे व्याख्या होती है और ऐतिहासिक व्याख्या में नैतिक निर्णय संयुक्त रहते हैं (ई0 एच0 कार पृ079-823)।

इतिहासकार को अपना निर्णय भी देना होता है। इसे ही नैतिक-न्याय भी कहते हैं। टायनबी ने तथ्य-संकलन में वैज्ञानिक तकनीक प्रयोग करने पर बल दिया है। उनकी परामर्श है कि तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन करके विश्वसनीय तथा आवश्यक तथ्यों को ग्रहण करके अनावश्यक एवं अविश्वसनीय तथ्यों का त्याग कर देना चाहिए।

आर. जी. कालिंगवुड की मान्यता है कि सभी इतिहास विचारों का इतिहास है, अतएव तथ्य कुछ नहीं होते अपितु सब कुछ उनकी व्याख्या ही होती है। अतः इतिहास तथ्यों का इतिवृत्तात्मक विवरण मात्र न होकर विचारों की अभिव्यक्ति है। इनका अध्ययन एक अनुभूति है, वाह्य तथ्यों का निरूपण नहीं। अन्यत्र वह इतिहास को कतिपय तथ्यों का संकलन मात्र मानते हैं। प्रो0 कार ने तथ्य को विज्ञान से सम्बद्ध करते हुए उसकी तरह-तरह की व्याख्या की है, जिसे पहले बतलाया जा चुका है।

4.11 ऐतिहासिक तथ्यों के विविध सिद्धान्त

इतिहास दर्शन में ऐतिहासिक तथ्यों पर विविध सिद्धान्त मिलते है-

4.11.1 इतिहासगत-तथ्यात्मक वैचारिक सिद्धान्त

4.11.2 ऐतिहासिक तथ्यों का व्यक्तिवाद का सिद्धान्त

4.11.3 ऐतिहासिक तथ्यों का समाजवादी सिद्धान्त

4.11.4 ऐतिहासिक तथ्यों का अनुदारवादी सिद्धान्त

4.11.5 सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सिद्धान्त

4.11.6 समस्यावादी तथा मनोविज्ञानवादी सिद्धान्त

4.11.1 इतिहासगत-तथ्यात्मक वैचारिक सिद्धान्त

इतिहास में हमें तथ्यों के संदर्भ में जो विविध सिद्धान्त मिलतें हैं उनमें यह सिद्धान्त विशेष महत्व रखता है। 19वीं शताब्दी में जब इतिहास में तथ्यों की बहुलता थी और उनके विषय में किसी प्रकार की शंका भी न थी तो उन्हें इस बात पर विचार करने की आवश्यकता ही समझ में नहीं आती थी कि इतिहास क्या है? इधर 50-60 वर्ष पूर्व इतिहास विषय में सर्वप्रथम जर्मनी के लोगों का ध्यान गया और उन्होंने तथ्यों पर विचार करना प्रारम्भ किया। फिर इटली के क्रोसे ने ध्यान दिया और इतिहास में अतीत को वर्तमान के संदर्भ में प्रस्तुत किया। इसके बाद 1910 ई0 में अमेरिका के कार्ल बेकर ने भी इधर यह शब्द मुखरित किया कि इतिहास में तथ्यों की स्वयं कोई स्थिति नही होती बल्कि वे तभी हमारे सामने आ सकते हैं जब कोई इतिहासकार उन्हें सामने लाता है।

4.11.2 ऐतिहासिक तथ्यों का व्यक्तिवाद का सिद्धान्त

सम्प्रति इतिहास में व्यक्तिवाद का बहुत प्राबल्य हैं। जीवन की विकास-यात्रा के प्रारम्भिक चरण में मानव ने अपने को जाति, परिवार, संघ, समाज के रूप में

देखा था किन्तु अब वह अपने को व्यक्ति के रूप में देखता है। व्यक्तिवाद को पूंजीवाद तथा प्रोटेक्टिज्म ने अधिक प्रसारित किया। औद्योगिक क्रान्ति ने इसे सम्बल दिया। फ्रांस की राज्यक्रान्ति होने पर व्यक्ति के अधिकारों की घोषणा की गयी। तत्कालीन उपयोगितावादी दार्शनिकों ने भी अपने तर्कों के आधार पर इस सिद्धान्त को सम्मान दिलाया।

4.11.3 ऐतिहासिक तथ्यों का समाजवादी सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का विकास मुख्यतः परतंत्र देशों के हित में हुआ और व्यक्तिवाद के स्थान पर प्रजातंत्रीय समाजवाद की स्थापना की गयी। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि व्यक्ति प्रत्येक दशा में एक सामाजिक व्यक्ति होता है और समाज से पृथक और उसका कोई अस्तित्व नहीं है।

4.11.4 ऐतिहासिक तथ्यों का अनुदारवादी सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रिटिश इतिहासकार सॅर लेविस नेवियर ने उस समय किया जब वह स्वयं अनुदारवादी थे और संसार में जो भी उस समय सत्ता परिवर्तन का कार्य होता था वह ब्रिटिशजन के हित में होता था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उदारवादी विचारधारा को आघात् पहुँचा था अतएव ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वाभाविक था।

4.11.5 सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार इतिहासकार उन्हीं तथ्यों का चयन करता है जो उसके देश और समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध होते हैं। जर्मनी के मेने ने यही किया था और जर्मनी के पतन तक की कहानी को जब तीन खण्डों में प्रकाशित कराया तो उसमें सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का ही प्रभाव पाया गया। तभी से इस सिद्धान्त को लोगों ने स्वीकार किया कि व्यक्ति अपने समाज और इतिहास की उपेक्षा नहीं कर सकता।

ऐसे ही समस्यावादी, मनोविज्ञानवादी आदि सिद्धान्त भी हैं जिन्हें हम आधुनिक युग का तथ्यगत सिद्धान्त कह सकते हैं। कुछ लोगों ने इतिहास में संख्यात्मक तथ्य एवं भाग्यवादी तथ्यों को लेकर सिद्धान्तों का सज़ृन कर डाला है। कुछ ने तथ्यगत असंतुष्ट दल (विद्रोहियों) के विचारों को भी सिद्धान्तों के रूप में मान्य किया है।

उपरोक्त विमर्श से स्पष्ट होता है कि इतिहास में तथ्यों का सूक्ष्म अध्ययन बड़ी तेजी से हो रहा है और इसमें लोग तरह-तरह से चिन्तन-मनन करके एक नये सिद्धान्त का सज़ृन करते जा रहे हैं। ज्ञान-विज्ञान के विकास के साथ-साथ यदि ऐसा होता जा रहा है तो हमें इस पर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है।

4.12 बोध-प्रश्न

1- ऐतिहासिक तथ्यों पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

2- ऐतिहासिक तथ्य को परिभाषित कीजिए तथा इनके बारे में विविध इतिहासकारों के विचारों का वर्णन कीजिए।

3- ऐतिहासिक तथ्य क्या हैं? क्या सभी घटनाएँ ऐतिहासिक तथ्य हो सकती हैं। समझाइए।

4- तथ्यों के संकलन तथा परीक्षण-प्रक्रिया पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

5- इतिहास में तथ्यों के सम्बन्ध में मिलने वाले विविध सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

4.13 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास दर्शन : ई. एच. कार
2- इतिहास : स्वरूप एवं सिंद्धान्त : प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय
3- इतिहास दर्शन : परमानन्द सिंह
4- इतिहास दर्शन : झारखण्ड चौबे

इकाई- 5

इतिहास में वस्तुनिष्ठता

इकाई की रूपरेखा

5:0 उद्देश्य

5:1 प्रस्तावना

5:2 वस्तुनिष्ठता का अभिप्राय

5:3 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता

5:4 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्यायें-

5:4.1 निष्पक्षता का अभाव

5:4.2 सामाजिक परिवेश का प्रभाव

5:4.3 इतिहास में परिवर्तनशीलता

5:4.4 मान्यताओं में परिवर्तन

5:4.5 व्यक्तिगत भावनाओं का प्रभाव

5:4.6 युगयुगीन सामाजिक आवश्यकताएँ

5:4.7 पूर्वाग्रह की भावना

5:4.8भावों की प्रधानता

5:4.9 इतिहास का चयनात्मक स्वरूप

5:4.10 धर्म तथा जाति की समस्या

5:4.11 राजनीतिक दृष्किोण

5:4.12 परिवर्तनशील सामाजिक मूल्य

5:5 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता

5:6 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समीक्षा

5:7 बोध-प्रश्न

5:8 संदर्भ-ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें कि-

- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का क्या अभिप्राय है?
- वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में मूलभूत क्या अन्तर है?
- क्या इतिहास-लेखन में वस्तुनिष्ठता आवश्यक है?
- क्या ऐतिहासिक निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ हो सकता है?
- क्या हम इस तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं कि इतिहास विज्ञान की भाँति वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता।
- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधायें कौन हैं?
- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में आने वाली बाधायें को कैसे दूर किया जा सकता है?

5.1 प्रस्तावना

वस्तुनिष्ठता आधुनिक वैज्ञानिक विधा की विशेषता है। इसका अभिप्राय यह है कि कोई वैज्ञानिक समुचित विधि तथा नियमों के आधर पर प्रयोगशाला में सिद्ध निष्कर्ष को प्रस्तुत करता है तो सभी वैज्ञानिक उस गवेषणा को स्वीकार करेगें। ऐतिहासिक अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की अवधारणा का अधार आधुनिक वैज्ञानिक सोच है। भौतिक विज्ञान की आश्चर्यजनक उपलब्धियों ने अर्धशताब्दी पूर्व अनेक इतिहासकारों को विचार-विमर्श के लिए बाध्य किया कि अन्य विधियों का परित्याग कर इतिहास को वैज्ञानिक उपादानों से परिष्कृत किया जाय तो इतिहास की उपादेयता एवं महत्व में बृद्धि होगी। यहीं पर इतिहास-सम्बन्धी वैज्ञानिक अवधारणा जन्म लेती

है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक-इतिहास की प्रथम प्रसूति है जिसका उद्देश्य ऐतिहासिक निष्कर्षों को सार्वभौम तथा सार्वकालीन बनाने के अतिरिक्त इतिहास की उपयोगिता एवं उसके महत्व में बृद्धि करना है। इस इकाई में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के व्यवहारिक स्वरूप को समझने का प्रयास किया गया है।

5.2 वस्तुनिष्ठता का अभिप्राय

किसी भी अध्ययन का निष्कर्ष तथा ज्ञान का स्वरूप प्रायः दो प्रकार का होता है- वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ। वस्तुनिष्ठता एक प्रकार का ऐसा ज्ञान है जिसमें ज्ञान का स्वरूप पूर्णतया वस्तु द्वारा निर्धारित होता है। जिस ज्ञान में वस्तु के अतिरिक्त कोई दूसरा प्रभावीकारक प्रभाव नहीं डाल पाता, उसे वस्तुनिष्ठ ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान में उस व्यक्ति का जिसके मन में ज्ञान की उत्पत्ति होती है; उसका ज्ञान के स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ज्ञान के लिए वस्तु और व्यक्ति दोनों आवश्यक है। इसीलिए ज्ञान दो प्रकार (वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ) का होता है। यदि व्यक्ति अपने आप वस्तु के स्वरूप मे कुछ जोड़ नहीं रहा है तो ऐसे ज्ञान को वस्तुनिष्ठ ज्ञान कहते हैं। जैसे- जब आकाश में बादल छा जाने पर वैज्ञानिक कहता है कि बादल वास्तव में पानी की बूदें हैं और वह H_2O के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है तो यह ज्ञान वस्तुनिष्ठ ज्ञान है। लेकिन यदि उस बादल को व्यक्ति अपनी बातों से युक्त करता है तो वह ज्ञान व्यक्तिनिष्ठ माना जायेगा।

वस्तुनिष्ठ ज्ञान गणित के नियमों की भाँति सदैव एक होता है। इसमें मतों की विभिन्नता नहीं पायी जाती और वस्तुनिष्ठ ज्ञान का निष्कर्ष स्वयं निकल आता है। वस्तुनिष्ठ ज्ञान के स्वरूप पर स्थान, काल, पात्र आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वस्तुनिष्ठ ज्ञान के सर्वोत्तम उदाहरण गणित के नियम हैं।

5.3 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता

इतिहास में वस्तुनिष्ठता की खोज आधुनिक वैज्ञानिक सोच का परिणाम है। विगत तथा वर्तमान सदी के अधिकांश इतिहासकारों ने इतिहास को विज्ञान स्वीकार

किया है। वैज्ञानिक विधा में निष्ठावान इतिहासकारों की अवधारणा है कि वे इतिहास के स्वरूप के निष्कर्ष को सार्वभौमिक तथा सर्वकालीन बनाने के लिए प्रत्यनशील हैं। यदि इतिहास को विज्ञान स्वीकार कर लिया जाय तो इसमें वस्तुनिष्ठता अपेक्षित है।

परन्तु वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों के प्रयास के बावजूद ऐतिहासिक निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ नहीं बन सका है, क्योंकि इतिहास मानवीय उपलब्धियों का विवरण है। मानवीय क्रियाकलापों के सम्बन्ध में सभी का एकमत होना सम्भव नहीं है।

5.4 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ

इतिहास में वस्तुनिष्ठता के सम्बन्ध में यह निर्विवाद है कि इतिहास में विज्ञान जैसी वस्तुनिष्ठता नहीं हो सकती, क्योंकि इतिहास में विज्ञान की तरह एकरूपता नहीं मिलती और इतिहास में मत-मतान्तर मिलता है। ऐतिहासिक ज्ञान में स्थान, काल और पात्र का भी प्रभाव पाया जाता है और घटनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त विभिन्नता पायी जाती है। जैसे – फ्रांस की क्रान्ति के कारणों के सम्बन्ध में फ्रांस और ब्रिटेन के इतिहासकारों में मतभेद है।

इतिहासकार को इतिहास-लेखन के लिए साक्ष्यों का संग्रह, चयन, जाँच और व्याख्या करना आवश्यक है जिसमें इतिहासकार को स्वतंत्र निर्णय लेने की आवश्यकता पड़ती है। इतिहास की परिकल्पनाओं के अनुसार इतिहासकार को अपना मत भी प्रतिपादित करना पड़ता है। इस तरह इतिहास पर इतिहासकार के व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इसलिए इतिहास मे विज्ञान या गणित की भाँति वस्तुनिष्ठता सम्भव नहीं है।

इतिहास-अध्ययन की वैज्ञानिक विधा में आस्था रखने वाले इतिहासकारों ने ऐतिहासिक अध्ययन के निष्कर्ष को सर्वकालिक तथा विश्वजनीन बनाने में सर्वथा प्रयासरत हैं। किन्तु ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ अद्यतन गम्भीर और

जटिल बनी हुई हैं। इनके समाधान के पश्चात ही ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता से सम्बन्धित वैज्ञानिक इतिहासकारों के प्रयास को मान्यता प्रदान की जा सकती है। नीचे की पंक्तियों में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में आने वाली समस्याओं के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है।

5.4.1 निष्पक्षता का अभाव

डार्डेल का मत है कि कोई भी पदार्थ स्वयं वस्तुनिष्ठ नहीं होता अपितु उसमें वस्तुनिष्ठता को स्थापित किया जाता है। आधुनिक विद्वान वाह्य विधाओं से इतिहास को वस्तुनिष्ठ बनाना चाहते हैं जिसके कारण वस्तुनिष्ठता का प्रश्न विद्वानों, लेखकों तथा दार्शनिकों के बीच विवाद का विषय बन गया है। अपने मत को स्थापित करने के लिए आधुनिक इतिहासकार अतीत का वर्णन किसी विशेष दृष्टिकोण, अवधारणा, संस्कार, व्यक्तिगत ईर्ष्या, द्वेष अथवा भ्रान्ति के संदर्भ में प्रस्तुत करता है जो कभी भी निष्पक्ष नहीं होता है। इस पक्षपातपूर्ण वर्णन के कारण ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता विद्वानों के बीच विवादास्पद बनी हुई है। कार्ल मार्क्स, स्पेंगलर, तथा कार्ल मेनहीम ने विशेष दृष्टिकोण से अतीतकालीन घटनाओं की व्याख्या की है। प्रो0 वाल्श ने तो स्पष्ट लिखा है कि इतिहास का अध्ययन दृष्टि विशेष से करना चाहिए। अतः यदि इतिहास-अध्ययन में दृष्टिविशेष को प्रधानता दी जायगी तो ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की कल्पना करना व्यर्थ है।

5.4.2 सामाजिक परिवेश का प्रभाव

कार्ल मार्क्स का कहना है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है । इतिहासकार का भी जन्म, पालन-पोषण तथा विकास समाज, संस्कार तथा धार्मिक परिवेश में होता है। उस समाज, संस्कार तथा धार्मिक परिवेश का प्रभाव स्वाभाविक है। अतः कोई भी इतिहासकार अपने को इन प्रभावों से मुक्त नहीं कर पाता है। कार्ल मार्क्स ने स्पष्ट लिखा है कि वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों को समाज के बाहर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता ढूँढनी चाहिए। मार्क्स का कथन यथार्थ प्रतीत होता है-

"संस्कार तथा सामाजिक वातावरण के कारण ही अरब-यहूदी, हिन्दू-मुस्लिम, रूसी-अमेरिकी इतिहासकारों में मतभेद है।"

5.4.3 इतिहास में परिवर्तनशीलता

निःसंदेह इतिहास अतीत की घटनाओं का अध्ययन है जिसे अलग-अलग युग के इतिहासकारों ने अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। मैडलबॉम की भी मान्यता है कि प्रत्येक पीढ़ी का इतिहासकार अपने युग की आवश्यकता के अनुसार इतिहास लिखता है । दास प्रथा को यदि किसी युग में वरदान लिखा गया है तो वर्तमान में उसे अभिशाप माना जाता है। अतः इतिहास में परिवर्तनशीलता के कारण वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की कल्पना एक दुःस्वप्न है।

5.4.4 मान्यताओं में परिवर्तन

इतिहास में किंवदंत्तियाँ किसी युग में प्रमाणिक तथा मान्य थीं, किन्तु अब वे मानव-इतिहास की उपेक्षित वस्तुसामग्री बन गयी हैं। उसी प्रकार वर्तमान कालिक ऐतिहासिक प्रामाणिकता तथा मान्य तथ्य भविष्य में उपेक्षित हो जायेगें। ऐसी परिस्थिति में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की तुलना में सार्वभौमिक तथा सर्वयुगीन नहीं हो सकती। 2+2=4 सार्वभौमिक तथा सर्वकालिक तथ्य है। विशेष परिस्थिति में सूर्य तथा चन्द्र-ग्रहण होता है। अतः वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता को चुनौती नहीं दी जा सकती है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का स्वरूप सार्वभौमिक तथा सर्वयुगीन नही हो सकता।

5.4.5 व्यक्तिगत भावनाओं का प्रभाव

बियर्ड से स्पष्ट लिखा है कि ऐतिहासिक तथ्यों के चयन में इतिहासकार का दृष्टिकोण, व्यक्तिगत भावनाओं, सामाजिक वातावरण तथा आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि उसके द्वारा ऐतिहासिक नियमों की अवहेलना हो जाये, जिसके कारण उससे वस्तुनिष्ठता की आशा करना

कहा है जबकि भारतीय इतिहासकार उसे स्वतंत्रता-संग्राम की संज्ञा देते हैं। जी. एम. ट्रेवेलियन ने इसी आधार पर यह उल्लेख किया है कि इतिहास में द्वेष तथा सहानुभूति का होना स्वाभाविक है। वह अपनी तथा सामाजिक रूचि के संदर्भ में अतीत के व्यक्तियों, उनके कार्यों तथा उपलब्धियों का वर्णन करता है। इस प्रकार उसका प्रस्तुतीकरण विषयनिष्ठ होता है । बेवर का भी कथन है कि वस्तुनिष्ठता एक दोष है क्योंकि इतिहास में इस उद्देश्य की प्राप्ति अत्यन्त जटिल है।

5.4.8 भावों की प्रधानता

इतिहास-लेखन तर्कप्रधान न होकर भावप्रधान होता है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् रांके ने कहा है कि इतिहास-लेखन अन्तश्चेतना का विषय है, जिसका भावप्रधान होना स्वाभाविक है। इतिहास में तर्क तथा विवेक के लिए स्थान नहीं हैं। जी. पी. गूच ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है कि- हाड़-मांस से बने लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मुद्रित पृष्ठों में होती है। अतः व्यक्तिगत भावनाओं को इतिहास-लेखन से अलग कर वस्तुनिष्ठ बनाना एक असम्भव प्रयास होगा। हेनरी पिरेन के अनुसार इतिहासकार का विषय स्वयं समाज होता है। उसका कार्य अपने ही तरह के मनुष्यों से सम्बन्धित घटनाओं को समझना तथा उसका विवरण प्रस्तुत करना है। वह कितना ही निष्पक्ष क्यों न हो पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ नही हो सकता है। उसकी रचना में समय की अभिव्यक्ति अपने आप होती रहती है। समसामयिक संस्कृतियाँ उसके दृष्टिकोण का निर्धारण करती हैं। रेनियर के अनुसार इतिहासकार अपनी रचना के माध्यम से अपने युग के व्यक्तियों को सम्बोधित करता है, जिसका वह स्वयं सदस्य है। इससे तो स्पष्ट हो जाता है कि इतिहासकार की रचना को समसामयिक समाज, संस्कृति तथा वातावरण प्रभावित करते हैं। इतिहासकार भी परिस्थितियों की उपज होते हैं। समय लेखक को तथा लेखक समसामयिक समाज को प्रभावित करता है। हिन्दी साहित्य में वीरगाथा काल, भक्ति काल तथा रीतिकाल की रचनाएँ इसका स्पष्ट प्रमाण हैं (मैडलबाम, पृ0-1)।

उचित नहीं है। कार्ल बेकर ने स्पष्ट लिखा है कि इतिहास की पुनर्रचना प्रत्येक मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं के अनुकूल की जाती है। औरंगजेब के सम्बन्ध में सर यदुनाथ सरकार तथा फारूखी की रचनाएँ व्यक्तिगत भावनाओं से प्रभावित हैं। इतिहास में व्यक्तिगत भावनाओं को प्रधानता देने का तात्पर्य ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा करना है। जब इतिहासकार अपनी भावनाओं के अनुकूल तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का प्रयास करता है तो इतिहास में वस्तुनिष्ठता का प्रयास संदिग्ध हो जाता है।

5.4.6 युग-युगीन सामाजिक आवश्यकताएँ

जे. ए. राबिन्स का मत है कि इतिहास की पुनर्रचना अपने युग की सामाजिक आवश्यकता के अनुसार होती है। एडवर्ड मेयर ने तो इतिहास-लेखन में समसामयिक सामाजिक आवश्यकता को प्रधान माना है। महान दार्शनिक क्रोचे ने समसामयिक सामाजिक आवश्यकता को दृष्टिगत करते हुए ही सम्पूर्ण इतिहास को समसामयिक कहा था। उसका विचार था कि मनुष्य की आत्मा अपने युग के प्रति संवेदनशील होनी चाहिए। पी. गार्डिनर ने भी उल्लेख किया है कि एक ही ऐतिहासिक तथ्य की उपयोगिता तथा अनुपयोगिता विभिन्न युगों में बदलती रहती है। चूँकि मानव-जीवन की रूचियाँ तथा निहित स्वार्थ का स्वरूप प्रत्येक युग में बदलता रहा है, इसलिए प्रत्येक युग का इतिहास दूसरे से भिन्न होता है। अतः युग की सामाजिक आवश्यकता इतिहास के दृष्टिकोंण को सदैव प्रभावित करती रही है जो ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में कठिन बाधा है।

5.4.7 पूर्वाग्रह की भावना

ओकशाट के अनुसार इतिहास का पूर्वाग्रही होना स्वाभाविक है। साम्राज्यवादी ब्रिटिश इतिहासकारों ने सन् 1857 के भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम को सैनिक विद्रोह

5.4.9 इतिहास का चयनात्मक स्वरूप

वाल्श का अभिमत है कि इतिहास का स्वरूप चयनात्मक होता है। प्रायः इतिहासकार अतीत के किसी एक पक्ष का ही वर्णन करता है। अतीत का विस्तृत क्षेत्र इतिहासकार को किसी एक पक्ष के मनोनुकूल चयन करने के लिए विवश करता ही है। इस प्रकार का चयन इतिहासकार को पूर्वाग्रही बना देता है। पूर्वाग्रही विचार के कारण एक घटना को इतिहासकार अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करते हैं। गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु आकस्मिक घटना के कारण हुई थी। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु राजकुमार उलुग खाँ के सुनियोजित षड़यंत्र का परिणाम थी। डॉ मेहंदी हसन ने उलुग खाँ को निर्दोष सिद्ध करते हुए कहा है कि अचानक बिजली गिरने के कारण गयासुद्दीन की मृत्यु हुई थी। दोनों इतिहासकारों में मतभेद का कारण उनके पूर्वाग्रही विचार हैं। पूर्वाग्रही विचार के कारण दोनों इतिहासकारों ने अपने तर्क के समर्थन में तथ्यों का चयन किया है। इतिहास में इस प्रकार का चयन ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए बाधक है।

5.4.10 धर्म तथा जाति की समस्या

वस्तुनिष्ठता की एक अन्य समस्या धर्म तथा जाति से सम्बन्धित है। इतिहासकार चाहते हुए भी अपने को धार्मिक तथा जातिगत आग्रहों से मुक्त नहीं कर पाता। मध्ययुगीन इतिहास के इतिहासकारों ने धर्म तथा जातिगत भावनाओं से प्रभावित होकर तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। सर यदुनाथ सरकार ने औरंगजेब की धार्मिक नीति तथा मन्दिरों को ध्वस्त करने की कटु आलोचना की है। परन्तु फारूखी औरंगजेब की धार्मिक नीति तथा मन्दिरों के गिराने के औचित्य को सिद्ध किया है। इसी प्रकार प्रोटेस्टेन्ट तथा कैथोलिक, अरब तथा यहूदी इतिहासकारों में तीव्र मतभेद स्पष्ट दिखायी देते हैं।

5.4.11 राजनीतिक दृष्टिकोण

सभ्य समाज में रहने वाले मनुष्यों का सम्बन्ध विभिन्न राजनीतिक दलों से रहता है। जैसे मार्क्सवादी, लिबरल्स, कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट, पूँजीवादी, प्रजातंत्रवादी, राजतंत्रवादी, साम्यवादी आदि। इतिहासकार भी इन राजनीतिक दलों के सिद्धान्तों से प्रभावित होता है। वह अपनी दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या करता है। ऐसे इतिहासकारों से वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा करना उचित नही प्रतीत होता। ये यथार्थ तथ्य को अपनी दृष्टि से देखते तथा व्याख्या करते हैं। ऐसे इतिहासकारों की रचनाओं में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का सर्वत्र अभाव दिखायी देता है।

5.4.12 परिवर्तनशील सामाजिक मूल्य

सामाजिक मूल्यों का स्वरूप अस्थायी तथा स्थिर न होकर प्रत्येक युग में परिवर्तित होता रहता है। दास प्रथा, उपनिवेशवाद के किसी युग में सामाजिक उपयोगिता थी। परन्तु वर्तमान में इसकी सामाजिक उपयोगिता नहीं है। परिवर्तित सामाजिक मूल्यों का प्रभाव इतिहासकार के दृष्टिकोण पर पड़ता है। रिकर्ड ने स्पष्ट लिखा है कि ऐतिहासिक विवरण का सम्पूर्ण स्वरूप मूल्यों द्वारा निर्धारित होता है। मैडलबाम के अनुसार ऐतिहासिक व्याख्याओं का आधार साँस्कृतिक मूल्यों की वैध मान्यताएँ होती हैं। इन तथ्यों के अतिरिक्त उपयोगितावादी दृष्टिकोण भी इतिहासकार के व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रभावित करता है। इन कारणों से ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता एक जटिल समस्या बनी हुई है।

5.5 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याओं के सूक्ष्म विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठता एक जटिल समस्या है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि इतिहास का स्वरूप वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता। यदि ऐसा है तो इतिहास

मात्र व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित हो जायेगा। साक्ष्यों का कोई महत्व नहीं रह जायगा और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता है।

वर्तमान समय में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है ताकि ऐतिहासिक अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया जा सके। वस्तुनिष्ठता के अभाव में उसके वैज्ञानिक स्वरूप को मान्यता नही दी जा सकती। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता के विशेष संदर्भ में कुछ मूलभूत प्रश्नों पर विचार करना अनिवार्य है-

(1) इतिहासकार से किस प्रकार की वस्तुनिष्ठता की आशा की जाती है?

(2) क्या इतिहास में विषयनिष्ठता तथा वस्तुनिष्ठता की गवेषणा आवश्यक है?

(3) दार्शनिक एवं इतिहासकार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को एक समस्या के रूप में क्यों देखते हैं?

(4) क्या हम इस तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं कि इतिहास विज्ञान की भाँति वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता?

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता को सिद्ध करने के लिए इन मूलभूत प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर आवश्यक प्रतीत होता है-

(1) बटरफील्ड का मत है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठता के समावेश से पहले यह आवश्यक है कि हम सामान्य इतिहास और शोध-इतिहास के मध्य अन्तर को जान लें। सामान्य इतिहास संक्षिप्त होने के कारण वस्तुनिष्ठ हो सकता है। परन्तु शोध-इतिहास में इसका स्पष्ट अभाव दिखायी पड़ता है। क्योंकि शोध इतिहास में इतिहासकार मनोनुकूल तथ्यों का चयन कर व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूचि के अनुसार उनकी व्याख्या करता है। झारखण्ड चौबे के अनुसार ऐतिहासिक प्रस्तुतीकरण में वस्तुनिष्ठता का

प्रतिष्ठापन इतिहासकार की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करता है। व्यक्तिगत योग्यता से ही वह चरित नायकों तथा घटनाओं का यथार्थ सम्बन्ध प्रस्तुत करता है। अतः इतिहास में वस्तुनिष्ठता के समावेश के लिए इतिहासकार की व्यक्तिगत योग्यता पूर्णतया अपेक्षित है।

(2) ऐतिहासिक तथ्य वस्तुनिष्ठ इतिहास के आधार हैं। वर्तमान समाज इतिहासकारों से तथ्यप्रधान विवरण की अपेक्षा करता है। तथ्य को प्रधानता देकर वस्तुनिष्ठता की रक्षा की जा सकती है। जी. एन. क्लार्क का भी अभिमत है कि इतिहास की वस्तु-सामग्री तथ्य होते हैं। अतः ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए यथार्थ तथ्यों का प्रस्तुतीकरण आवश्यक है। वाल्श का मत है कि ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता सिद्धान्त द्वारा नहीं अपितु अभ्यास द्वारा प्रतिष्ठापित की जा सकती है। वास्तव में यथार्थ तथ्यों का वर्णन ही वस्तुनिष्ठता है।

(3) कुछ इतिहासकारों ने इतिहास को अपने प्रचार का माध्यम बनाया है। इन लोगों ने तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर द्वेष तथा व्यक्तिगत भावनाओं को प्रधानता दी है। ऐसे इतिहासकारों की सर्वत्र निन्दा होनी चाहिए। वाल्श का कहना है कि स्थान तथा व्यक्तियों के प्रति उदासीनता द्वारा इतिहास में वस्तुनिष्ठता का प्रवेश सम्भव है। गार्डिनर के अनुसार इतिहासकार को वस्तुनिष्ठता का परित्याग करके अपनी व्यक्तिगत रूचि के अनुसार इतिहास को अतिरंजित नहीं करना चाहिए तथा जिन इतिहासकारों ने अतीत के पुनर्निर्माण को प्रचार का साधन स्वीकार किया है, उन्हें इतिहासकारों की श्रेणी से बहिष्कृत करना चाहिए।

(4) ऐतिहासिक घटनाएँ महापुरूषों के जीवन से सम्बन्धित होती हैं। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए आवश्यक है कि उनका वर्णन यथार्थ रूप में किया जाय। इतिहासकार को अत्यधिक प्रशंसा तथा द्वेष की

भावना से प्रभावित नहीं होना चाहिए। डिल्थे ने स्पष्ट लिखा है कि वस्तुनिष्ठ इतिहास का आधार मानव-स्वभाव का वस्तुनिष्ठ अध्ययन होना चाहिए। रेनियर ने भी व्यक्तित्व तथा वरीयता को इतिहास के बाहर रखने पर जोर दिया है। वस्तुनिष्ठता में आस्थावान इतिहासकारों को इस बात का ध्यान देना चाहिए कि इतिहास तथ्यप्रधान है, व्यक्तित्वप्रधान नहीं। अतः स्पष्ट है व्यक्तित्व को इतिहास से पृथक कर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के महत्व को सुरक्षित रखा जा सकता है।

(5) इतिहासकार का स्वतंत्र एवं निष्पक्ष दृष्टिकोण उसे एक तथ्य से दूसरे तथ्य की ओर स्वयं ले जाता है। इतिहासकार अपनी रूचि के अनुसार तथ्यों के चयन में स्वतंत्र नहीं है। ऐतिहासिक तथ्यों का स्वरूप वस्तुनिष्ठ होता है। इतिहासकार का पुनीत कर्तव्य वस्तुनिष्ठता का निर्वाह करते हुए तथ्यों का आदर करना है। पी. गार्डिनर ने भी संकेत किया है कि इतिहासकार को रहस्यवाद की उलझनों से मुक्त होकर वर्णित तथ्यों को ही सत्य मानते हुए अतीत का समुचित वर्णन करना चाहिए।

(6) सामान्यतः मनुष्य का धर्म से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। परन्तु एक इतिहासकार के लिए आवश्यक है कि वह अपने को धार्मिक प्रभावों से मुक्त रखे। इतिहासकार सामाज का प्रतिनिधि होता है। सम्पूर्ण समाज का नेतृत्व करके ही इतिहासकार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को सुरक्षित रख सकता है। इसी प्रकार समाज में नैतिकता एक अन्धविश्वास है। घटना अथवा व्यक्ति के सम्बन्ध में नैतिक न्याय देना इतिहासकार का कार्य नहीं है। बटर फील्ड ने उचित ही कहा है कि इतिहासकार न्यायाधीश नहीं अपितु समाजसेवकों का सेवक है। इतिहासकार अपनी इस अवधारणा से ही इतिहास को वस्तुनिष्ठ बना सकता है।

(7) ऐतिहासिक व्याख्या पर अनेक सिद्धान्तों एवं दृष्टिकोणों का प्रभाव पड़ा है। वाल्श के अनुसार ऐतिहासिक व्याख्या के विभिन्न सिद्धान्त ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्या नहीं हैं। इतिहासकारों में सैद्धान्तिक मतभेद स्वाभाविक है। विभिन्न सिद्धान्तों का सूक्ष्म विवेचन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेक इतिहासकार एक ही तथ्य को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखते हैं। सभी सिद्धान्तों का मूल उद्देश्य अपने-अपने ढंग से ऐतिहासिक यथार्थता का अन्वेषण करना है।

(8) ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में दार्शनिक मतभेद को भी बाधक माना गया है। वाल्श का कथन है कि कार्य-व्यापार सम्बन्धी तथ्यों का अध्ययन किसी विशेष दृष्टिकोण से नहीं अपितु निष्पक्ष होकर वस्तुनिष्ठ भाव से करना चाहिए, अन्यथा इतिहास के दूषित होने की सम्भावना हो सकती है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए सिद्धान्त की अपेक्षा अभ्यास की आवश्यकता है।

(9) सिमेल ने ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए पुनर्मनन को आवश्यक बताया है। पुनर्मनन एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा इतिहासकार विषयनिष्ठ यथार्थता को वस्तुनिष्ठ बना सकता है। इससे इतिहास में वस्तुनिष्ठता का समावेश सरल हो सकता है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता उस समय अधिक सरल हो सकती है जब विभिन्न सिद्धान्तों अवधारणाओं तथा दृष्टिकोणों को सार्वभौमिक मान्यता प्रदान की जाये।

(10) वाल्श का कहना है कि इतिहास का अपना अनुशासन तथा नियम है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता इतिहास-अनुशासन का अंग है तथा निष्पक्षता इतिहास की आवश्यकता है। अनुशासित इतिहासकारों को ही इतिहास लिखना चाहिए। जी. पी. गूच ने लिखा है कि अतीतकालिक जीवन तथा आदर्शों को समझाने के लिए हमें निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाना

चाहिए। कुछ इतिहासकारों का विश्वास है कि मानवीय अनुशासन में इतनी स्वतंत्रता है कि उनका कथन मतभेद के बावजूद सत्य है, तो ऐसे व्यक्तियों को इतिहाससमाज से निष्कासित करना चाहिए जो स्वतंत्रता के नाम पर सब कुछ कहने का दावा करते हैं।

(11) ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की अवधारणा वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता से भिन्न है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में निष्ठावान इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं कि इतिहासकार की रचना में इतिहासकार के व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति एक कलाकार की भाँति होती है। वाल्श के अनुसार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का सर्वोत्तम उपाय एक कलाकार की विधियों का अनुकरण है। एक इतिहासकार को ऐतिहासिक चिन्तन का प्रस्तुतीकरण कलाकार की भाँति करना चाहिए। यद्यपि कलाकार प्राकृतिक चित्र को अपने मनोनुकूल दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है, फिर भी वह उसकी वस्तुनिष्ठयर्थातता के विषय में आश्वस्त रहता है। इसी प्रकार इतिहासकार भी अपने दृष्टिकोण से अतीत का वर्णन करता है। उसका विश्वास अपने वर्णन की वस्तुनिष्ठयथार्थता में रहता है। अन्य व्यक्तियों द्वारा इस यथार्थता की मान्यता का तात्पर्य ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को स्वीकार करना है।

5.6 वस्तुनिष्ठता की समीक्षा

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याओं की जटिलता के बावजूद भी इतिहासकारों ने उनके कुछ समाधान प्रस्तुत किये हैं। वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की भाँति ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की कल्पना भी एक भूल है। वैज्ञानिक सामान्य तथा इतिहासकार विशेष का अध्ययन करता है। वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों ने भी इतिहास में वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता का अनुमोदन नहीं किया है। डेविड थामसन के अनुसार इतिहास न तो वाल्टेरियन दृष्टिकोण की प्रगाढ़

विषयनिष्ठा और न गणित की निर्वैयक्तिक निश्चयात्मक वस्तुनिष्ठता को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार इतिहास में न तो प्रगाढ़ विषयनिष्ठता है और न निर्वैयक्तिक निश्चयात्मक वस्तुनिष्ठता।

वाल्श का विचार है कि इतिहास में दो प्रधान तत्व होते हैं: इतिहासकार द्वारा प्रदत्त विषयनिष्ठ तत्व तथा साक्ष्य। इतिहासकार साक्ष्यों को प्रधानता देकर इतिहास को वस्तुनिष्ठ बना सकता है क्योंकि इतिहासकार का प्रत्येक वाक्य साक्ष्यों पर आधारित होता है। मैडलबाम के अनुसार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता इतिहासकार की योग्यता मे निहित है। इतिहासकार की योग्यता का विकास सिद्धान्त द्वारा नहीं अपितु अभ्यास द्वारा सम्भव है। वाल्श ने ठीक ही कहा है कि वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक अन्तश्चेतना इतिहास में एक बुद्धिजीवी विचारधारा का ढाँचा प्रदान करेगी, जो ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में सहायक होगी।

रेनियर के अनुसार इतिहास-लेखन की आचारसंहिता इतिहास में निहित रहती है, इतिहासकार में नही। कोई भी व्यक्ति इतिहास-लेखन को व्यवसाय के रूप में चयन करने को बाध्य नहीं है। जो इनका चयन करते हैं, उन्हें नियमों तथा अनुशासन को भी स्वीकार करना चाहिए। बौद्धिक निष्ठा के अभाव में इतिहास अपने स्वाभाविक स्वरूप को खोकर उपन्यास अथवा काल्पनिक रचना बन जाता है। इतिहास के नियम और अनुशासन सदैव इतिहासकार को वस्तुनिष्ठता की प्रेरणा प्रदान करते हैं और उपेक्षा करने वाले गिबन जैसे इतिहासकार इतिहास-क्षितिज से लुप्त होते जा रहे हैं।

सर चार्ल्स ओमन के अनुसार यह सत्य है कि इतिहास-रचना लेखक के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करती है। इतिहासकार अपने ग्रन्थ में व्यक्तिगत प्रभाव से मुक्त करने का प्रयास करते हुए भी कुछ ठोस तथ्यों को नकार नहीं सकता है। इतिहास में तथ्य को प्रधानता देकर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता सुरक्षित की जा सकती है। वर्तमान, इतिहासकारों से वस्तुनिष्ठ रचना की अपेक्षा करता है।

5.7 बोध-प्रश्न

1- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के तात्पर्य को स्पष्ट कीजिए तथा उसकी आवश्कता के आधार बताइए।

2- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याओं का वर्णन कीजिए।

3- क्या इतिहास में वस्तुनिष्ठता सम्भव है? स्पष्ट कीजिए।

4- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समीक्षा कीजिए।

5- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता से किस तरह भिन्न है?

5.8 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास-दर्शन : झारखण्ड चौबे

2- इतिहास-दर्शन : कौलेश्वर राय

3- इतिहास के बारे में : लाल बहादुर वर्मा

4- इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त : प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAAH-107N/MAHY-111

इतिहास दर्शन एवं लेखन सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियां

खण्ड 10

इतिहास लेखन मे गवेषणा

इकाई- 1
लेखन का यूरोपीय मत 300

इकाई- 2
भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन 312

इकाई- 3
मार्क्सवादी इतिहास 325

इकाई- 4
इतिहास लेखन मे सम्प्रदायवाद 336

इकाई- 5
सबआर्ल्टन इतिहास 349

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 पी0पी0 दूबे	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (1,2,3 खंड)
प्रो0 एम0पी0 अहिरवार	आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी इकाई–1,2,3,4,5 (5खंड)
डॉ. रमाकान्त सिंह	सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (4,6 खंड)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, म0जो0फुले रु0वि0वि0, बरेली (इकाई 1–30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष – 2022
© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : प्रो0 पी 0 पी0 दुबे, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2022.

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा–2810 03

इकाई- 1

इतिहास –लेखन का यूरोपीय मत

इकाई की रूपरेखा

1:0 उद्देश्य

1:1 प्रस्तावना

1:2 यूरोपीय इतिहास-चिन्तन का उद्‌गम एवं विकास

1:3 आधुनिक काल में यूरोपीय इतिहास की अवधारणा

1:3.1 बुद्धिवादी युग में इतिहास की अवधारणा

1:3.2 रोमांटिक युग में इतिहास की अवधारणा

1:3.3 उन्नीसवीं/बीसवीं सदी में यूरोपीय इतिहास-लेखन

1:3.4 बीसवीं सदी में यूरोपीय इतिहास-लेखन

1:4 समीक्षा

1:5 बोध-प्रश्न

1:6 संदर्भ-ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यापन का उद्देश्य निम्नलिखित है-

- यूरोपीय इतिहास-चिन्तन के उद्‌गम एवं विकास से परिचित कराना।
- आधुनिक काल में यूरोपीय इतिहास की अवधारणा का सामान्य परिचय देना।
- उन्नीसवीं/बीसवीं सदी के इतिहास-दर्शन में विभिन्न विचारधाराओं का संक्षिप्त परिचय देना।
- यूरोपीय ऐतिहासिक अवधारणा का भारतीय संदर्भ में मूल्यांकन करना।

1.1 प्रस्तावना

मानव इतिहास विकास की प्रक्रिया पर आधारित है, जिसके कारण समय-समय पर सामाजिक आवश्यकताओं और मूल्यों में भी परिवर्तन होता रहा है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न काल के विद्वानों और इतिहासकारों ने अपनी आवश्यकताओं को दृष्टिगत करते हुए इतिहास-लेखन की ओर ध्यान दिया। उत्थान और पतन प्रकृति का शाश्वत नियम है और मानव आदि काल से संघर्षरत रहा है। इतिहास में इसी मानव के कार्यकलापों, उसकी उपलब्धियों व उत्थान-पतन का वर्णन किया जाता है। प्रारम्भिक इतिहास लेखक हेरोडोट्स से लेकर आधुनिक विद्वान टायनबी तक विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर दृष्टिगोचर होती रही है। इस इकाई में इतिहास लेखन के यूरोपीय विचारधारा के क्रमिक विकास का परिचय दिया गया है।

1.2 यूरोपीय इतिहास चिन्तन का उद्गम एवं विकास

प्रख्यात दार्शनिक इतिहासकार आर0 जी0 कालिंगवुड का अभिमत है कि मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। अपने सम्बन्ध में चिन्तन करते समय उसके हृदय में अचानक अपने पूर्वजों के विषय में जानने की जिज्ञासा स्वयमेव प्रस्फुटित हुई कि वर्तमान का अविर्भाव कैसे हुआ। अतीत सम्बन्धी ज्ञान की उत्कंठा के परिणामस्वरूप इतिहास का उद्भव तथा इतिहास-चिन्तन का श्रीगणेश हुआ। यहीं से साक्ष्यों के आलोक में यथार्थ अतीत के प्रस्तुतीकरण की इच्छा इतिहास के रूप में प्रस्फुटित हो उठी। सतत् चिन्तन के परिणामस्वरूप एक अवधारणा बनी की वर्तमान का अविर्भाव अतीत के गर्भ से हुआ है।

इतिहास नामक अध्ययन शाखा की उत्पत्ति यूनान में मिलती है। इसका उद्गम बौद्धिक कार्य व्यापार के महान उद्वेग की एक अभिव्यक्ति के रूप में हुआ। सर्वप्रथम 'हिस्ट्री' शब्द का प्रयोग करने वाला व्यक्ति इतिहास का जनक हेरोडोटस था। इतिहास शब्द से उसका अभिप्राय खोज तथा अनुसंधान था। यूनानी जाति की ज्ञान पिपासा हिस्ट्री की परिभाषा में प्रस्फुटित हो उठी। इस प्रकार यह सर्वमान्य है कि हिस्ट्री अथवा इतिहास का उद्गम स्थल प्राच्य संस्कृति का केन्द्र यूनान रहा है। महान यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने इतिहास-चिन्तन की आधारशिला का निर्माण किया। थ्यूसिडिडिज ने उस प्रसाद को विकसित किया। दोनों की अवधारणा इतिहास के चक्रात्मक गति में रही है। रोमन इतिहासकार पालिवियस ने इतिहास-अवधारणा के सार्वभौमिक स्वरूप को स्वीकार किया है। उसने भी इतिहास के चक्रवादी स्वरूप को मान्यता प्रदान की। दूसरी ओर रोमन इतिहासकार लिवि के इतिहास अवधारणा में नैतिकता की प्रधानता है। टेसीटस के इतिहास लेखन का तात्पर्य अच्छे या बुरे तत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों के संघर्ष को प्रस्तुत करना था। इसके बाद इतिहास की ईसाई अवधारणा का चरण आता है जिसके अनुसार इतिहास

विश्वव्यापी, देवप्रधान, चमत्कारपूर्ण तथा युगपरक है। इतिहास में ईश्वर की एक योजना क्रियाशील है जिसका संदेश ईसा के आमन द्वारा प्राप्त हुआ।

यूरोप में पुनर्जागरण तथा धर्मसुधार आन्दोलन, ईसाई इतिहास-दर्शन एवं अवधारणा के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया थी। इस समय अनम्य तथा अपरिवर्तनीय तथ्यों का निरूपण करने के लिए समीक्षात्मक रीतिरिवाज को विकसित किया गया। प्रलेखों का आलोचनात्मक अध्ययन इतिहास का प्रेरणास्रोत बन गया। इसी समय से वैज्ञानिक युग का प्रारम्भ हुआ। साक्ष्य तथा अनुभव को ज्ञान का प्रामाणिक आधार माना गया।

बीसवीं सदी में इतिहास-चिन्तन का स्वरूप वैज्ञानिक होने लगा। इतिहासकारों ने इतिहास के अन्तर्निहित गूढ़ रहस्यों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया। इतिहास-चिन्तन का स्वरूप सार्वभौमिक होने लगा। विश्वभ्रातृत्ववाद के परिवेश में इतिहास लिखा जाने लगा। एच0 जी0 वेल्स, टायनबी, स्पेंगलर ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि इतिहास-चिन्तन का स्वरूप संकुचित तथा क्षेत्रीय नहीं अपितु सार्वभौमिक होना चाहिए।

इस प्रकार प्रारम्भ में इतिहास-चिन्तन अतृप्त ज्ञान तृष्णा को तृप्त करने का एक समाधान था जो बीसवीं शताब्दी में समस्त मानवीय क्रिया-कलापों तथा सार्वभौमिक परिवेश में विश्वभातृत्ववाद के रूप में विकसित हुआ। इतिहास-चिन्तन का यही चरमोत्कर्ष है।

1.3 आधुनिक काल में यूरोपीय इतिहास की अवधारणा

युग की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप इतिहास की अवधारणा में परिवर्तन होता रहता हैं। यूरोप के इतिहास में पुनर्जागरण काल से आधुनिक काल का प्रारम्भ माना जाता है। इस युग में मध्य युग के ईश्वरपरक दृष्टिकोण के स्थान पर मानवपरक विचार का उत्थान होने लगा। इतिहास में ईश्वरीय इच्छा को कारण न

मानकर मानवीय इच्छा की प्रबलता को स्वीकार किया गया। इतिहासकारों ने नगरों तथा राज्यों का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया, क्योंकि इनका सम्बन्ध मानवीय प्रक्रिया के साथ जुड़ा हुआ था। परिणामस्वरूप पुनर्जागरण कालीन इतिहास-अवधारणा प्रवृत्तिमूलक बन गयी। इसका स्वरूप व्याख्यापरक न होकर घटना प्रधान हो गया। विश्वव्यापी दृष्टिकोण का महत्व उत्तरोत्तर क्षीण होता गया और इसका स्थान क्षेत्रीय तथा प्रादेशिक इतिहास ने ग्रहण किया। इतिहास धर्मप्रधान न होकर राजनियमित होने लगा। पुनरूत्थानकालीन मानववाद आधुनिक युग में बुद्धिवादी, इतिवृत्तात्मक, विद्वतापूर्ण तथा दर्शन प्रधान रूप में पल्लवित हुआ।

1.3.1 बुद्धिवादी युग में इतिहास की अवधारणा

17वीं सदी से 18वीं सदी में प्रवेश के साथ विचारो के जगत और चिन्तन के क्षितिज में एक महान परिवर्तन दिखायी देता है। गैलिलीयो तथा न्यूटन ने विचारों की क्रान्ति को गति प्रदान की। देकार्त ने विश्लेषणात्मक पद्धति का श्रीगणेश करके आधुनिक विज्ञान का प्रवर्तन किया। मान्टेस्क्यू (Montesque) ने सबसे पहले राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति तथा विकास के अध्ययन में आलोचनात्मक शक्ति तथा नियम-निर्माण का परिचय दिया। उनके अनुसार जलवायु तथा अतीतकालीन धर्म, कानून, आचार-विचार, मानव-जीवन की गति और स्वरूप को निर्धारित करते हैं। वाल्टेयर इतिहास दर्शन का जन्मदाता माना जाता है। उन्होनें वैज्ञानिकता तथा आलोचनात्मक पद्धति का प्रयोग इतिहास के अध्ययन में अनिवार्य बताया। उन्होनें यह स्पष्ट किया कि मानव-समृद्धि में प्रत्येक पीढ़ी तथा युगों का योगदान होता है। प्रगति इतिहास की निश्चय प्रवृत्ति है। लैसंन ने स्पष्ट लिखा है कि इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा का आरम्भ वाल्टेयर से होता है। रूसों ने मानव-स्वतंत्रता पर विशेष जोर दिया।

प्रबुद्धयुग के विचारक विको ने इतिहास अध्ययन को आवश्यक बताया है। उनके अनुसार इतिहास मानव की चेष्टा और चिन्तन का फल है। इतिहास में समानता और निरन्तरता की प्रवृत्ति होती है। समानता का आधार यह है कि मनुष्य स्वयं इतिहास का निर्माता है। मानव-प्रकृति में आकस्मिक परिवर्तन नहीं होता है। उसमें पूर्व स्थिति और स्वरूप के चिन्ह विद्यमान रहते हैं। यह चक्रवत घूमता रहता है। परिणामस्वरूप सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तन होते रहते हैं। इस प्रकार उन्होनें इतिहास-अवधारणा को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया। उन्हें तुलनात्मक तथा वैज्ञानिक इतिहास-दर्शन का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

डॉ0 बुद्ध प्रकाश के अनुसार 17वीं सदी में विचारकों ने पुनः बौद्धिक जीवन को सक्रियता प्रदान की। ऐसे विचारकों में लाईपनित्स का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसने यथार्थ चिन्तन पर विशेष जोर दिया, उनके अनुसार सत्यरहित इतिहास जीवन रहित शरीर है। कान्ट ने इतिहास-जगत में अपने विचारों से एक क्रान्ति पैदा कर दी, उनका दृष्टिकोण पूर्णतः ऐतिहासिक था, उनके अनुसार ऐतिहासिक परिवर्तन एक सतत् प्रक्रिया है जो स्वंत्रता और सभ्यता की ओर अग्रसर है। इतिहास तथ्यों का संकलन या घटनाओं की तालिका मात्र नहीं, बल्कि आन्तरिक विकास की एक प्रक्रिया है।

काण्ट के अनुसार विश्व की प्रक्रिया नियमबद्ध है। एक प्राकृतिक योजना की भाँति गतिशील है और मनुष्य इसी योजना के अन्तर्गत क्रियाशील है। कान्ट ने स्पष्ट लिखा है कि इतिहास दूर दृश्य-जगत से अन्तर्जगत की ओर अग्रसरित होने की प्रक्रिया है। इसी को उन्होंने मानव-स्वतंत्रता की प्रगति कहा है। मनुष्य धीरे-धीरे प्राकृतिक नियमों से मुक्त होकर सामाजिक नियमों में बँध रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इतिहास की योजना का उद्देश्य मनुष्य को पूर्णतः स्वतंत्र करना है। उन्होनें

इतिहास को इतिहास की बुद्धिमत्ता की प्रगति तथा उन्नति कहा। उनके अनुसार इतिहास हमें एक ऐसे युग की ओर ले जा रहा है जब बौद्धिकता का पूर्ण साम्राज्य स्थापित हो जायेगा। इस प्रकार इतिहास का मुख्य विषय मानव का आत्मिक विकास है।

1.3.2 रोमांटिक युग में इतिहास की अवधारणा

बुद्धिवादी युग में इतिहास-चिन्तन की विशेषता तर्कप्रधान रही है। रोमांटिक युग में इतिहास चिन्तन का आधार भावना तथा कल्पना थी। तत्कालीन दर्शनिकों तथा विचारकों ने जीवन और जगत के आन्तरिक रहस्य को भावना और कल्पना के माध्यम से समझने का प्रयास किया। उनकी दृष्टि में वर्तमान परिवेश में ही अतीत को समझना सम्भव है। इस युग के विचारको ने इतिहास को समष्टि-प्रधान माना है, व्यक्ति प्रधान नहीं। मनुष्य इतिहास का कर्ता नहीं है, बल्कि उपकरण और उपज होता है।

हर्डर रोमांटिक युग के महान दार्शनिक तथा विचारक थे। उन्होनें मानव जीवन तथा प्राकृतिक विकास के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। इतिहास में उन्होनें व्यक्ति की प्रधानता को स्वीकार किया है। राष्ट्रों के स्वरूप तथा इतिहास में भिन्नता का कारण भौगोलिक परिस्थितियों में विभिन्नता है। हर्डर ने जिस नवीन इतिहास-दर्शन का सूत्रपात किया उसका पूर्ण विकास महान दार्शनिक इतिहासकार हेगेल द्वारा सम्पन्न हुआ जिनके अनुसार इतिहास घटनाओं का संकलन तथा अन्वेषण नहीं, उनमें निहित कार्यकारण प्रक्रिया की गवेषणा है। विश्व-इतिहास की मूल प्रवृत्ति स्वतंत्रता की चेतना का विकास है। इसी को उन्होने नैतिक बुद्धि का प्रसार कहा है जो सामाजिक सम्बन्धों का वाह्य रूप धारण करता है। ये सामाजिक

सम्बन्ध राष्ट्र के रूप में परिणित होते हैं। अतः राष्ट्र नैतिक बुद्धि की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है।

हीगल ने प्रकृति तथा इतिहास में अन्तर को स्वीकार किया है। प्रकृति की प्रक्रिया चक्रात्मक है। इसके विपरीत इतिहास का स्वरूप रेखावत् है। सर्वप्रथम उन्होंनें चेतना तथा विवेक को सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान किया है। प्रत्येक युग की ऐतिहासिक घटनायें चेतना द्वारा प्रभावित रहीं है। यह चेतना मानवीय मस्तिष्क को प्रभावित करके अपने अनुरूप कार्य करने के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित तथा बाध्य करती है।

1.3.3 उन्नीसवीं/बीसवीं सदी में यूरोपीय इतिहास लेखन

आधुनिक युग में इतिहास-लेखन और चिन्तन की विशेषता धर्मनिरपेक्ष, द्वेषरहित, उपदेशात्मक तथा दर्शनिक विचारों से पूर्ण है। विश्व की परिवर्तित परिस्थितियों ने इतिहासकारों को पर्यावरण के परिवेश में चिन्तन करने के लिए विवश कर दिया। धर्म तथा भाव-प्रधान विचारों का परित्याग करके मानवीय प्रकिया का सूक्ष्म विवेंचन इतिहास-लेखन का उद्देश्य बन गया। इतिहासकारों ने अध्यवसाय से ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन किया और वैज्ञानिक ढंग से उनकी विवेचना करके इतिहास की रचना प्रारम्भ की। वैज्ञानिक युग का प्रभाव इतिहासकारों पर पड़ना स्वाभाविक था। परिणामस्वरूप उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी में इतिहास को विज्ञान मान लिया गया। जिस प्रकार बाह्य प्रकृति निष्पक्ष, विश्लेषण, वर्गीकरण तथा अध्ययन का विषय है उसी प्रकार इतिहास भी परीक्षण, विवेचन और अनुसंधान का विषय समझा गया।

थामस बकल ने इस युग की इतिहास-अवधारणा के विषय में कहा है कि इस उपयुक्त समय में मानवीय ज्ञान की उच्च शाखाओं से सम्पृक्त इतिहासकार समाज का सर्वागींण चित्र प्रस्तुत करें। बीसवीं सदी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इतिहासकारों ने धर्म तथा नैतिकता का परित्याग कर इतिहास-लेखन पर जोर दिया।

कार्लमार्क्स

कार्लमार्क्स इतिहास-दर्शन के महान विचारक, देवदूत वैज्ञानिकता तथा नैतिकता के प्रबल समर्थक एवं इतिहास में सामाजिक विचारधारा के प्रवर्तक थे। इनकी इतिहास-अवधारणा का अधार आर्थिक सिद्धान्त है। उन्होनें यह स्वीकार किया है कि विचार, संस्थायें, राजनीति, धर्म तथा संस्कृति को आर्थिक कारण प्रभावित करते हैं। मार्क्स का विश्वास था कि ऐतिहासिक प्रगति का मूल कारण प्राचीन तथा नवीन सामाजिक संगठन के बीच संघर्ष होता है। वाद तथा प्रतिवाद के द्वन्द्व के परिणामस्वरूप साम्यवाद का उदय होता है। साम्यवाद से ही नवीन इतिहास का प्रारम्भ तथा प्राचीन प्रथा का अन्त होता है। साम्यवाद ही इतिहास का मानववाद है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य सतत् प्रत्यनशील रहा है।

आधुनिक इतिहास के जनक रांके ने इतिहास-अवधारणा को नवीन वैज्ञानिक विधियों से अंलकृत किया है। सर्वप्रथम उन्होने ऐतिहासिक स्रोतों की यथार्थतता को आलोचनात्मक विधि से निश्चित करने पर विशेष जोर दिया तथा घटनाओं के यथार्थ प्रस्तुतीकरण को ऐतिहासिक शोध का उद्देश्य निर्धारित किया। उन्नीसवीं सदी की राष्ट्रीयता से अप्रभावित होकर उन्होनें ऐसा वस्तुनिष्ठ आदर्श इतिहास प्रस्तुत किया जो राष्ट्रीय प्रतिद्वन्दिता के बावजूद फ्रांसीसी समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है।

इसी कारण रांके को आधुनिक-इतिहास का जनक तथा आधुनिक इतिहास का कोलम्बस कहा जाता है।

1.3.4 बीसवीं सदी में यूरोपीय इतिहास-लेखन

बीसवीं सदी में इतिहास की अवधारणा दीर्घकालीन प्रयास एवं सतत् चिन्तन का परिणाम है। इसका उद्देश्य संकुचित राष्ट्रीयता, धर्म, जाति, क्षेत्रीयता की भावना का परित्याग कर विश्वभ्रातृत्वभाव को इतिहास में सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान करना है। इस प्रकार का इतिहास किसी विशेष राष्ट्र तथा किसी समाज के लिए नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए हो गया।

सर्वप्रथम एच0जी0 वेल्स ने अपनी रचनाओं में मानव-कल्याण, मानव-प्रगति तथा विश्वभ्रातृत्ववाद को यथोचित स्थान दिया। विश्व-इतिहास क्षितिज को सुशोभित करने वाले महान इतिहासकारों में 'अर्नाल्ड टायनबी' का नाम अग्रगण्य है। बीसवीं सदी की अनिवार्यता सार्वभौमिक इतिहास तथा विश्वभ्रातृत्व की प्रेरणा से उनका प्रभावित होना स्वाभाविक था क्यांकि यही काल और परिस्थितियों की अपरिहार्यता थी। इतिहास की अवधारणा में उन्होनें सार्वभौमिक राज्य की कल्पना तो अवश्य की, परन्तु इसका परिणाम मानव-समाज के लिए कष्टदायक हुआ है। उन्होनें यह स्वीकार किया है कि इतिहास की विषयवस्तु ऐतिहासिक घटनायें, राज्य तथा समुदाय नहीं है। इतिहास-अध्ययन का बोधगम्य क्षेत्र समाज है। विश्व की छब्बीस सभ्यताओं के विश्लेषणात्मक प्रस्तुतीकरण के माध्यम से उन्होनें एक नवीन इतिहास-अवधारणा का प्रतिपादन किया।

टायनवी ने चुनौती तथा प्रतिक्रिया के आधार पर संस्कृतियों का अध्ययन किया है। चुनौती से समस्या की उत्पत्ति होती है, प्रतिक्रिया इसका समाधान प्रस्तुत

करती है। चुनौती समाजिक समस्या है, प्रतिक्रिया समस्या का समाधान है। चुनौती प्रश्न है और प्रतिक्रिया उत्तर है। टायनवी के अनुसार चुनौतियों के सफल उत्तर देने की प्रवृत्ति ही विकास है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समस्त विश्व का एकीकरण, धर्मों का समन्वय तथा आर्थिक विषमताओं का निराकरण उनकी इतिहास-अवधारणा की प्रमुख वृत्तियाँ है।

1.4. समीक्षा

तत्थ्यों के समीक्षात्मक विश्लेषण के पश्चात् स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल से बीसवीं सदी तक यूरोपीय ऐतिहासिक अवधारणा का स्वरूप एक समान नहीं रहा है। प्राचीन काल में इतिहास अतृप्त ज्ञान-तृष्णा को तृप्त करने का एक साधन था। मध्ययुग में धार्मिक भावनाओं ने इसे विशेष प्रभावित किया। पुनर्जागरण तथा धर्मसुधार कार्य में मानववादी तथा बुद्धिवादी इतिहासकारों ने रूढ़िवादी दृष्टिकोण की कटु आलोचना की तथा इतिहास-लेखन में तथ्यों की प्रधानता को मान्यता दी। प्रो० जे०बी० व्यूरी ने इतिहास को पूर्णरूपेण विज्ञान स्वीकार किया है। उन्नीसवीं सदी में कांट,हर्डर, हीगल तथा कार्ल मार्क्स ने इतिहास-अवधारणा को नवीन स्वरूप प्रदान किया।

बीसवीं सदी में इतिहास-अवधारणा का लक्ष्य मनुष्य को जातीयता, धार्मिकता, तथा राष्ट्रीयता के स्तर से ऊपर उठकर विश्वभ्रातृत्ववाद तथा सार्वभौमिक आयाम में प्रवेश करना था। स्पेंग्लर, एच0जी0 वेल्स, तथा टायनबी जैसे इतिहासकारों ने संकुचित क्षेत्रीयता तथा राष्ट्रीयता का परित्याग कर विश्वभ्रातृत्व के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। रांके ने इतिहास को वैज्ञानिक विधाओं से परिष्कृत करके वस्तुनिष्ट इतिहास-लेखन को आवश्यक बताया। अंत में हम कह सकते हैं कि इतिहास-अवधारणा विभिन्न युगों में काल तथा परिस्थितियों का परिणाम रही है।

1.5 बोध-प्रश्न

1- यूरोपीय इतिहास-चिन्तन के उद्‌गम और विकास पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

2- आधुनिक काल में इतिहास-लेखन के यूरोपीय दृष्टिकोण का वर्णन कीजिए।

3- बीसवीं सदी में यूरोपीय इतिहास-लेखन के स्वरूप का वर्णन कीजिए

1.6 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास-दर्शन : बुद्ध प्रकाश

2- इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त : प्रो0 जी0सी0 पाण्डेय

3- इतिहास दर्शन : झारखण्ड चौबे

इकाई -2

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन

इकाई की रूपरेखा-

2:0 उद्देश्य

2:1 प्रस्तावना

2:2 राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का अभिप्राय

2:3 भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की पृष्ठभूमि

2:4 राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की प्रकृति और विषयवस्तु

- 2:4.1 धर्म और समाज
- 2:4.2 भौतिक संस्कृति
- 2:4.3 राजनीति और प्रशासन
- 2:4.4 अंग्रेजों के प्रति घृणा
- 2:4.5 भारतीय इतिहास की पुनर्प्रस्तुति

2:5 राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का दोष

- 2:5.1 शोध पद्धति सम्बन्धी त्रुटियाँ
- 2:5.2 अन्ध देशभक्ति के दावे
- 2:5.3 वैचारिक अन्तर्विरोध
- 2:5.4 सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहन

2:6 राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का सकरात्मक पक्ष

- 2:6.1 ऐतिहासिक अध्ययन की प्रेरणा
- 2:6.2 राष्ट्रवादी इतिहासकार द्वारा किये गये कार्य
- 2:6.3 क्षेत्रीय एवं स्थानीय इतिहास में रूचिबृद्धि
- 2:6.4 आर्थिक इतिहास-लेखन का सूत्रपात
- 2:6.5 सांस्कृतिक इतिहास की संकल्पना

2:7 बोध-प्रश्न

2:8 संदर्भ-ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेगें कि-

1- राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का क्या अभिप्राय है?

2- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की शुरूआत कैसे हुई?

3- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का विषय क्षेत्र क्या है?

4- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन के गुण और दोष क्या हैं?

2.1 प्रस्तावना

इतिहासकार अपने युग के दृष्टिकोण तथा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से अतीत का मूल्याँकन करता है। आधुनिक भारत में इतिहास-लेखन की अनेक प्रवृत्तियों का उभार हुआ जिनके नियन्ताओं ने अपने दृष्टिविशेष से इतिहास के स्वरूप का निर्धारण किया। आधुनिक इतिहास-लेखन की विभिन्न धाराओं में साम्राज्यवादी दृष्टिकोण, राष्ट्रवादी दृष्टिकोण, उपाश्रयी सिद्धान्त, उत्तरवर्ती आधुनिकवादी दृष्टिकोण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विभिन्न धाराओं में राष्ट्रवादी विचारधारा का विवेचन हमारा मन्तव्य है जो साम्राज्यवादी इतिहास लेखन के प्रपंचों तथा पूर्वाग्रहों के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप अस्तित्व में आया। इस इकाई में इतिहास-लेखन की राष्ट्रवादी विचारधारा की मूलभूत प्रवृत्तियों की विशद चर्चा की गयी है।

2.2 राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का अभिप्राय

भारतीय इतिहास-लेखन की राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव उपनिवेशवादी इतिहास लेखन के प्रपंचों और पूर्वाग्रहों के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। इस विचाराधारा में राष्ट्रीय गौरव से ओत-प्रोत भारतीय विद्वानों की एक उदीयमान पीढ़ी ने अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को यूरोपीय लेखकों के निराधार आरोपों से बचाने के लिए प्रयत्न किया। यद्यपि कुछ विद्वानों और आलोचकों ने कहा कि राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का एकमात्र उद्देश्य भारत के अतीत का महिमामण्डन था। किन्तु यदि कुछ त्रुटियों को नजर-अन्दाज किया जाय तो आलोचकों के विचारों में अतिवाद दिखाई

रहा था। जेम्स मिल की प्रसिद्ध पुस्तक "हिस्ट्री" के द्वितीय खण्ड में हिन्दू सभ्यता पर 500 पृष्ठों के उनके विवरण का विशिष्ट उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि वह रूक्ष और निकृष्ट थी तथा हिन्दू दास-गुणों में सबसे आगे थे। माउण्ट स्टुअर्ट एलिफिस्टन ने लिखा है कि हिन्दुओं का सबसे बड़ा दुर्गुण सभ्यता का अभाव है जिसमें उन्होनें अधिकांश राष्ट्रों के निवासियों को पीछे छोड़ दिया है। कई अन्य इसी तरह की धारणाएँ व्यक्त हुईं। भारत पर बिन्सेन्ट स्मिथ की कृतियों ने सिकन्दर के सामरिक अभियानों जैसी घटनाओं के अपने विवरण में यूरोप की श्रेष्ठता की साम्राज्यवादी धारणाओं को सतर्कतापूर्वक अक्षुण्ण बनाये रखा। उन्होनें यह सिद्ध करने का यथासम्भव प्रयास किया कि सर्वत्र व्याप्त राजनैतिक अराजकता भारत की सामान्य राजनैतिक स्थिति थी। भारतीयों मे एकसूत्रता तथा स्वशासन की क्षमताओं के अभाव में ब्रिटिश शासन के स्थायित्व को पूरी तरह अनिवार्य बना दिया।

आर0 सी0 मजूमदार ऐसे प्रयासों के दृष्टान्त शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिनके द्वारा पूर्व में भारतीय उपलब्धियों को कम करके आंका गया। पेरीप्लस के स्पष्ट साक्ष्य को सामने रखते हुए एल्फिस्टन का यह मानना है कि भारत के विदेशी व्यापार का संचालन यूनान तथा अरब देशवासी करते थे। उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने भारतीय वेद तथा महाकाव्यों की अपेक्षाकृत परवर्ती तिथियाँ निर्धारित की तथा बिना किसी प्रमाण के उनका कहना था कि भारतीयों ने निःसंदेह अपनी सस्कृति का अधिकांश अंश यूनानियों से आयात किया होगा। जब कभी भारतीय और विदेशी विचारों के बीच थोड़ा बहुत समानता दृष्टिगोचर होती थी तो यह माना गया कि भारतीयों ने इसे विदेशियों से ग्रहण किया होगा। महाकाव्यों के बारे में यह माना गया कि वे होमर की रचनाओं पर आधारित थे। भारतीय नाटक, गणित, दर्शन और खगोलशास्त्र यूनानियों से उद्भूत माने गये। इतना ही नहीं कृष्ण के पौराणिक, आध्यात्मिक व्यक्तित्व का स्रोत भी ईसामसीह को माना गया। इस तरह का निष्कर्ष पूर्वाग्रहग्रस्त मानसिकता का ही प्रदर्शन करता है (ई0 श्रीधरण पृष्ठ-389)। इसी प्रकार त्रिकोणमिति के 'साइन' का आविष्कारक भारत है, किन्तु टैनेरी

पड़ता है। आर0 सी0 मजूमदार राष्ट्रवादी इतिहासकार पद का प्रयोग केवल उन्हीं भारतीयों के लिए करते हैं जिन्होंनें अपने देश के इतिहास की पुनर्प्रस्तुति के क्रम में परीक्षण अथवा पुनःपरीक्षण को अपना लक्ष्य बनाया। इसलिए एक राष्ट्रवादी इतिहासकार अनिवार्यतः एक प्रचारक या प्रदर्शनवादी नहीं कहा जा सकता।

2.3 राष्ट्रवादी इतिहास चिन्तन की पृष्ठभूमि

ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवादी सोच के अधीन एक लम्बे समय तक जीवन-यापन ने भारतीयों को कुछ अलग सोचने को प्रेरित किया। उनकें अन्दर यह आशंका पैदा हुई कि पाश्चात्य सभ्यता कहीं हमारी सभ्यता को विस्थापित न कर दे, जैसा कि मैकाले और मिशनरी चाहते थे। अतः उनके अन्दर अपने धर्म तथा समाज में सुधार लाने तथा अपनी प्राचीन संस्कृति को पुनर्जीवित करने की भावना जागृत हुई। इस प्रवृत्ति ने पुनर्जागरण का रूप ले लिया जिसके फलस्वरूप भारतीयों में आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास की भावनाओं का संचार हुआ, जो पश्चिमी तूफान में तितर-बितर हो गया था। उनके अन्दर से प्रस्फुटित राष्ट्रीय भावना से धीरे-धीरे विदेशी प्रभुत्व से मुक्ति की अकांक्षा जागृत हुई। बंकिमचन्द्र चटर्जी ने कहा कि एकता का अभाव राष्ट्रीय गौरव तथा स्वतंत्रता की अकांक्षा उत्पन्न करने के एक साधन के रूप में इतिहास के अध्ययन तथा लेखन से अधिक मौलिक और कुछ नहीं था। इस प्रकार राष्ट्रवाद की उद्याम भावना ने राष्ट्रवादी इतिहास-चिन्तन एवं लेखन के लिए एक विचारात्मक आधार प्रदान किया।

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-चिन्तन की पृष्ठभूमि के विशेष संदर्भ में कुछ विशेष बातों पर विचार कर लेना आवश्यक है। इसमें कोई दो राय नहीं कि भारत एक लम्बे समय तक ब्रिटिश हुकूमत में था। बिट्रिश साम्राज्यवादी हमलों से भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों तथा विचारों का क्षरण हो रहा था। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विविध पक्ष अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे थे। अंग्रेजों के संरक्षण में भारतीय इतिहास-लेखन में साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी पूर्वाग्रह साफ दिखाई दे

का कहना है कि भारतीय किसी भी प्रकार के गणितीय आविष्कार नहीं कर सकते थे, 'साइन' निःसंदेह एक यूनानी अवधारणा थी। इस प्रकार उपनिवेशवादियों का उद्देश्य भारतीय संस्कृति का अवमूल्यन करना तथा हिन्दू धर्म और संस्कृति के कमजोर पक्षों को चुन-चुनकर प्रस्तुत करना था।

उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने भारत की राजनीति तथा सामाजिक विकास का जिस प्रकार निषेधात्मक परिदृश्य प्रस्तुत किया और उपनिवेशवाद को जायज ठहराने के लिए तर्क ढूँढे वहीं इसकी भारतीय इतिहासकारों द्वारा राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया हुई । भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने उपनिवेशवादी ढाँचे का विरोध करने के लिए अपना एक ढाँचा निर्मित किया। जिस प्रकार भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन उपनिवेशवाद का विरोध कर रहा था, उसी प्रकार उपनिवेशवादी इतिहास-लेखन के जबाब और प्रतिक्रिया में राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन विकसित हुआ और भारतीय जनता और उनके ऐतिहासिक दस्तावेजों को गलत रूप में पेश करने के उपनिवेशवादी तरीकों का विरोध करने और एक राष्ट्रीय आत्मसम्मान प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के प्रयास किये गये।

2.4 राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की प्रकृति और विषय वस्तु

इसमें कोई दो राय नहीं कि ब्रिटिश उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों की व्याख्या अपने उपनिवेशवादी हितों को ध्यान में रखते हुए की थी। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने उन विविध प्रसंगों को अपने राष्ट्रवादी नजरिये से पुनर्व्याख्यायित करने का प्रयास किया। उन्होनें इसके लिए विस्तृत और सूक्ष्म अनुसंधान किये, जिसके फलस्वरूप तथ्यों और विवरणों की सार्थकता बढ़ी और भारतीय इतिहास-लेखन में मौलिक और प्राथमिक स्त्रोतों के प्रयोग का चलन बढ़ा। राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की विषयवस्तु तथा प्रकृति को हम निम्नलिखित प्रकार से समझ सकते हैं:

2.4.1- अधर्म और समाज- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों का प्रथम लक्ष्य हिन्दू धर्म और इसके पावन साहित्य पर किये गये आघातों को निरस्त करना था। इसके लिए इतिहासकारों की अपेक्षा समाजसुधारकों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस समय दो चिन्तनधाराओं ने अपनी भूमिका का निर्वाह किया। इनमें से एक अतिवादी चिन्तनधारा थी जिसने हिन्दू धर्म के सभी पक्षों का समर्थन किया तथा उसे सशक्त आध्यात्मिक शक्ति तथा अन्य धर्मों से श्रेष्ठ माना। इसमें राज नारायण बोस, बंकिमचन्द्र चटर्जी और शषाधर तर्क चूड़ामणि सहित अनेक लोग शामिल थे। दूसरी चिन्तनधारा का नेतृत्व स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया, जो उदारवाद और रूढ़िवाद के विचित्र संगम थे। उन्होंने तार्किक-बौद्धिक आधार पर हिन्दूधर्म का समर्थन किया। उनका दावा था कि हिन्दुओं के सच्चे धर्म और समाज का आदर्श वेदों में विद्यमान है। जाति की खोखली व्याख्या श्रम के विभाजन के रूप में की गयी और यह दर्शाया गया कि वैदिक काल और परवर्ती काल में भी महिलाओं को अत्यन्त उच्च सामाजिक दर्जा प्राप्त था।

2.4.2- भौतिक संस्कृति- हम जानते हैं कि उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने हमारी संस्कृति और सभ्यता के अवमूल्यन में कोई कोताही नहीं की थी। उन्होंने हिन्दू संस्कृति के भौतिक पक्ष की विशेष रूप से आलोचना की। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अपने अभिनव स्त्रोतों के प्रयोग द्वारा उनकी पूर्वाग्रही धारणा को गलत सिद्ध किया। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमेश चन्द्र दत्ता ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सिविलाइजेशन इन एन्सियेन्ट इण्डिया' में उक्त तथ्यों और आंकड़ों को एक साथ प्रस्तुत किया। आर0 सी0 मजूमदार इसे सर्वोत्तम अर्थ में पहला राष्ट्रवादी इतिहास कहते हैं। यह पुस्तक अपने वैज्ञानिक तथा उदार तेवर के कारण विशिष्ट है और भारतीयों के अतिरंजित राष्ट्रीय भावना से अलग दिखायी देती है। किन्तु रूढ़िवादी हिन्दूत्व के राष्ट्रवादी समर्थक दत्ता के निष्पादन से संतुष्ट नहीं थे। रूढ़िवादी हिन्दू भावनाओं के प्रभाव में उन्होनें हिन्दू धर्म की आध्यात्मिक सर्वोच्चता को सिद्ध करने का प्रयास किया। वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों के लम्बे-चौड़े दावे किये

गये, जिनमें कहा गया कि प्राचीन भारत के लोगों को तमंचों तथा वायुयानों का भी ज्ञान था। भारतीय संस्कृति पर बाहरी प्रभाव की सम्भावना को खारिज किया गया। कुछ भारतीयों ने तो यह भी कहा कि भारत ही आर्यो का मूल निवास स्थल था और यहाँ से ही ये यूरोप में फैले।

2.4.3- राजनीति और प्रशासन- उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने स्थापित किया था कि भारत एक राष्ट्र नहीं अपितु छोटे-छोटे राज्यों का एक असंगठित समूह था, जहाँ पर शासन तथा न्याय-व्यवस्था का कोई संवैधानिक स्वरूप नहीं था। इसके विरूद्ध आर0 के0 मुकर्जी ने अपनी पुस्तक 'द फण्डामेंटल यूनिटी आफ इण्डिया' के माध्यम से यह धारणा प्रस्तुत की कि- पूरे भारत में हिन्दुओं के मध्य धार्मिक एकता, आध्यात्मिक साहचर्य एवं एक अखिल भारतीय साम्राज्य का उनका आदर्श अतीत में भारतीय राष्ट्रवाद के आधार तत्व थे। के0 पी0 जायसवाल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू पोलिटी' के माध्यम से प्रदर्शित किया कि अतीत में न केवल सरकार का एक संवैधानिक स्वरूप अपितु सम्पूर्ण संसदीय प्रणाली अस्तित्व में थी तथा उनमें प्रतिनिधिक संस्थाओं का भी अस्तित्व था। राष्ट्रवादी दृष्टिकोण में मूलतः इस बात पर बल दिया गया कि पश्चिम में जिसे राजनीतिक रूप से सकारात्मक माना गया वह पहले से ही भारत में मौजूद था। आर0 सी0 मजूमदार ने अपनी पुस्तक 'कारपोरेट लाइफ इन एंसियंट इण्डिया' में लिखा है कि ''वे संस्थाएँ जिन्हें हम श्रेष्ठ मानते हैं, वे भारत में सदियों से मौजूद थीं।'' यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि पश्चिम की मूल्य संरचना को स्वीकार कर लिया गया था। समग्र रूप से प्राचीन भारतीय राजनीतिक संस्थाओ की महानता स्थापित नहीं की गयी थी, बल्कि महान मानी गयी पश्चिमी संस्थाओ को प्राचीन भारत में ढूँढने का प्रयास किया गया।

2.2.4-अंग्रेजों के प्रति घृणा- राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन पर आरोप है कि इसने ब्रिटिश सरकार तथा व्यक्तिगत तौर पर अंग्रेजों के विरूद्ध घृणा को प्रोत्साहित किया। दादा भाई नौरोजी तथा आर0 सी0 दत्ता को यदि छोड़ दिया जाय तो उक्त आरोप गलत नहीं हैं। बी0 डी0 बसु जैसा इतिहासकार राष्ट्रवादी पूर्वाग्रह के

काल के इतिहास में इसका दखल नहीं था और 1947 ई0 के बाद ही इस धारा के इतिहासकारों ने आधुनिक भारत पर अपनी कलम उठाई। इसका एक कारण यह था कि राष्ट्रवाद के दौर में राष्ट्रवादी होने का मतलब था, साम्राज्य विरोधी होना। इसके लिए शासक और औपनिवेशिक शासन से दुश्मनी मोल लेनी पड़ती और शिक्षाविदों के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं था। राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन के गुण-दोषों पर विचार के संदर्भ में कहा जा सकता है कि राष्ट्रवादी विचारधारा में आस्थावान विद्वानों के इतिहास-लेखन का मुख्य उद्देश्य भारतीय जीवन और संस्कृति के विरूद्ध लगाये गये यूरोपियों के आरोपों का खण्डन करना था। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयास में भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखकों की निष्पत्ति में यदा-कदा ऐतिहासिक सुसंगतता का अभाव दिखाई देता है जिसका प्रभाव सम्पूर्ण ऐतिहासिक ढाँचे पर स्पष्ट देखा जा सकता है। यहाँ उन बिन्दुओं पर संक्षेप में परिचर्चा की जा रही है-

2.5.1- शोध-पद्धति सम्बन्धी त्रुटियाँ- अन्य देशों की तरह भारत का राष्ट्रवादी इतिहास लेखन यदा-कदा शोध सम्बन्धी दोष के लिए जिम्मेदार था। इनमें सबसे प्रमुख दोष वस्तुनिष्ठता का अभाव था जो इतिहास का सारभूत तत्व है। प्राचीन भारत में उत्तरदायी सरकार के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए के0 पी0 जायसवाल महोदय अभिलेखों तथा साहित्यिक पाठों में उल्लिखित शब्दों तथा अनुच्छेदों की नयी व्याख्याएँ की। ए0 एल0 वासम का आरोप है कि जायसवाल जी ने मनोनुकूल निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए पदों तथा अनुच्छेदों की सकारात्मक व्याख्या की तथा अपने विरूद्ध सभी साक्ष्यों को दरकिनार कर दिया।

2.5.2- अंध देशभक्ति के दावे- राष्ट्रवाद से अंधदेशभक्ति तक का फासला केवल एक ही कदम का होता है। यदि साम्राज्यवादी इतिहासकार भारत के अतीत में सबकुछ बुरा देखने के लिए प्रवृत्त थे, तो कुछ राष्ट्रवादी इतिहासकार इसमें सब कुछ अच्छा देखने के लिए आमादा थे, जिसके परिणामास्वरूप इनके इतिहास लेखन में तटस्थता, संतुलन, दृष्टिपरकता तथा वस्तुनिष्ठता का अभाव दिखायी देता है। रोमिला थापर लिखती हैं कि ''प्राचीन भारत के अतीत का निःसंकोच

वशीभूत होकर मैकाले की शिक्षा-प्रणाली और डलहौजी द्वारा प्रणीत भारतीय देशी राज्यों के अधिग्रहण की नीति की अंधाधुंध आलोचना करता है। आर0 सी0 मजूमदार का कहना है कि बी0 डी0 बसु की तीखी और कठोर टिप्पणियों का एकमात्र प्रयोजन ब्रिटिश सत्ता को विश्व के वैचारिक कटघरे में खड़ा करना था। इसी तरह के कई उदाहरण आपको मिलेगें जो अंगेजों के प्रति पूर्वाग्रह की भावना का अभिद्योतन करते हैं।

2.4.5- भारतीय इतिहास की पुनर्प्रस्तुति- राष्ट्रवादी इतिहास लेखकों ने स्वतंत्रा के लिए संघर्ष में उत्साह भरने के लिए भारतीय इतिहास की एक सजग पुनर्प्रस्तुति का प्रयास किया। बी0 डी0 सावरकर की पुस्तक 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम' इस दृष्टि का सर्वोत्तम उदाहरण है, जिसमें नितान्त राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से इतिहास का निरूपण किया गया है। एस0 बी0 चौधरी ने अपनी पुस्तक 'सिविल रेविलियन्स इन द इण्डियन म्यूनिटि, 1857-59' में धारणा व्यक्त की कि गदर के साथ हुए जनविद्रोहों ने ही इसे एक राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का चरित्र प्रदान किया। पुनः जब ब्रिटिश सरकार ने यह स्पष्ट किया कि हिन्दू मुसलमान सम्प्रदायों के बीच अन्तर भारत को अधिराज्य का दर्जा देने में प्रमुख बाधा थे, तो सम्प्रदायवाद के हानिकारक प्रभाव को महसूस करते हुए कुछ राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अपनी पारम्परिक लीक से हटकर पूरे मध्यकालीन भारतीय इतिहास की नये सिरे से पुनः व्याख्या की जिससे कि यह सिद्ध किया जा सके कि हिन्दुओं और मुसलमानों ने हमेशा एक दूसरे के साथ अच्छे भाइयों जैसा बर्ताव किया और मिलजुलकर एक एकीकृत राष्ट्र की नीव डाली। ताराचंद की पुस्तक 'इन्फ्लुएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर' इस दिशा में एक अन्य प्रयास है।

2.5 भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का दोष

राष्ट्रवादी इतिहास लेखन मुख्य रूप से प्राचीन और मध्यकालीन भारत के इतिहास लेखन से सम्बन्धित था और इसी से उसे प्रसिद्धि भी मिली। आधुनिक

महिमामण्डन किया गया, गौरवशाली अतीत अपमानजनक वर्तमान के लिए एक तरह की क्षतिपूर्ति का प्रतीक था''। भारत की गरिमा में गहन विश्वास के कारण इतिहासकारों के तर्क कभी कभी हास्यास्पद की सीमा तक चले जाते थे। प्राचीन भारत में संवैधानिक राजसत्ता, संसदीय सरकार, वोटिंग आफ ग्रान्ट्स तथा सिंहासन से सम्बोधन जैसे मुद्दों पर जायसवाल के दृढ़ीभूत विचार इसी का दृष्टान्त हैं।

2.5.3- वैचारिक अन्तर्विरोध- राष्ट्रवादी इतिहासकारों के विचारों तथा दृष्टिकोणों में हमें अन्तर्विरोध दिखायी देता है। सैन्य शक्ति और अहिंसा के मूल्य, लोकतांत्रिक परम्परायें और राष्ट्रीय गौरव हिन्दूत्व की आध्यात्मिक श्रेष्ठता और प्राचीन भारत की सांसारिकता, वैदिक काल में महिलाओं की उच्च स्थिति और सामाजिक, धार्मिक, तथा नैतिक आधारों पर उनकी निम्न स्थिति तथा मुख्य धारा से अलगाव अन्तर्विरोध के केन्द्र में हैं।

2.5.4- सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहन- राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन पर आरोप है कि इसने सम्प्रदायवाद को पैदा किया जिसमें अत्यन्त खतरनाक सम्भावनाएँ छिपी हुई थी। मुसलमानों के विरूद्ध, राजपूतों, मराठों और सिखों के वीरतापूर्ण सामरिक अभियानों के जो उत्तेजक विवरण इन हिन्दु इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत किये गये वे मुसलमान इतिहासकारों के लिए एक कठोर चुनौती की तरह थे, जिनको नजरंदाज कर पाना सम्भव नहीं था। नाटक, काव्य और उपन्यासों ने दोनों सम्प्रदायों के बीच वैमनस्य को अधिक भड़का दिया। सम्प्रदायवाद जिसने अंततः देश को विभाजित कर डाला, के बीज निसंदेह इतिहास-लेखन में भी छुपे हुए थे।

2.6 राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का सकारात्मक पक्ष

राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का एक सकारात्मक पक्ष भी है जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। राष्ट्रवादी विचारक बंकिम चन्द्र चटर्जी यदि आज जीवित होते तो उन्हें यह देखकर सुखद आश्चर्य होता कि कितनी बड़ी संख्या में उनके देशवासी

अपने अतीत की खोज में जुटे हुए हैं। उक्त इतिहास लेखन के सकारात्मक पक्ष को हम निम्नलिखित बिन्दुओं में देख सकते हैं-

2.6.1 ऐतिहासिक अध्ययन की प्रेरणा- भारत में ऐतिहासिक अध्ययन को सबसे अधिक बल और प्रेरणा राष्ट्रवाद की भावना से मिली। भारतीयों ने अपने राष्ट्रीय विकास का आधार वर्तमान में हीं नहीं बल्कि प्राचीन अतीत में खोजा। ऐतिहासिक खोजबीन को एक सशक्त प्रयोजन प्रदान करके राष्ट्रवाद की भावना ने ऐतिहासिक अनुसंधान-कार्य को तेज कर दिया। साम्राज्यवादी चुनौती का सामना करने के लिए तथा अपने राष्ट्र और संस्कृति के विरूद्ध पश्चिमी आक्षेपों तथा आरोपों का खण्डन करने के लिए वे वैचारिक समर में कूद पड़े। उनके शोध-अनुसंधानों ने प्राचीन अतीत के अनेक पक्षों को उद्घाटित किया तथा इस नये ज्ञान के भण्डार ने भारतीयों के अन्दर राष्ट्रीय उत्साह और गौरव का संचार किया। स्वयं राष्ट्रवाद को समृद्ध बनाया तथा स्वतंत्रता के लिए हो रहे संघर्ष को तीव्र कर दिया।

2.6.2- राष्ट्रवादी इतिहासकारों द्वारा किये गये कार्य- राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अनेक ऐतिहासिक रचनायें की जो विद्वता के जगत में उच्च स्थान पाने की क्षमता रखती हैं। रोमेश चन्द्र दत्ता ने तीन खण्डों में अपनी पुस्तक ''सिविलाइजेशन इन एंशियन्ट इण्डिया'' का सम्पादन किया जिसे आर0 सी0 मजूमदार ने सर्वोत्तम अर्थ में पहला राष्टवादी इतिहास कहते हैं। यह पुस्तक अपने उदार तथा वैज्ञानिक तेवर के कारण विशिष्ट है। रोमिला थापर का मानना है कि ''कुछ दोषों के बावजूद भी राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने प्राचीन भारतीय इतिहास का विवेचन-विश्लेषण करने में सार्थक भूमिका का निर्वाह किया। यद्यपि ऐतिहासिक लेखन का अधिकांश अंश वंशावलियों के इतिहास तक ही सीमित था, प्राचीन राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर केन्द्रित परिचर्चाओं एवं वाद-विवादों ने सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास के अध्ययन को भी आवश्यक बना दिया।''

2.6.3 क्षेत्रीय एवं स्थानीय इतिहास में रूचि-वृद्धि- रोमिला थापर कहती हैं कि राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन से सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि क्षेत्रीय एवं स्थानीय इतिहास में लोगों की रूचि का विकास हुआ तथा स्थानीय संग्रहालयों में नये स्रोत तथा सामग्रियों की खोज हुई तथा क्षेत्रीय स्तर पर अधिक संख्या में पुरातत्वीय कार्य हुए। इन अध्ययनों का नतीजा इस रूप में सामने आया कि ऐतिहासिक ज्ञान की नई त्रुटियों का निवारण हो गया और साथ ही पूर्व के कुछ दोषपूर्ण सामान्यीकरण का संशोधन भी हो सका।

2.6.4 आर्थिक इतिहास का सूत्रपात – राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन ने आरम्भ में ब्रिटिश शासन के शोषित और उत्पीड़क स्वरूप को प्रदर्शित किया। दादा भाई नौरोजी तथा रोमेश चन्द्र दत्त ने भारत की दरिद्रता के लिए इसकी अर्थव्यवस्था पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था के प्रभुत्व को जिम्मेदार माना। नौरोजी द्वारा प्रवर्तित निकासी सिद्धान्त, द्वारा भारत की गरीबी के लिए यहाँ की धन-सम्पदा की अंग्रेजों द्वारा मुक्तहस्त से निकासी को दोषी ठहराया गया। रोमेश चन्द्र दत्ता की दो खण्डों में प्रकाशित पुस्तक ''इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'' ने स्पष्टवादी तेवर के साथ दृढ़तापूर्वक यह धारणा प्रस्तुत की कि भारत की व्याधि का आधारभूत कारण कृषि की समस्या में खोजा जाना चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आर्थिक समालोचना का जो स्वरूप नौरोजी तथा दत्ता में अधिव्यक्त हुआ उसने भारत के आर्थिक इतिहास का सूत्रपात किया।

2.6.5 सांस्कृतिक इतिहास की संकल्पना - राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन ने भारतीय जन-जीवन तथा संस्कृति के बहुआयामी पक्षों से सम्बन्धित जानकारी के लिए स्रोतों के विपुल भण्डार को आलोकित किया जिससे भारत के अतीत के अध्ययन की दृष्टि से एक नये अभिगम का प्रारम्भ हुआ जिसे सांस्कृतिक इतिहास की संज्ञा प्राप्त हुयी। भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक इतिहास के लिए स्रोत-सामग्री पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। एक राष्ट्रवादी इतिहासकार सरदार के. एम. पणिक्कर ने अपनी पुस्तक 'सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री' की भूमिका में सांस्कृतिक

अभिगम के सारतत्व को व्यक्त करते हुए कहा कि ''जब से भारत अपनी राष्ट्रीयता के प्रति सजग हुआ, भारत का इतिहास लिखे जाने की उत्कंठा अधिकाधिक तीव्रता से मुखर होती गयी जो अतीत को इस तरह पुनर्प्रस्तुत करनें का प्रयत्न करता जिससे हमें अपनी विरासत की जानकारी मिलती। इस प्रकार राष्ट्रवादी चिन्तन तथा इतिहास-लेखन ने ऐतिहासिक गवेषणा में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

2.7 बोध-प्रश्न

1- राष्ट्रवादी इतिहास लेखन से क्या अभिप्राय है? भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

2- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासलेखन की प्रकृति तथा विषयवस्तु पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

3- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन के गुण तथा दोषों की समीक्षा कीजिए।

4- आधुनिक युग के राष्ट्रवादी इतिहास तथा इतिहासकारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2.8 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास लेखः एक पाठ्य पुस्तक- ई. श्रीधरन

2- इतिहास-लेखन के विविध आयाम- डॉ0 एस0 के0 राय एवं अन्य

3- इतिहास-लेखन : धारणायें तथा पद्धतियाँ- डॉ0 के0 एल0 खुराना और डॉ0 आर0 के0 बंसल

इकाई -3

मार्क्सवादी इतिहास-लेखन

इकाई की रूपरेखा-

3:0 उद्देश्य

3:1 प्रस्तावना

3:2 कार्ल मार्क्स का जीवनवृत्त

3:3 मार्क्सवादी इतिहास-दर्शन

- 3.3.1 ऐतिहासिक-अवधारणा
- 3.3.2 वर्ग-संघर्ष की अवधारणा
- 3.3.3 नियतिवादी दृष्टिकोण
- 3.3.4 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
- 3.3.5 मानव-इतिहास का वर्गीकरण
- 3.3.6 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

3:4 मार्क्सवादी दृष्टिकोण का मूल्याँकन

3:5 बोध-प्रश्न

3:6 संदर्भ-ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें कि –

- इतिहास-लेखन का प्रमुख आधार युग-युगीन सिद्धान्त तथा सामाजिक आवश्कताएँ होती हैं।
- इतिहास-लेखन के मार्क्सवादी दृष्टिकोण की क्या विशेषतायें हैं।
- इतिहास-लेखन का भौतिक दृष्टिकोण क्या है।
- मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है। यह हीगल की द्वन्द्वात्मक अवधारणा से किस प्रकार भिन्न है।

3.1 प्रस्तावना

इतिहास लेखन का कार्य बहुत ही चुनौतीपूर्ण तथा गुरूत्तर दायित्व का कार्य है। प्रत्येक युग का इतिहासकार युग-युगीन सिद्धान्तों तथा आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में इतिहास लेखन करता है। युग की गतिशीलता के कारण सामाजिक आवश्यकताओं का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। समाज की आवश्यकताएँ इतिहास की अवधारणा का मुख्य आधार होती हैं। शायद इसीलिए क्रोचे ने सभी इतिहास को समसामयिक कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि इतिहासकार अपने युग के दृष्टिकोण तथा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से अतीत की घटनाओं को देखता है। चूँकि इतिहासकार का व्यक्तिगत दृष्टिकोण समय के साथ परिवर्तित होता रहता है। अतः उसके युगयुगीन इतिहास के प्रति भी विचारों में परिवर्तन दिखायी पड़ता है। प्रारम्भ में इतिहास के प्रति विद्वानों ने धार्मिक दृष्टिकोण को अपनाया था किन्तु कालान्तर में उस दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया। 19वीं तथा 20वीं सदी में विज्ञान की चौमुखी प्रगति ने, ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन, विश्लेषण तथा व्याख्या के संदर्भ में अनेक नवीन विचारधाराओं तथा दृष्टिकोणों को जन्म दिया तथा इतिहास के स्वरूप के सम्बन्ध में नये-नये प्रतिमान स्थापित हुए। इन विचारधाराओं में इतिहास लेखन का मार्क्सवादी नजरिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो ऐतिहासिक व्याख्या के भौतिकवादी दृष्टिकोण के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस विचारधारा के

जनक कार्ल हेनरिच मार्क्स हैं। इस इकाई में मार्क्सवादी दृष्टिकोण में इतिहास अवधारणा की विषद विचेचना की गयी है। मार्क्सवादी विचारधारा में इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद, वर्गसंघर्ष की अवधारणा आदि के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है।

3.2 कार्ल मार्क्स का जीवनवृत्त

इतिहास लेखन के मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रवर्तक कार्ल हेनरिच मार्क्स का जन्म सन् 1818 ई0 में जर्मनी के एक यहूदी परिवार में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बोन तथा बर्लिन में हुई थी। उन्होनें 1836 ई0 में बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था। इग्लैंण्ड में अध्ययन करते समय उनकी रूचि इतिहास और दर्शन के प्रति हुई थी। मार्क्स पर अंग्रेजी, औद्योगिक क्रान्ति, फ्रांस की राजनीतिक क्रान्ति और जर्मन भौतिक क्रान्ति का प्रभाव पड़ा था। फ्रेड्रिक एंजिल से मार्क्स का ऐतिहासिक सम्बन्ध 1844 ई0 में स्थापित हुआ। दोनों ने साथ-साथ रचनाएँ की तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन में भी भाग लिया। मार्क्स तथा एन्जिल्स ने मिलकर के 1848 ई0 में साम्यवादी घोषणापत्र प्रकाशित किया। इसके बाद मार्क्स इग्लैण्ड चले गये जहाँ जीवनपर्यन्त अध्ययन में व्यस्त रहे। मार्क्स के जीवन का अन्तिम समय बड़ी कठिनाई से व्यतीत हुआ। इस समय एंजिल्स अपनी आय से मार्क्स की सहायता करते रहे। अन्त में सन् 1883 ई0 में महान दार्शनिक मार्क्स का देहावसान हो गया।

मार्क्स की सर्वात्तम कृति ''दास कैपिटल'' है जिसके प्रथम भाग को ही मार्क्स लिख पाये थे। जबकि दूसरा और तीसरा भाग उनकी मृत्यु के बाद एंजिल्स ने उनकी टिप्पणियों के आधार पर प्रकाशित किया।

3.3 मार्क्सवादी इतिहास दर्शन

वर्तमान युग में इतिहास लेखन पर कार्लमार्क्स का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वह न केवल इतिहास दर्शन का महान विचारक तथा नैतिकता

का महान समर्थक था, अपितु सामाजिक विचारधारा का प्रबल अनुयायी भी था। प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय के अनुसार मार्क्स हेगल का महत्वपूर्ण अनुयाायी था और विरोधी भी। अनुयायी इसलिए कि उसने ''द्वन्द्वात्मक पद्धति'' को स्वीकार किया, विरोधी इसलिए कि उसने विज्ञानवाद को भौतिकवाद से विस्थापित किया। मार्क्स के इस मत को प्रायः एक इतिहास दर्शन के रूप में समझा जाता है। लेकिन मार्क्स दार्शनिक व्याख्याओं के स्थान पर ऐतिहासिक व्याख्या करना चाहता था। मार्क्स का कहना है कि विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भो में सदृश घटनाएँ विभिन्न परिणामों को पैदा करती हैं। इन विभिन्न घटनावलियों के अर्थ, उनके अलग-अलग विकास के अध्ययन से पता चलते हैं न कि किसी इतिहास दर्शन में उपलब्ध सामान्य नियम से। इस प्रकार का इतिहास दर्शन वस्तुतः अनैतिहासिक होता है।

इस प्रकार यदि हेगेल इतिहास दर्शन का प्रवर्तक था तो मार्क्स को ऐतिहासिक समाज विज्ञान का प्रवर्तक कहा जा सकता है। मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद समाज की एक नई विश्लेषण पद्धति, इतिहास की ओर नई दृष्टि है। तथापि मार्क्स के अनुयायियों ने विश्व इतिहास में एक निश्चित सामान्य क्रम को स्वीकार किया है। मार्क्स का आग्रह, ऐतिहासिक विश्लेषण और उसकी एक विशेष पद्धति पर है। इस प्रकार की दर्शनमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण पद्धति को एक प्रकार का इतिहास दर्शन कहना गलत नहीं कहा जा सकता। यद्यपि यह सही है कि मार्क्स इतिहास को सामान्य दार्शनिक सिद्धान्तों से निगमित नहीं करता। मार्क्सवादी इतिहास-लेखन को समग्रता में समझने के लिए निम्नलिखित को जानना अत्यावश्यक है।

3.3.1 ऐतिहासिक की अवधारणा

काल मार्क्स इतिहास दर्शन के महान विचारक, देवदूत, वैज्ञानिकता तथा नैतिकता के प्रबल समर्थक एवं इतिहास में सामाजिक विचारधारा के प्रवर्तक थे। उनकी विशेष रूचि इतिहास तथा दर्शन में थी। विद्यार्थी जीवन से ही वे सामाजिक

समस्याओं में विशेष रूचि रखते थे। एक बार उन्होनें अपने प्राध्यापक से पूछा था कि क्या लोग सोचते हैं कि मनुष्य का प्रकृति, प्राकृतिक विज्ञान तथा उद्योग से सम्बन्ध विच्छेद करके इतिहास का एक शब्द भी समझा जा साकता है। क्या उनका विश्वास है कि किसी युग के उद्योग, उत्पादन सम्बन्धी ज्ञान के अभाव में अतीत का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है? इतिहास को इन तथ्यों से अलग करने का तात्पर्य आत्मा को शरीर से, अपने को विश्व से अलग करना होगा, इस प्रकार इतिहास को प्राकृतिक विज्ञान तथा उद्योग से अलग करना होगा। (कार्ल मार्क्स, ए.जी. बिजेरी, इण्टरपेटेशन्स आफ हिस्ट्री, पेज-208)

कार्ल मार्क्स द्वारा की गयी इतिहास की व्याख्या को ही मार्क्सवादी दृष्टिकोण की संज्ञा प्रदान की गयी है। कार्ल मार्क्स की इतिहास-अवधारणा का आधार आर्थिक सिद्धान्त है। इतिहास की अवधारणा की आधारशिला नियतिवाद है। इसका स्वरूप ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की अनिवार्यता है; यही इतिहास का कारण है। सामाजिक परिवर्तन का मूल कारण आर्थिक विकास होता है। उन्होनें यह स्वीकार किया है कि विचार, संस्थायें, राजनीति, धर्म तथा संस्कृति को आर्थिक कारण प्रभावित करते हैं। मार्क्स ने इतिहास पर विचार के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया, परन्तु यह कहा है कि विचारक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक भी आर्थिक कारणों द्वारा नियंत्रित होते हैं। यूरोप में पुनर्जागरण का मूल कारण समुद्री व्यापारिक मार्गों की खोज, नवीन उद्योग-व्यापार तथा जलयानों में सुधार आदि थे। मार्क्स के अनुसार राष्ट्रों के मध्य संघर्ष अथवा मित्रता का अधार भी आर्थिक होता है। वर्तमान में विश्व में जो विभाजन की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है, वह भी आर्थिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इस प्रकार मार्क्स ने समाज और उसके कार्यों के स्थान पर आर्थिक कारणों को इतिहास में अधिक महत्व दिया तथा इसी आधार पर होने वाले वर्ग-संघर्ष को भी मान्यता प्रदान की।

3.3.2 वर्ग-संघर्ष की अवधारणा

मार्क्स का विश्वास था कि ऐतिहासिक प्रगति का मूल कारण प्राचीन तथा नवीन सामाजिक संगठन के बीच संघर्ष होता है। वाद तथा प्रतिवाद के द्वन्द्व के परिणाम स्वरूप साम्यवाद का उदय होता है। साम्यवाद से ही नवीन इतिहास का प्रारम्भ तथा प्राचीन प्रथा का अन्त होता है। साम्यवाद ही इतिहास का मानववाद है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य सतत् प्रयत्नशील है। वर्ग-संघर्ष को उन्होंने इतिहास की शक्ति स्वीकार किया है। मार्क्स का यह सिद्धान्त उसके ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त पर आधारित है। समाज में दो वर्गों का अस्तित्व रहा है- प्रथम पूँजीवादी वर्ग और द्वितीय श्रमिक वर्ग। प्रथम वर्ग का उत्पादन के सभी साधनों पर एकाधिकार होता है और वह मनमाने ढंग से द्वितीय वर्ग के गरीब लोगों का शोषण करता है। इस शोषित वर्ग को सर्वहारा वर्ग के नाम से भी जाना जाता है। इन दोनों वर्गों में सदैव संघर्ष होता रहता है। इस संघर्ष में अन्तिम विजय सर्वहारा वर्ग की होती है। अतः स्पष्ट है कि वर्ग-संघर्ष की भूमिका में ही इतिहास की गति निर्धारित होती है।

वर्ग-संघर्ष के सृजन के कारण को स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "दास-कैपिटल" में उल्लेख किया है कि इन दो विरोधी वर्गो का सृजन उद्योगों के केन्द्रीकरण तथा पूँजी के केन्द्रण के कारण होता है।

3.3.3 - नियतिवादी दृष्टिकोण

मार्क्सवादी नजरिये में इतिहास की आधारशिला नियतिवाद है। इसका तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी घटिता होता है, उसके निश्चित कारण होते हैं, तथा जिसके अभाव में घटना अलग तरीके से घटित हो सकती है। इसकी गतिविधि विधि-नियमों के अनुकूल चलती है। इतिहास की प्रक्रिया एक निश्चित लक्ष्य को लेकर एक निश्चित दिशा में चल रही है, जो अटल, अचल और अनिवार्य है। मार्क्स का विश्वास ऐतिहासिक नियति एवं अवश्यंभाविता में था। उन्होनें अपनी पुस्तक "क्रिटिक आफ

पोलिटिकल इकोनामी'' की भूमिका में लिखा है कि ''अपनी आजीविका के सामाजिक उत्पादन में मानव जाति एक निश्चित एवं आवश्यक सम्बन्धों में प्रवेश करती है, जो उसकी इच्छाओ से पूर्ण स्वतंत्र है। इस प्रकार मनुष्य अपनी आजीविका के उत्पादन में ऐसे सामाजिक सम्बन्धों में बँध जाता है कि न चाहते हुए भी उसे इस सामाजिक सम्बन्ध को स्वीकार करना पड़ता है। उदाहरणार्थ- समाज में दास-प्रथा को कोई नहीं चाहता, परन्तु आजीविका के साधन में सामाजिक अनिवार्यता के कारण सभी को स्वीकार करना पड़ता है। इसी प्रकार पूँजीपति और श्रमिक के सम्बन्ध सामाजिक अनिवार्यता के परिणाम हैं, न चाहते हुए भी अधिकांश श्रमिकों को इस प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ता है। काल मार्क्स का यह संकेत ऐतिहासिक-नियति, अवश्यंभाविता एवं अनिवार्यता को स्वीकार करना है।

3.3.4 - द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

मार्क्स विचार को इस जगत का आधार नहीं मानता अपितु भौतिक पदार्थ को आधार स्वीकार करता है। उसका भौतिकवाद द्वन्द्वात्मक है। मार्क्स ने हेगेल से द्वन्द्ववाद तो ग्रहण किया किन्तु इसका आशय एकदम परिवर्तित कर दिया।

मार्क्स के अनुसार भाव मनः पटल पर भौतिक जगत की छाया से उत्पन्न होते हैं। जगत के पृथक उनका कोई अस्तित्व नहीं है। अतः वाद-प्रतिवाद और साम्यवाद की प्रक्रिया भौतिक जगत की गति को व्यक्त करती है जिसका प्रतिबिम्ब मन की चिन्तन पद्धति में व्यक्त होता है। मार्क्स जगत की प्रत्येक वस्तु को भौतिकवादी दृष्टिकोण से देखते हैं और यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि प्रकृति में प्रत्येक वस्तु द्वन्द्वरत है। भौतिकजगत में यह द्वन्द्व निरन्तर चलता रहता है। जीवन बदलता है, उत्पादन की शक्तियाँ परिवर्तित होती रहती है और सम्बद्ध का निकास होता रहता है। इसी द्वन्द्व के कारण पुरानी वस्तु सड़-गलकर नष्ट होती रहती और उसका स्थान नवीन वस्तु ग्रहण करती रहती है। द्वन्द्वता में प्रत्येक वस्तु में कुछ भौतिक विरोधी तत्व होते हैं, जिनके मध्य बराबर संघर्ष चलता रहता है। यह द्वन्द्व, यह संघर्ष प्रकृति

में, सामाजिक व्यवस्था में तथा वर्गों में होता रहता है। यही द्वन्द्व और संघर्ष की शक्ति है।

इस प्रकार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का निरूपण वर्ग-संघर्ष में परिज्ञात होता है। इस इतिहास का अन्तिम चरण पूँजीवाद की उत्पत्ति है। इसका अन्त भी क्रान्ति द्वारा होगा। इस क्रान्ति के द्वारा मार्क्स का विश्वास था कि एक ऐसा समय आयेगा जब सम्पूर्ण विश्व में एक साम्यवादी व्यवस्था आ जायेगी और श्रमिकों के शासन की स्थपाना होगी। श्रमिकों के इस अधिनायकतंत्र के बाद समाज में केवल श्रमजीवी ही रह जायेगें और ऐसे समाज के लिए राज्य की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। क्योंकि वर्गहीन समाज अपना शासन स्वयं संचालित करेगा। (बुद्ध प्रकाश, पेज-267)।

3.3.5 मानव इतिहास का वर्गीकरण

मार्क्स ने मानव-इतिहास का वर्गीकरण कुल चार भागों में करते हुए एशियायी, प्रचीन यूरोपीय, सामन्तशाही, पूँजीवादी) इन्हें प्रागैतिहासिक नाम दिया है। उनके अनुसार मानव का वास्तविक इतिहास तो साम्यवाद के आगमन से प्रारम्भ होगा। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य सतत् प्रगतिशील है। मार्क्स के अनुसार प्राकृतिक शक्तियों पर मनुष्य की विजय इतिहास का विकसित स्वरूप है। मार्क्स सामाजिक व्यवस्था में निरन्तर परिवर्तन को इतिहास की गति स्वीकार करते हैं। उत्पादन की व्यवस्था तथा सामाजिक परिवर्तन की तीन अवस्थायें हैः दास प्रथा, सामन्तशाही तथा पूँजीवाद। पूँजीवाद इस परिवर्तन का चरमोत्कर्ष है। मार्क्स की इस अवधारणा ने सामाजिक विज्ञान के अध्ययन में अन्वेषण की नवीन विधाओं तथा विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रतिपादन किया है।

3.3.6 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

मार्क्स के अनुसार सभी महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन उत्पादन की प्रक्रियाओं से प्रारम्भ होते हैं। कार्ल मार्क्स प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होनें ऐतिहासिक व्यवस्था में आर्थिक कारणों को निर्णायक माना है। इसी को ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त

कहा जाता है। कार्ल मार्क्स ने तो वैज्ञानिक तथा बौद्धिक क्रान्तियों का कारण भी आर्थिक सिद्ध किया। आर्थिक उत्पादन तथा उपभोग के विधान से मानव इतिहास का स्वरूप निश्चित होता है। भौतिक जीवन की उत्पादन विधि जीवन के सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के लिए निर्णायक होती है। अपने इस आर्थिक व्याख्या में मार्क्स ने आदिम साम्यवाद, दासत्व सामन्तशाही, पूंजीत्व एवं साम्यावस्था का वर्गीकरण भी भौतिक तथा आर्थिक आधार पर ही किया है। अतः राजनीतिक जीवन तथा इतिहास को उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पन्न वर्ग-संघर्ष की पृष्टभूमि में ही समझा जा सकता है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि वर्गों के संघर्ष के साथ-साथ विचार-पद्धतियों में निरन्तर संघर्ष जारी रहता है। नवीन विचारधाराओं का प्रतिपादन किया जाता है। इसलिए मार्क्स ने लिखा है कि ''प्रत्येक युग में सर्वमान्य विचार वे होते हैं जिन्हे शासक-वर्ग द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है। (झारखण्ड चौबे, पृ0252)

मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या में इतिहास की गति को विकासात्मक प्रक्रिया में देखा था। इस प्रक्रिया का संकेत सदैव भविष्य की ओर रहता है। मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों को दृढ़ता के साथ अतीत पर आधारित किया। परन्तु वर्तमान में वर्गहीन समाज के उद्देश्यों की पूर्ति की कठिनाइयों ने उन्हें भविष्य के विषय में सोचने के लिए विवश कर दिया। वर्गहीन समाज के संघर्ष का अभिप्राय सुखद भविष्य का निर्माण है। भविष्य के विषय में उनके दृष्टिकोण ने इस उद्घोषणा के लिए विवश कर दिया कि भावी विश्व का समाज वर्गहीन होगा जिसमें शासन की कोई आवश्यकता नहीं होगी। उन्होने वर्गहीन समाज को सम्बोधित करते हुए कहा थाः- ''उन्हें अपने पूर्ण सत्य को भविष्य में प्रक्षेपित करना चाहिए।'' इस प्रकार मार्क्स ने इतिहास में भविष्यवाणी या भविष्य कथन करने के सामर्थ्य सिद्धान्त की पुष्टि की है (ई.एच.कार, पृ0-135)।

3.4 मार्क्सवादी दृष्टिकोण का मूल्याँकन

इसमें कोई दो राय नहीं कि मार्क्स अपने समय के महानतम दार्शनिकों तथा चिन्तकों मे से एक हैं, जो इस संसार में अवतरित हुए। मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद समाज की एक नवीन विश्लेषण पद्धति और इतिहास की ओर एक नवीन दृष्टि है। उसने प्रत्येक ऐतिहासिक समस्या को वैज्ञानिक पद्धति से समझा और राज्यविहीन और वर्गविहीन समाज की रचना का दिव्य स्वप्न देखा। मार्क्स की यह मान्यता है कि प्रत्येक युग में उत्पादन की शक्तियों से मानव में एक विशेष प्रकार के आर्थिक सम्बन्ध पैदा होते हैं जिनके कारण मनुष्य आर्थिक वर्गो में बँटे रहते हैं तथा इन वर्गों के संघर्ष के परिणामस्वरूप मानव इतिहास निरन्तर आगे की ओर अग्रसरित होता रहता है, इतिहास जगत को बहुत बड़ी देन है। आधुनिक इतिहास अवधारणा पर इसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। मार्क्स की इस अवधारणा ने वर्तमान सामाजिक दृष्टिकोण को अत्यधिक प्रभावित किया है।

इन सबके बावजूद आलोचकों ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण की कटु आलोचना की है। उनका कहना है कि मार्क्स का वर्ग-संघर्ष सिद्धान्त द्वारा केवल घृणा का प्रचार होता है, प्यार का नहीं। इसके कारण ही फासीवाद का जन्म सम्भव हो सका। वस्तुतः मार्क्स के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त का उपयोग केवल अतीत की व्याख्या में किया जा सकता है, भविष्य के संदर्भ में कदाचित नहीं।

मार्क्स के चिन्तन की भले ही विद्वानों ने आलोचना की है परन्तु उसको पूरी तरह से निरर्थक और आधार-रहित नहीं कहा जा सकता। यद्यपि यह सत्य है कि इतिहासदर्शन के क्षेत्र में मार्क्स की कोई महत्वपूर्ण देन नहीं है परन्तु इतिहास की आर्थिक व्याख्या उसके द्वारा प्रस्तुत एक नवीन विषय है। उसने पूँजीवाद के अवशेषों पर साम्यवाद के पौधे को लहराते देखा। मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों को दृढ़ता से अतीत पर आधारित किया। परन्तु वर्तमान में वर्गहीन समाज के उद्देश्यों की पूर्ति की कठिनाईयों ने उन्हें भविष्य के विषय में सोचने के लिए बाध्य कर दिया। वर्गहीन

समाज के संघर्ष का अभिप्राय सुखद भविष्य का निर्माण करना है। मार्क्स के अनुसार भावी विश्व का समाज वर्गहीन होगा जिसमें शासक की आवश्यकता नहीं होगी। शोषण,दमन तथा अत्याचार से रहित वर्गहीन समाज की परिकल्पना आज भी एक आकर्षक सिद्धान्त है।

3.5 बोध-प्रश्न

1- इतिहास लेखन के मार्क्सवादी दृष्टिकोण पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

2- इतिहास की अवधारणा के सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

3- मार्क्स के ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद, वर्गसंघर्ष की अवधारणा तथा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के विशेष संदर्भ में मार्क्स वादी विचारधारा पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

4- मार्क्स के ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद को स्पष्ट कीजिए। यह हीगल के द्वन्द्ववाद से किस प्रकार भिन्न है।

3.6 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास दर्शन : बुद्ध प्रकाश

2- इतिहास-स्वरूप एवं सिद्धान्त : प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय

3- इतिहास-दर्शन : झारखण्ड चौबे

इकाई -4

इतिहास लेखन में सम्प्रदायवाद

इकाई की रूपरेखा-

4:0 उद्देश्य

4:1 प्रस्तावना

4:2 भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण

4:3 सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के विकास का आधार

4.3.1 अँग्रेजों की नीति

4.3.2 मध्यकालीन विवरण और तथ्य का सम्प्रदायवादी स्वरूप

4.3.3 इतिवृत्तों की धार्मिक दृष्टि को मान्यता

4.3.4 मध्यकालीन इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या

4:4 सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के आधारभूत तत्व

4.4.1 परस्पर विरोधी समुदाय की अवधारणा

4.4.2 मध्यकालीन भारत में मुसलमानों को शासक के रूप में देखने की दृष्टि

4:5 सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन की आलोचना

4:6 बोध-प्रश्न

4:7 संदर्भ-ग्रन्थ

4 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेगें कि-

- इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण का क्या तात्पर्य है?
- भारतीय इतिहास-लेखन में सम्प्रदायवादी चेतना का प्रसार कैसे हुआ?
- भारतीय इतिहास-लेखन में सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण का प्रसार किन आधारभूत तत्वों पर आधारित है।
- राष्ट्रवादी और सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन में क्या अन्तर है?

4.1 प्रस्तावना

इतिहास लेखन अतीत की व्याख्या के अध्ययन से सम्बन्धित है। अतीत की इस व्याख्या पर अनेक विचारधाराओं, दृष्टिकोणों तथा पूर्वाग्रहों का प्रभाव अवश्यंभावी है। भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण ने भारतीय इतिहास के स्वरूप को विशेष रूप से प्रभावित किया है जिसके विकास में अंग्रेजों की "फूट डालो और शासन करो" की नीति को विशेष रूप से जिम्मेदार माना जाता है। उपनिवेशवादियों ने इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या कर भारतीय इतिहास लेखन में हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहित किया। विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले इतिहास ने खासतौर पर सम्प्रदायिकता को फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, किन्तु 1947 ई0 के बाद ही सम्प्रदायवादी शक्तियों ने भारत और पाकिस्तान के बुद्धिजीवी वर्ग में अपनी जगह बनायी। इस इकाई में भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी प्रवृत्तियों तथा उनके प्रभावों की विशद विवेचना की गयी है।

4.2 भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी चेतना का प्रसार

भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी चेतना के प्रसार में इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या को विशेष रूप में जिम्मेदार माना जाता है। हिन्दू सम्प्रदायवाद पर यह बात विशेष रूप से लागू होती है। जबकि मुस्लिम सम्प्रदायवाद मुख्य रूप से धर्म और अल्पसंख्यक भावना से प्रभावित था जिसका उपयोग लोगों में डर पैदा

करने के लिए किया जाता था। इसी प्रकार का डर पैदा करने के लिए हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने भारतीय इतिहास के मध्यकाल को मिसाल के तौर पर पेश किया।

हिन्दू और मुसलमान इन दोनों सम्प्रदायों के बीच साम्प्रदायिकता के प्रसार में विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विकृत इतिहास को विशेष तौर पर जिम्मेदार माना जाता है। गाँधी जी ने कहा था कि जब तक हमारे विद्यालयों में विकृत इतिहास पढ़ाया जाता रहेगा तब तक हम स्थायी रूप से साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित नहीं कर सकते। कानपुर दंगों की जाँच समिति रिपोर्ट (1932) में भी कहा गया कि पुस्तकों में सम्प्रदायवादी दृष्टि दोनों समुदायों के बीच दरार पैदा करने में अहम भूमिका निभा रही है।

इन ऐतिहासिक भ्रान्तियों तथा दुष्प्रचारों के अतिरिक्त साहित्यिक साधनों तथा सार्वजनिक भाषणों ने इतिहास के सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। किन्तु भारत और पाकिस्तान के बुद्धिजीवी वर्ग के बीच 1947 ई0 के बाद ही सम्प्रदायवादी शक्तियों ने अपनी जगह बनायी क्योंकि स्वतंत्रता के पहले इस वर्ग पर धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादी प्रभाव काम कर रहा था। राजनीतिक नेताओं ने खुलेआम इतिहास को सम्प्रदायवादी रंग में रंगा और विद्यालयों में पढ़ायी जाने वाली पाठ्यपुस्तकों और लोकप्रिय-लेखन आदि में इनकी झलक मिलती है।

4.3 सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण का आधार

भारतीय सम्प्रदायवादी इतिहासकारों ने अपने तर्कों के लिए मध्यकालीन भारत के उपनिवेशवादी इतिहास लेखन और पाठ्यपुस्तकों को ही आधार बनाया। भारतीय सम्प्रदायवादी इतिहासकारों ने ब्रिटिश इतिहासकारों और प्रशासकों के लेखन के आधार पर ही अपनी धारणा विकसित की। भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी विचारधारा के विकास के प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं-

4:3.1 अँग्रेजों की नीति- आधुनिक भारतीय इतिहास-लेखन में साम्प्रदायिक दृष्टिकोंण के विकास में अंग्रेजो की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति विशेष रूप से जिम्मेदार थी। 1820 के दशक के अन्त तक आते-आते अंग्रेज शासकों ने यह भलींभाँति जान लिया था कि भारत पर बलपूर्वक वे बहुत दिनों तक शासन नहीं कर सकते। इसलिए उन्होनें 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनायी। उन्होने क्षेत्रीय, भाषायी तथा जातिगत आधार पर भारतीयों को बाँटने का प्रयत्न किया, परन्तु उनका सबसे ज्यादा जोर धार्मिक ध्रुवीकरण पर रहा। अपने विदेशीमूल को जायज ठहराने के लिए उन्होनें यह जायज ठहराने की कोशिश की कि भारत पर हमेशा विदेशियों का शासन रहा है। उन्होनें यह साबित करने की कोशिश की कि मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं को सताया, प्रताड़ित किया और तरह-तरह की यातनाएँ दी और अंग्रेजों ने उनसे मुक्ति दिलायी। उन्होनें यह भी साबित करने की कोशिश की कि हिन्दू और मुसलमान हमेशा से आपस में लड़ते-झगड़ते रहे हैं।

मध्यकालीन भारत के एक प्रमुख इतिहासकार एच0 एम0 एलियट ने 1849 में 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स' की प्रस्तावना में लिखता है कि "हिन्दू और मुसलमानों में हमेशा शत्रुता बनी रही, विरोध करने पर मुसलमानों ने हिन्दुओं की गर्दन उतार ली, वे शोभायात्रा नहीं निकाल सकते थे, पूजा-अर्चना नहीं कर सकते थे, उनकी मूर्तियों को अपमानित किया गया, मन्दिर उजाड़ दिये गये, जबरन उनका धर्मान्तरण तथा विवाह किया गया, उन्हें तरह-तरह से दण्डित किया गया, जनसंहार तथा हत्याएँ की गयी और शासकों ने क्रूरता का नंगा-नाच खेला"। एलियट आगे लिखता है कि इस इतिहास का उद्देश्य प्रजा को यह बताना है कि हमारा शासन पहले के शासन की अपेक्षा कितना उदार और समतावादी है।

यहाँ पर एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि मोहम्मद अली जिन्ना और बी0 डी0 सावरकर ने पहली बार 1937 में द्विराष्ट्र के सिद्धान्त को सामने नहीं रखा जिसके कारण देश का विभाजन हुआ। इसके बहुत पहले अंग्रेज लेखकों

ने यह धारणा बना दी थी कि भारतीय राष्ट्र का मतलब है हिन्दू राष्ट्र और तुर्की, अफगान और मुगल शासकों का शासन विदेशी शासन था, जबकि राजपूत राजाओं और मराठा सरदारों का शासन हिन्दू शासन था। इसलिए हम कह सकते हैं कि इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' नीति का एक हिस्सा थी।

4:3.2 मध्यकालीन विवरण और तथ्यों का सम्प्रदायवादी स्वरूप - भारतीय इतिहास लेखन के सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण का एक कारण यह भी था कि मध्यकाल का इतिहास लिखने के लिए इतिहासकारों के सामने जो मध्यकालीन विवरण और तथ्य थे वे भी सम्प्रदायवादी थे। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत को लिखने में ब्राह्मणों की प्रमुख भूमिका थी जो राजाओं और सामन्तों के संरक्षण में जीवनयापन करते थे तथा धार्मिक परिप्रेक्ष्य में ही सभी घटनाओं की व्याख्या करते थे, क्योंकि इसमें उनका स्वार्थ निहित था। खूनी लड़ाई, दरबारों के षड़यंत्र, रोजमर्रा की राजनीति और प्रशासनिक नीतियों को भी धार्मिक जामा पहनाया जाता था, दूसरों को पराजित करना या अपने राज्य को विस्तारित करने के लिए होने वाली आपसी लड़ाइयों को धार्मिक प्रेरणा और निष्ठा से जोड़ा जाता था। ऐसा नहीं है कि केवल भारत में ही इस प्रकार का लेखन हुआ था। यूरोप के मध्यकालीन इतिहास-लेखक भी इसी तर्क पर इतिहास लिखते थे।

4:3.3 इतिवृत्तों की धार्मिक दृष्टि को मान्यता- दुर्भाग्यवश उपनिवेशवादी और कुछ भारतीय इतिहासकारों ने प्राचीन और मध्यकालीन इतिवृत्तों के लेखकों के धार्मिक दृष्टि को अपने लेखन में शामिल कर लिया और इस प्रकार भारतीय इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या को हवा दी। उदाहरण के लिए आज भी हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायवादी इतिहासकार महमूद गजवनी के आक्रमण को धर्म से प्रेरित मानते हैं और बताते हैं कि इसका सम्बन्ध इस्लाम के स्वरूप और प्रकृति से है। इसी प्रकार वे मध्यकालीन भारत में राणा प्रताप और अकबर या शिवाजी और औरंगजेब के बीच होने वाले राजनीतिक युद्धों को धर्म पर आधारित

और प्रेरित मानते हैं। इसके अलावा प्राचीन और मध्यकाल के साहित्यिक स्रोत मुख्य रूप से राजाओं, राजदरबारों और उच्चजातियों के कारनामों का वर्णन करते हैं न कि पूरे समाज का। शासकीय वर्गों के सैन्य और कूटनीतिक कार्यवाहियों को भी धार्मिक चश्मे से देखने की कोशिश की जाती थी। युद्ध और सन्धि के समय कई कारक कार्यशील होते थे। मूल मुद्दा तह के भीतर होता था। वैवाहिक बन्धनों, भाषा, जाति, क्षेत्र के साथ –साथ धर्म को भी औजार के रूप में प्रयोग किया जाता था। परन्तु मुख्य मुद्दा और स्वार्थ, आर्थिक और राजनीतिक होता था। आज भी राष्ट्र अपने स्वार्थों पर नेकनीयति का मुलम्मा चढ़ाते हैं, अन्तर यही है कि यदि कोई इतिहासकार किसी सरकारी कथन को हूबहू स्वीकार कर लेता है तो इतिहासकारों का समाज उनकी खिल्ली उड़ाता है। परन्तु कई इतिहासकारों ने अतीत के शासकों के सरकारी बयानों और इतिवृत्तों और आख्यानों को स्वीकार किया है।

4:3.4 मध्यकालीन इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या- उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने मध्यकालीन राजनीति को सम्प्रदायवादी रंग में रंगा और यह दिखाया कि अतीत में राजनीति धर्म से प्रेरित थी। और ऐतिहासिक किवदंतिओं और कथाओं व मिथकों को सम्प्रदायवादी राजनीति का आधार बनाया। इसी प्रकार सम्प्रदायवादी लेखकों ने भी इन कारकों को अपने लेखन का आधार बनाया। इसलिए हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्प्रदायवादियों ने अतीत की व्याख्या के जरिये अपने समकालीन अनुयायियों के बीच डर, असुरक्षा और कट्टरता का माहौल बनाने का प्रयास किया। इस प्रकार सम्प्रदायवादी इतिहास, साम्प्रदायिकता को जन्म भी दिया और उसे हवा भी दी। दूसरी ओर सम्प्रदायवादी राजनीति ने सम्प्रदायवादी लेखन और उसके प्रचार-प्रसार के लिए आधार निर्मित किया। कहने का तात्पर्य यह है कि मध्यकाल का इतिहास जिस तरह लिख गया वैसा था नहीं, या फिर मध्यकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया ने साम्प्रदायिकता को जन्म नहीं दिया बल्कि इतिहास को सम्प्रदायवादी रूप में व्याख्यायित किया गया, उससे साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ।

4:4. भारतीय इतिहास के सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के आधारभूत तत्व

भारतीय इतिहास लेखन का सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण कुछ आधारभूत तत्वों/अवधारणाओं पर आधारित था जिनकी विस्तारपूर्वक चर्चा नीचे की पंक्तियों में की जा रही है :-

4:4.1- हिन्दुओं और मुसलमानों के परस्पर विरोधी समुदायों की अवधारणा– सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के अनुसार मध्ययुगीन भारतीय इतिहास, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का इतिहास रहा है। हिन्दू और मुसलमान हमेशा से दो विरोधी गुटों में बँटे रहे जिनके बीच दुश्मनी, वैमनस्य, ईर्ष्या और शुत्रता का भाव रहा है। हिन्दु और मुस्लिम संस्कृतियाँ बिल्कुल अलग और विशिष्ट थीं। सन् 1957 में आर0 सी0 मजूमदार ने लिखा कि मध्यकालीन भारत दो शक्तिशाली इकाइयों में विभाजित रहा। इसी प्रकार 1950 के दशक में इश्तियाक अहमद कुरैशी ने लिखा कि इस प्रायद्वीप के मुसलमान स्थानीय जनता के साथ घुलमिल न सके।

सम्प्रदायवादी राजनीतिक नेताओं ने इन दृष्टिकोणों को और भी विषाक्त बनाकर प्रस्तुत किया। मार्च 1940में मुस्लिम लीग के लाहौर सत्र में अध्यक्षीय भाषण देते हुए मुहम्मद अली जिन्ना ने कहा कि "1200 साल के इतिहास में एकता कायम न हो सकी, और सदियों से भारत हिन्दू भारत और मुस्लिम भारत मे विभाजित रहा। 1923 में बी0 डी0 सावरकर ने अपने हिन्दुत्व में लिखा कि जिस दिन महमूद गजवनी ने सिन्धु को पार किया उसी दिन से जीवन और मृत्यु का संघर्ष शुरू हो गया जिसका अन्त अब्दाली के साथ हुआ। इस संघर्ष में सभी पंथों, क्षेत्रों और जातियों के हिन्दू प्रभावित हुए"। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य साम्प्रदायिक विचार को एक आधार प्रदान करना था, जिसके अनुसार हिन्दू और मुसलमानों में हमेशा से शत्रुता का भाव रहा है। एम0 एस0 गोलवरकर ने राष्ट्रवादियों के उस विचार का विरोध किया जिसमें उन्होनें हिन्दुओं को हमारे पुराने आक्रमणकारियों और दुश्मनों के साथ खड़ा करने की कोशिश की और उन्हें भारतीय कहकर पुकारा"। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने इस विचाराधारा को तुरन्त स्वीकार किया और इसे प्रचारित किया तथा अपना द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त इसी पर आधारित किया।

सम्प्रदायवादी इतिहासकारों ने मध्ययुगीन समाज के राजपूत और मराठा सरदारों या अफगानों और तुर्कों के राजनीतिक संघर्ष या किसी भी प्रकार के जातिगत संघर्ष को पूरी तरह नजरअंदाज किया। हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने स्थापित किया कि इस्लाम भारत के लिए विदेशी धर्म है और जो भी इस धर्म का अनुयायी है वह विदेशी है। एम0 एस0 गोलवरकर ने मुसलमानों को विदेशी कहकर सम्बोधित किया, जिन्होनें भारत को कभी भी घर नहीं सराय माना। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने भी इस विचारधारा को स्वीकार किया कि मुसलमान भारत में स्थायी रूप से विदेशी के रूप में रहते आये हैं, हालांकि उनके कहने का अन्दाज कुछ अलग था। उन्होनें मुसलमानों को हिन्दुओं से बिल्कुल अलग दिखाने के लिए इस विदेशी सूत्र का इस्तेमाल किया। उदाहरण के लिए मुहम्मद अली जिन्ना ने 1941 में इस बात पर जोर दिया कि ''जब कोई इस्लाम धर्म अपनाता है तो वह उसके हजारों वर्ष पूर्व के इतिहास से जुड़ जाता है। वह बिल्कुल दूसरे खेमे में चला जाता है, वह धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक अलग और विशिष्ट शख्सियत बन जाता है। इसी प्रकार मुस्लिम लीग के एक नेता ममदोत के नबाब ने 1941 ई0 में कहा था कि ''भारत में लगभग 12वीं शताब्दी से पाकिस्तान मौजूद है''।

हिन्दू तथा मुसलमान सम्प्रदायवादियों ने ऐतिहासिक शत्रुता के सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हुए कहा कि हिन्दु और मुसलमान दोनों अलग-अलग राष्ट्र हैं। 1937के बाद मुसलमान सम्प्रदायवादियों ने यह माँग किया कि दो राष्ट्र एक साथ नहीं रह सकते और आजादी के बाद मुसलमानों को एक अलग राष्ट्र यानि पाकिस्तान चाहिए। दूसरी ओर हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने 1937 के बाद एक ऐसे हिन्दू राष्ट्र के निर्माण की बात की जिसमें मुसलमानों की स्थिति दोयम दर्जे की होनी थी।

4:4.2 मध्यकालीन भारत में मुसलमानों को शासक के रूप में देखने की दृष्टि-सम्प्रदायवादी विचारधारा में प्रमुखतः इस बात पर बल दिया जाता है कि मध्यकालीन भारत में मुसलमान शासक वर्ग था और हिन्दू शासित, मुसलमान राजा

ने इस औपनिवेशिक धारणा को पूरा-पूरा अपना लिया और इसका प्रचार किया कि मुसलमान शासक और उनकी ओर से मुसलमानों से हिन्दुओं के साथ घोर अत्याचार किया, उनके मन्दिरों को तोड़ा गया तथा जोर जबरदस्ती करके इस्लाम को फैलाया गया ।

1939 में प्रकाशित एम0 एस0 गोलवलकर की पुस्तक ''वी0 आर0 आवर नेशनलहुड डिफाइन्ड'' में इन बातों की विस्तार से चर्चा की गयी है। इस्लाम के बारे में कई गलत धारणाओं में से एक गलत धारणा यह है जो वैमनस्य और कटुता का सबसे बड़ा कारण बनी हुयी थी, ''मुसलमान धर्मांध और असहिष्णु होता है। इस्लाम का प्रसार तलवार के साये में हुआ है''- इस सिद्धान्त को इतने व्यापक पैमाने पर और लगातार फैलाया गया कि आम भारतीय नागरिक इस धर्म के बारे में ऐसा ही सोचता है।

मुस्लिम सम्प्रदायवादियों, मध्यकालीन मुस्लिम शासकों, सामन्तों, खासतौर पर औरंगजेब जैसे शासकों, उनकी धर्मांधता, जजिया और मन्दिरों को ध्वस्त करने जैसे कार्यों को सही बताया। उनमें से बहुतों ने औरंगजेब को भारत में दार-अल इस्लाम का निर्माता बताया। दूसरी ओर उन्होनें इस्लाम को कमजोर करने के लिए अकबर की निन्दा की। हिन्दू सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित था कि प्राचीनकाल में हिन्दू समाज और संस्कृति, भारतीय सभ्यता अपने उत्कर्ष पर थी और मुसलमानों के आक्रमण और आधिपत्य के परिणामस्वरूप मध्यकाल में इसका पतन हो गया। इस महानता और उत्कर्ष को साबित करने के लिए प्राचीन युग का महिमागान किया गया और इसे पवित्र माना गया। दूसरी हिन्दू सम्प्रदायवादी मान्यता है कि 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा 18वीं शताब्दी में हिन्दू पुनर्जागरण हुआ। मराठों ने शिवाजी के नेतृत्व में विद्रोह किया और पेशवाओं के नेतृत्व में मराठा साम्राज्य की स्थापना की गयी। इसी प्रकार कई राजपूत राजाओं ने औरंगजेब के खिलाफ बगावत की जिसे मुस्लिम वर्चस्व के खिलाफ हिन्दू विद्रोह कहा गया और यह बताया गया कि हिन्दुओं ने अपने सम्मान और गौरव की रक्षा करने के लिए

था और हिन्दू प्रजा। इसलिए सभी मुसलमान चाहे वे गाँव में रहते हों या शहर में, चाहे वे अमीर हो या गरीब, किसान हो या सैनिक सभी को शासक के रूप में चित्रित किया गया। जबकि राजाओं, सरदारों, सामन्तों, जमींदारों और बड़े हिन्दू पदाधिकारियों को शासित के रूप में चित्रित किया गया। इसलिए 1941 ई0 में लाहौर में विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए मुहम्मद अली जिन्ना ने कहा था कि'' हम हिन्दुओं से कुछ नहीं माँग रहे, क्योंकि हिन्दुओं का कभी भी पूरे भारत पर अधिकार नहीं रहा। बल्कि मुसलमानों ने भारत पर 700वर्षों तक शासन किया, अंग्रेजों ने मुसलमानों से सत्ता हथियायी। हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने स्वाभाविक तौर पर यह स्वीकार किया कि मुस्लिम शासन के दौरान हिन्दू दास का जीवन व्यतीत कर रहे थे। उदाहरण के लिए 1937 ई0 में वी0 डी0 सावरकर ने लिखा कि ''भारत में मुसलमान शासकों का शासन हिन्दू राष्ट्र के लिए मौत का पैगाम था''।

मध्यकालीन भारत में मुसलमानों को शासक के रूप में देखने की दृष्टि की विचारधारा के क्रम में एक बात कही जाती है कि भारतीय राज्य की प्रकृति धर्म और खासतौर पर शासन के धर्म से निर्धारित होती रही है। कानपुर दंगा जाँच समिति की रिपोर्ट के अनुसार यह भी कहा जाता है कि मध्ययुगीन राज्य का मुख्य उद्देश्य इस्लाम का प्रचार-प्रसार करना था और इसका प्रमुख कारण राज्य की प्रकृति थी जिसके शासक मुसलमान थे, दूसरी ओर हिन्दू धर्म की रक्षा करने वाले मराठा साम्राज्य और मराठा सरदारों, राजपूत राजाओं और जाट जमीदारों के स्वायत्त राज्यों को हिन्दू राज्य कहा गया। इसी प्रकार सम्प्रदायवादियों ने उन हिन्दू या मुसलमान राजाओं की निन्दा की और बुरा शासक कहा जिन्होनें सम्प्रदायवाद का रास्ता नहीं अख्तियार किया।

सम्प्रदायवादियों ने संस्कृति की धर्म आधारित परिभाषा को आधार बनाया और उसमें उच्च वर्गो के धर्म को ही आधार बनाया गया। यह माना गया कि चूँकि हिन्दू धर्म और इस्लाम की परिभाषाएँ अलग-अलग थीं, उनके बीच न तो कोई साझा सांस्कृतिक आधार था न ही उनके बीच परस्पर सम्बन्ध। हिन्दू सम्प्रदायवादियों

संघर्ष किया। बी0. डी0 सावरकर ने 1913 में लिखा कि "18वीं शताब्दी के दौरान मराठा संघर्ष राष्ट्रीय मुक्ति का महान आन्दोलन था।"

मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने भी इस्लाम का स्वर्णयुग कायम किया तथा अपने स्वर्ण युग अर्थात मध्य युग के अरबी या तुर्की उपलब्धियों का दामन पकड़ा। मध्ययुगीन पश्चिम एशियाई इतिहास की सांस्कृतिक उपलब्धियों और नायकों की अँगुली पकड़ी और भारतीयता की अपेक्षा अपने मुसलमान होने पर बल दिया। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने भी मुसलमानों के उत्थान और पतन की परिभाषा प्रस्तुत की। उनके अनुसार ब्रिटिश शासनकाल में हिन्दुओं का उत्थान और मुसलमानों का पतन हुआ। एक समुदाय के रूप में हुआ क्योंकि उनके हाथ से सत्ता छिन गयी थी। अल्ताफ हुसैन अली इसे मुस्लिम-विषाद का समय मानते हैं। इस विचारधार का खूब दुष्प्रचार हुआ और मुस्लिम लीग के नेताओं ने पाकिस्तान के माँग के समर्थन में इसका राजनीतिक उपयोग किया।

4.5 सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन की आलोचना

यदि इतिहास का अध्ययन व्यापक रूप में किया जाय तो फिर साम्प्रदायिक दृष्टि के लिए कोई स्थान नहीं रह जायेगा। उदाहरण के लिए आर्थिक इतिहास के अध्ययन में एक हिन्दू किसान, एक मुसलमान किसान के ज्यादा करीब होगा, बजाय एक हिन्दू जमींदार या महाजन के। आगरा में रहने वाला एक मुसलमान बुनकर सामन्त या बदशाह की अपेक्षा एक सामान्य हिन्दू बुनकर के ज्यादा करीब होगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि सुल्तानों या मुगलों के शासन में सभी मुसलमान शासक वर्ग और सभी हिन्दू शासित वर्ग में शामिल नहीं थे। हिन्दू जनता की तरह मुसलमान जनता भी गरीब और शोषित थी। अतः प्राचीन या मध्यकालीन राज्यों को हिन्दू या मुसलमान करार देना गलत है। सामाजिक या साँस्कृतिक इतिहास यह बताते हैं कि प्राचीन या मध्यकालीन भारत में सांस्कृतिक सहयोग और सौहार्द्र का परिवेश कायम था और एक सामाजिक संस्कृति का उदय हुआ था। इससे यह भी

पता चलता है कि आधुनिक काल के समान ही मध्य काल में उच्च वर्ग के मुसलमान सांस्कृतिक रूप से निम्न वर्ग के मुसलमानों की अपेक्षा उच्च वर्ग के हिन्दुओं के ज्यादा करीब थे। राजनैतिक इतिहास का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने से पता चलता है कि न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनिया में राजनीति धर्म से नहीं बल्कि आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थों से परिचालित होती है। आज ही की तरह शासक और बागी दोनों अपने भौतिक हितों और महत्वाकांक्षाओं को छिपाने के लिए इसे धार्मिक रंग दे देते हैं महत्वपूर्ण बात यह है कि राजनीतिक घटनाओं और आन्दोलनो को उनके बुनियादी, सामाजिक और आर्थिक माहौल में देखना चाहिए।

4.6 बोध-प्रश्न

1- इतिहास-लेखन में सम्प्रदायवाद से आप क्या समझते हैं? भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी चेतना का प्रसार कैसे हुआ।

2- इतिहास-लेखन में सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के आधारभूत तत्वों का वर्णन कीजिए।

3- भारतीय इतिहास-लेखन में हिन्दू तथा मुस्लिम सम्प्रदायवादी विचारधाराओं की समीक्षा कीजिए ।

4.7 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास एवं इतिहास लेखन के विविध आयाम : डा0 एस0 के0 राय तथा अन्य।

2- इतिहास चिन्तन- शैफाली चटर्जी

3- आधुनिक भारत का इतिहास- आर0 एल0 शुक्ला

इकाई -5

सबआर्ल्टन इतिहास

इकाई की रूपरेखा-

5:0 उद्देश्य

5:1 प्रस्तावना

5:2 सबाल्टर्न इतिहास-लेखन : सामान्य परिचय

5:3 प्रमुख इतिहास-चिंतक

5:4 सबाल्टर्न इतिहास-लेखन की विषय वस्तु

5:5 सबाल्टर्न इतिहास की मूल अवधारणायें

5:5.1 परम्परागत इतिहास में दलितों की अनुपस्थिति

5:5.2 दलित एवं कुलीन वर्ग में समाज का विभाजन

5:5.3 दलितों की चेतना एवं मानसिकता का अध्ययन

5:5.4 मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आलोचना

5:5.5 ज्ञान शक्ति को मान्यता

5:6 सबाल्टर्न विचारधारा की आलोचना

5:7 बोध-प्रश्न

5:8 संदर्भ-ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेगें कि-

- राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का क्या अभिप्राय है?
- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की शुरूआत कैसे हुई?
- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का विषय-क्षेत्र क्या है?
- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन के गुण और दोष क्या हैं?

5.1 प्रस्तावना

इतिहास की विषयवस्तु तथा इतिहासकार का दृष्टिकोण सैद्धान्तिक तौर पर दो अलग-अलग बातें हैं। इतिहास की विषयवस्तु का सम्बन्ध समाज के किसी पहलू से हो सकता है जिसे कोई इतिहासकार अध्ययन के लिए चुनता है। जबकि इतिहासकार के दृष्टिकोण का सम्बन्ध उन अवधारणाओं और सिद्धान्तों से होता है जो इतिहासकार की समाज की समझ को निर्धारित कर रहे हों, तथा उनके अध्ययन पर अपना प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से डाल रहे हों। इतिहास-लेखन की विभिन्न अवधारणाएँ तथा सिद्धान्त इतिहास के विविध स्वरूप का निर्धारण करते रहे हैं। भारतीय स्वतंत्रता के परवर्ती काल में इतिहास लेखन के क्षेत्र में दो महत्वपूर्ण धाराएँ प्रगट हुईं, जिनमें से एक नवसाम्राज्यवादी धारा है तथा जिसे कैम्ब्रिज स्कूल के नाम से जाना जाता है और दूसरी धारा 'उपाश्रयी धारा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसे ''निम्नवर्गीय प्रसंग'' तथा ''सबआल्र्टन अध्ययन'' के नाम से भी पुकारा जाता है। इस विचारधारा में पहले के समस्त इतिहास-लेखन को अभिजनवादी इतिहास लेखन कहकर रद्द कर दिया गया तथा आमजन को केन्द्र बनाकर एक ऐसा इतिहास लिखने की घोषणा की गयी जिसे जनता के नजरिए से लिखा जाना था। हाशिये पर खड़े समूह और व्यक्तियों के जीवन में झाँककर देखना, नये स्रोतों की खोज करना, उनकी पुनर्व्याख्या करना, इसकी प्रमुख विशेषता है। इस इकाई में उक्त सभी

किया गया है जिनके स्थान व भूमिका को तथाकथित अभिजनवादी इतिहास लेखन ने अनदेखा कर रखा था। यद्यपि अभी तक 'सबाल्टर्न' शब्द की सर्वमान्य हिन्दी संज्ञा स्थापित नहीं हो पायी है। परन्तु इस विचारधारा की समानता यूरोपीय इतिहास की विचारधारा 'आम आदमी का इतिहास' (Plebian History) अथवा 'निम्न वर्गो का इतिहास' (History from below) के साथ स्थापित की जा सकती है।

5.3 प्रमुख इतिहास-चिन्तक

'निम्नवर्गीय प्रसंग' के नाम से भी पुकारी जाने वाली इतिहास लेखन की इस विशिष्ट एवं तीक्ष्ण रूप में विवादास्पद धारा को पश्चिमी जगत में जार्ज रूड, जाजेन्स लेफेवर, ई.जे. हाब्स बाम और ई. पी. थामसन जैसे इतिहासकारों ने लोकप्रिय बनाया। भारत में 'उपाश्रयी इतिहास-लेखन' ८० के दशक में उस समय सैद्धान्तिक रूप में सामने आया जब रंजीत गुहा नामक विद्वान ने ''सब आल्टर्न स्टडीज'' नाम से एक ग्रन्थ शृंखला की शुरूआत की । अब तक इसके तहत बतौर परियोजना 11खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। जहाँ तक भारत में इस विचारधारा के समर्थक विद्वानों की बात है इसमें प्रमुखतया रंजीत गुहा, पार्थ चटर्जी, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, शाहिद अमीन, दीपेश चक्रवर्ती, अशोक सेन, गायत्री चक्रवर्ती, डेविड हार्डीमेन, डेविड आर्नाल्ड, स्टीफेन हैनिंग्घम, गौतम भद्र, स्वप्नदास गुप्ता आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होनें अंग्रेजी शासन के परिप्रेक्ष्य में भारत के लोगों की स्थिति के सम्बन्ध में चिन्तन पर विशेष ध्यान दिया। इस दिशा में उन्होनें समाज के उन उपेक्षित और निर्धन वर्ग की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया जिसे दलित वर्ग के नाम से जाना जाता था और जिसे समाज में कोई महत्व प्राप्त नहीं था। उन्होने न केवल जनसाधारण गरीब किसान, चरवाहे, मजदूरों और स्त्री-समाज का वर्णन किया अपितु उनके विचारों तक पहुँचने का प्रयास किया।

संदर्भों में ''सबआर्ल्टन इतिहास'' की अवधारणा को समझाने का प्रयास किया गया है।

5.2 सब आर्ल्टन इतिहास लेखन : सामान्य परिचय

सब आर्ल्टन आधुनिक इतिहास लेखन की सर्वथा नवीन विचारधारा है जिसका जन्म अमेरिका में हुआ था, जबकि सब आर्ल्टन (Sub Aultarn) शब्द का प्रथमतः प्रयोग इटली के मार्क्सवादी चिन्तक एन्टोनियों ग्राम्सी ने 'दलित व उत्पीड़ित वर्ग' के लिए किया था। रंजीत गुहा के अनुसार इतिहास के संदर्भ में इसका अभिप्राय वर्ग, जाति, वय, लिंग तथा पद या अन्य किसी प्रकार की अधीनता की स्थिति से है तथा इस विचारधारा का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों, किसानों, मजदूरों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों, सुविधा व अधिकारों से वंचित जनों या विस्थापितों, शरणार्थियों, निर्वासितों के प्रच्छन्न या दबाकर रखे गये विवरणों को प्रस्तुत करना है। रणजीत दास गुप्ता का कहना है कि 'सबाल्टर्न' शब्द का अभिप्राय केवल कृषक वर्ग या निर्धन श्रमिकों या जन सामान्य से नहीं है, बल्कि ऐसी अवधारणा है जिसमें प्रभुत्व व अधीनता के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध अन्तर्निहित हैं। प्रो0 एस0 पी0 पाँथरी की दृष्टि में ''सबाल्टर्न'' इतिहासकारों का प्रयास अथवा दावा एक नये प्रकार की इतिहास-रचना का है जो अभिजन के दायरे से बाहर निकलकर निम्नजन की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को भी परखे और इसके साथ ही अभिजन तथा निम्नजन की प्रक्रियाओं को दो अलग पटरियों पर न ढकेलकर इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध, आश्रय तथा द्वन्द्व के आधार पर औपनिवेशिक काल की समझ को सुस्पष्ट करे''। अतः इतिहास लेखन के दोनों पहलू महत्वपूर्ण हैं।

इतिहास लेखन की 'सब आर्ल्टन' विचारधारा ने आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन को नया विश्लेषणात्मक स्थान प्रदान किया। 'सबाल्टर्न स्टडीज' नामक इस धारा में उन समूहों की चेतना, राजनीति तथा गतिविधियों को केन्द्रीय महत्व प्रदान

रूप में किया गया। इतिहासकारों ने इन्हें हमेशा अपने-2 रूझानों के अनुसार कभी आजादी की लड़ाई में तो कभी समाजवाद की लड़ाई में एक मोहरा मानकर इतिहास लेखन किया है, जबकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बड़े-2 विद्रोहो या क्रान्तिकारी परिवर्तनों में इन्होनें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किन्तु जब भी ऐसे विद्रोहों की चर्चा की जाती है तो उन्हें किसी बड़े नेता या संगठन के इशारे पर चलने वाले अन्य लोगों या आदि के रूप में चित्रित कर दिया जाता है। कभी भी इनकी भूमिका का अध्ययन इनके नजरिये से नहीं किया जाता। इनकी मानसिक चेतना, सोच, विचार, आदि के बारे में पता लगाने का प्रयास नहीं किया, जबकि प्रायः ऐसा होता है कि विद्रोहों या क्रान्तियों में भाग लेने वाले लोगों की सोच इनके तथाकथित कुलीन अथवा उच्चवर्गीय और पढ़े लिखे नेताओं से पूरी तरह मेल नहीं खाती, बल्कि यह उनके अपने अनुभवों व नेताओं की जरूरतों पर आधरित होती है तथा उनकी सांस्कृतिक परम्पराओं से जुड़ी होती है। किन्तु इतिहास-लेखन में इन बातों को दरकिनार करते हुए इन्हें या तो बड़े विद्रोहों में समाहित कर देते हैं अथवा किसी बड़े नेता या सगठन के साथ जोड़ देते हैं और उनका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त कर देते हैं।

5:5.2 दलित एवं कुलीन वर्ग में समाज का विभाजन – इतिहास-लेखन की स्थापित परम्पराओं की कमियों से बचने के लिए सबाल्टर्न अध्ययन के प्रतिपादक रंजीत गुहा ने भारतीय समाज को कुलीनों एवं दलितों के विभाजन पर आधारित समाज के रूप में देखने का सुझाव दिया है। इसका कारण यह दर्शाया गया है कि पूँजीवादी परिणति से पहले तथा परिपक्व वर्ग-चेतना के उद्भव से पूर्व किसानों, मजदूरों तथा कबीलों इत्यादि को बिल्कुल अलग-अलग एवं अनन्य वर्गों के रूप में देखने के स्थान पर घनिष्ठ पारिवारिक सम्बन्धों तथा स्थानीय परस्परता एवं मिलीजुली लोकचेतना तथा एक जैसे अनुभव के आधार पर गहराई से जुड़े हुए दलित समुदायों के रूप में देखना अधिक उपयोगी है। वास्तव में इसी नजरिये के

5.4 सब आर्ल्टन इतिहास लेखन की विषय-वस्तु

यह इतिहास लेखन मुख्य रूप से मुगल काल, स्वतंत्रता आन्दोलन और इसके बाद की आधुनिक संस्कृति को खँगालता है और यह दावा करता है कि इतिहास लेखन के केन्द्र में केवल कुलीन साक्ष्य एवं कुलीनतावादी इतिहास ही नहीं है अपितु यह उत्तर-आधुनिक चिन्तन की तरह क्षेत्रीय चेतना को, किसानों को, मजदूरों को केन्द्र में रखकर इतिहास की व्याख्या करता है। सबआल्टर्न इतिहासकार मार्क्सवाद को तिलांजलि देकर एक नया इतिहास गढ़ रहे हैं। इन इतिहासकारों में प्रायः सभी भूतपूर्व मार्क्सवादी हैं। इन इतिहासकारों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दो पक्षों पर विचार किया हैः 1- उपनिवेशी भारत में कृषक प्रतिरोध तथा कृषक चेतना, 2- किसान समुदाय और राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच सम्बन्ध। इसके अतिरिक्त ये विद्वान औपनिवेशी भारत की राजधानी में दो अलग-अलग क्षेत्रों की बात करते हैंः 1-अभिजन क्षेत्र- इसमें वे अभिजन लोग आते हैं जो ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रदत्त अधिकारों और सुविधाओं के लिए संघर्षरत थे।2- उपाश्रित क्षेत्र इसमें वे नेतागण आते थे जो उपाश्रयी वर्ग या समूह के थे। इन दोनों क्षेत्रों का आपसी सम्बन्ध मूलतः शत्रुतापूर्ण था।

5.5 सब आर्ल्टन इतिहास लेखन की मूल अवधारणायें

इतिहास लेखन की इस अनन्य विचारधारा के सम्बन्ध में जानने योग्य प्रथम बात यह है कि इस विचारधारा के सभी इतिहासकारों में पूर्ण मतैक्य नहीं है। शेष नीचें की पंक्तियों में उक्त नजरिये की मूल अवधारणाओं की विवेचना की गयी हैः

5:5.1 इतिहास में दलितों की अनुपस्थिति- सबाल्टर्न विचारधारा के सभी लेखक इस बात पर जोर दे रहे हैं कि परम्परागत इतिहास लेखन में दलित जनता का इतिहास आज तक लिखा ही नहीं गया। यदि अंकित किया गया भी तो इन्हें उच्चवर्गीय नेताओं या संगठनों के इशारे पर चलने वाले पिछलग्गू या कठपुतली के

कारण इस तरह के इतिहास लेखन को सामूहिक रूप से सबाल्र्टन या अधीनस्थों या दलितों के अध्ययन का नाम भी मिला है। यद्यपि इस नाम विशेष से इसी परम्परा के सभी इतिहासकार स्वयं पूर्णतया संतुष्ट नहीं है। यह सच है कि आधुनिक भारत के इतिहास में दलितों के अध्ययन को यूरोप की तरह 'आम आदमी का इतिहास' (Plebian History) या निम्नवर्गों का इतिहास (History from below) भी कहा जा सकता था। परन्तु मोटे तौर पर ये सभी इतिहासकार मानते हैं कि ऐतिहासिक विश्लेषण में शोषण एवं प्रभुत्व की विषमताओं पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है (आधुनिक भारत का इतिहास लेखन, देवेश विजय)।

5:5.3 दलितों की चेतना एवं मानसिकता का अध्ययन- सबाल्र्टन सिद्धान्त के प्रतिपादकों का कहना है कि दलितों को पेट से सोचने वाले जाहिल लोगों के रूप में देखने के बजाय उनकी चेतना एवं मानसिकता को समझने पर इतिहासकारों द्वारा विशेष ध्यान दिया जाय। ये सभी गहराई से तभी समझे जा सकते हैं जब आम आदमी के नजरिये, उसकी सोच और उसकी आह की गूँज इतिहासकार समझ सकें और प्राथमिक स्रोतों के रचनात्मक अध्ययन द्वारा इतिहास के पृष्ठों में उसे उतार सके। लेकिन दलित समुदायों की चेतना और मानसिकता का वास्तविक रूप क्या है? उसकी बुनियादी समानतायें तथा समय एवं स्थान के अनुरूप आने वाली विविधायें क्या है? इन प्रश्नों पर 'सबआल्र्टन अध्ययन' में मतैक्य नहीं है। परन्तु इस बात पर काफी सहमति है कि दलितों की चेतना में शोषण के प्रति विरोध तथा कुलीनों के प्रभुत्व का आम हालातों मे विषम मिश्रण मौजूद रहते हैं।

एक अन्य समस्या दलितों की चेचना के अध्ययन विधि या शोध-पद्धति की है। अतीत के समाजों की चेतना एवं मानसिकता की कल्पना करना और वह भी उन शोषित अनपढ़ लोगों की मानसिकता की जो खुद कुछ लिखकर न छोड़ सके और जिनके बारे मे अक्सर सहानुभूतिविहीन कुलीनों द्वारा रचे गये स्रोतों से ही हमें कुछ जानकारी मिलती है। ऐसे वर्गों की सोच की आज कल्पना कर पाना तो शायद और

भी दुलर्भ होगा। परन्तु सबाल्टर्न के इतिहासकारों ने इसी चुनौती को अपने शोध का केन्द्र बिन्दु बनाया है। लेकिन इस महान उद्देश्य के लिए इन इतिहासकरों द्वारा अपनायी गयी शोध-पद्धति एवं शैली काफी विवादास्पद रही है। जो इतिहास शोषण और दमन की अनुभूति को अपना केन्द्र बिन्दु बनाना चाहता हो उसके पन्नों में शायद शब्दाडंम्बर, अतिशयोक्ति तथा क्लिष्टता की नहीं, बल्कि इन्सानों के पसीने और उनकी मिट्‌टी की सीधी और सच्ची छवि का झलकना ही अधिक स्वाभाविक लगेगा। परन्तु भारतीय इतिहास लेखन के तथाकथित कुलीन दृष्टिकोणों का परिहास करने वाले सबाल्टर्न इतिहासकारों ने शायद इस सरल से सत्य को आत्मसात नहीं किया है। यही कारण है कि सहायक स्रोतों के आधार पर विदेशों से ही भारतीय दलितों को समझने का उनका अपना दावा कुछ कम कुलीन नहीं प्रतीत होता।

5:5.4 मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आलोचना - सबाल्टर्न विचारधारा के इतिहासकारों ने मार्क्सवादियों के इस दृष्टिकोण की भी आलोचना की है कि समृद्ध लोगों के सहयोग के अभाव में किसी आन्दोलन का होना असम्भव होता है क्योकि उन्हें सिर्फ समृद्ध वर्ग ही प्रेरित कर सकता है। इन इतिहासकारों ने यह माना है कि औपनिवेशिक काल में भारतीय समाज में मुख्य अन्तर्विरोध अभिजातवर्ग (भारतीय एवं ब्रिटिश) तथा निचले स्तर की जनता के बीच था न कि उपनिवेशवाद और भारतीय जनता के बीच। इनके अनुसार साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को लेकर भारतीय जनता में कभी भी एकता कायम नहीं हुयी है और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जैसी चीज का कोई अस्तित्व नहीं था। इसके स्थान पर वे जोर देते हैं कि इस आन्दोलन में दो स्पष्ट धारायें थी-

1- निचले तबके की जनता का साम्राज्यवाद विरोधी वास्तविक संघर्ष।

2- अभिजन वर्ग का नकली राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन।

इनमें अभिजनवादी साम्राज्य का अन्त हुआ। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जो सत्ता पर कब्जा करने का प्रतिबिम्ब मात्र था। आर0 पी0 दत्ता ने 'इण्डिया टुडे' में काँग्रेस पर किसानों के शोषण का आरोप लगाया है। जबकि शाहिद अमीन अपनी पुस्तकों 'Gandhi Ji as Mahatma' और 'गोरखपुर जिला 1922' में किसान आन्दोलन को एक पूर्ण स्वायत्त आन्दोलन के रूप में वर्णित किया है।

5:5.5 ज्ञान-शक्ति को मान्यता- सबाल्र्टन की एक प्रमुख मान्यता यह रही है कि ज्ञान की ही शक्ति होती है। यह मान्यता रूडयार्ड किपलिंग के 'श्वेतों का बोझ' का ही पर्याय है। उनके अनुसार भारत पर अंग्रेजों का अधिपत्य उनके अपने ज्ञान-विज्ञान का ही विषय था, यद्यपि यह भावना इनके अन्दर व्याप्त एक अन्तर्विरोध जैसा है।

5.6 सबाल्टर्न विचारधारा की आलोचना

सबाल्टर्न अध्ययन की मूल अवधारणाओं की कई इतिहासकारों ने जोरदार आलोचना की है। इस सिलसिले में एक रोचक बात यह है कि ''सबाल्टर्न अध्ययन' से जुड़े हुए ज्यादातर इतिहासकार मार्क्सवादी विचारधारा से ही निकलकर आये हैं। स्वभावतः इनकी आलोचना में भी मार्क्सवादी इतिहासकारों का स्वर ही सबसे अधिक मुखरित रहा है। इस आलोचना को मुख्य आयामों का संक्षिप्त उल्लेख यहाँ आवश्यक होगा। यह आलोचना वास्तव में चार अलग-अलग मुद्दों पर केन्द्रित रही है-

1- दलित (Subaltern)

2- चेतना (Consciouness)

3- स्वायत्तता (Autonomy)

4- संगठन (Organisation)

'सबाल्टर्न अध्ययन' की आलोचना में कुछ इतिहासकारों का कहना है कि 'सबाल्र्टन' शब्द की अवधारणा ही मूलतः भ्रामक है। सबाल्टर्न इतिहासकार समाज

को 'कुलीन' तथा 'दलित' जैसे अस्पष्ट वर्गों में बाँटते हैं। ये शोषित किसानों, फैक्टरी मजदूरों, तथा जंगलों में रहने वाले कबीलों, महिलाओं, निचले दर्जे के सरकारी कर्मचारियों इत्यादि को तथा इनकी सोच तथा मानसिकता के स्वरूप को भी एक ही दायरे में रखकर देखना चाहते हैं, किन्तु समाज को आसानी से अलग किये जाने वाले 'कुलीन' तथा 'दलित' समूहों में बाँटकर शायद देखना सम्भव नहीं। परन्तु इस आलोचना को आलोचना के रूप में लेने के बजाय सबाल्टर्न अध्ययन के कुछ विचारकों ने अपने नजरिये को सही साबित करने के रूप में लिया है। उनका कहना है कि उन्होनें दलित से अभिप्राय प्रचलित अर्थ में किसी विशिष्ट समूह से लेने के बजाय मात्र एक बहुआयामी और बदलते हुए शक्ति सम्बन्ध से ही माना है जिसके सामाजिक और मानसिक आयामों को इतिहास के अलग-अलग चरणों में निरूपित करना ही 'सबाल्टर्न अध्ययन' का ध्येय समझा गया है।

सबाल्टर्न अध्ययन के विरूद्ध मार्क्सवादी दृष्टिकोण से ही दूसरी मुख्य आपत्ति यह उठायी गयी है कि इस परम्परा के इतिहासकारों ने दलितों के आर्थिक परिवेश के स्थान पर उनकी चेतना को अधिक महत्व देकर उस आदर्शवाद को फिर से स्थापित करने की चेष्टा की है जिसे मार्क्स अपने ऐतिहासिक विश्लेषण में पहले ही धाराशायी कर चुके थे। परन्तु शायद यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि चेतना और विचारों को ऐतिहासिक प्रक्रिया में प्राथमिकता देना एक बात है और यह मात्र उनकी ओर ध्यान देना और उन्हें भी ऐतिहासिक व्याख्या में शामिल करना दूसरी बात है। इस दूसरी बात से अधिकांश इतिहासकारों को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

'सबाल्टर्न अध्ययन' के खिलाफ एक बहुत ही महत्वपूर्ण आपत्ति यह उठायी गयी है कि इस अध्ययन से सम्बन्धित विचारकों ने न केवल दलितों की चेतना एवं मानसिकता के अध्ययन पर अधिक जोर दिया है बल्कि दलितों को एक स्वायत्त वर्ग के रूप में चित्रित किया है। कई विचारकों ने उक्त संदर्भ को समीचीन नहीं माना है। सौभाग्य से 'सबाल्टर्न अध्ययन' के ही कई सुविज्ञ अध्येताओं ने इस प्रवृत्ति की

सबाल्टर्न इतिहास-लेखन ने भारतीय इतिहास लेखन को नया विश्लेषणात्मक स्थान प्रदान करने का प्रयास किया। 'सबाल्टर्न स्टडीज' नामक इस धारा में उन समूहों की चेतना, राजनीति तथा गतिविधियों को केन्द्रीय महत्व प्रदान किया गया है, जिनके स्थान व भूमिका को तथाकथित अभिजनवादी इतिहास लेखन ने अनदेखा कर रखा था।

5.7 बोध-प्रश्न

1- सबाल्टर्न इतिहास की अवधारणा का विवेचन कीजिए।

2- सबाल्टर्न इतिहास से आप क्या समझते हैं। इस विचारधारा के प्रमुख इतिहासकार तथा उनके विचारों पर प्रकाश डालिए।

3- सबाल्टर्न इतिहास की विषयवस्तु क्या है? इतिहास लेखन की इस विचारधारा की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

5.8 संदर्भ-ग्रन्थ

1- Introduction of Subaltern Studies- Ranjit Guha

2- "आधुनिक भारत में इतिहास लेखन का पुनरावलोकन", आधुनिक भारत का इतिहासः आर0 एल0 शुक्ला।

3-उपाश्रयी (सबाल्टर्न) इतिहास-लेखन – प्रो0 शैलेन्द्र प्रसाद पाँथरी

स्वयं आलोचना की है और अपने लेखन में दलितों की चेतना के विद्रोही एवं संकीर्ण, सभी पहलुओं पर समुचित प्रकाश डाला है।

परन्तु दलित चेतना की 'स्वायत्तता' की बहस से अधिक महत्वपूर्ण शायद यह मुद्दा है कि इस चेतना का वास्तविक स्वरूप क्या है? और समय तथा स्थान के परिवर्तन के साथ इसमें क्या बदलाव आते रहे हैं इस मुद्दे को शायद 'सबाल्टर्न' अध्ययन का विशिष्ट उद्देश्य भी नहीं माना जा सकता है। वास्तव में इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर इतिहासकारों के बीच कोई खास मतैक्य नहीं है। एक ओर 'सबाल्टर्न अध्ययन' के प्रवक्ता रंजीत गुहा का रूझान दलितों की चेतना में छिपी कुछ सार्वभौमिक तथा शाश्वत प्रवृत्तियों तथा प्राथमिक पहलुओं (Elementary aspects) को खोज निकालने का दिखता है तो दूसरी ओर सुमति सरकार जैसे लेखकों ने दलितों की मानसिकता में समय और स्थान की विविधताओं के विश्लेषण पर अधिक जोर दिया है। छात्रों के लिए शायद यह महसूस करना मुश्किल न होगा कि इतिहास की दृष्टि से दूसरा प्रयत्न कहीं अधिक सार्थक तथा उपयोगी है। यद्यपि इस दिशा में दीर्घकालिक सामान्यीकरण अभी कुछ विशेष नहीं हो पाया है।

फिर भी 'सबाल्टर्न अध्ययन' के बारे में यह कहा जा सकता है कि इस प्रयोग से आधुनिक भारत के इतिहास लेखन में विचार की नयी गहमागहमी उत्पन्न हुयी है। इस परम्परा के बाहर के इतिहासकारों के साथ भी और इसके अपने रचनाकारों के बीच भी। हम जानते हैं कि 'सबाल्टर्न अध्ययन' से जुड़े हुए बहुत से इतिहासकार मार्क्सवादी विचारधारा से ही निकलकर आये हैं और इनके साथ आज भी इनका एक रोचक संवाद जारी है। इसी प्रकार सबाल्टर्न अध्ययन से जुड़े बहुत से इतिहासकार आज संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद, सामाजिक इतिहास जैसे कई नये ऐतिहासिक प्रयोगों की ओर उन्मुख हुए हैं जो कुछ समय से यूरोप के विचारजगत में प्रभावशाली बदलाव प्रस्तुत करते रहें हैं।

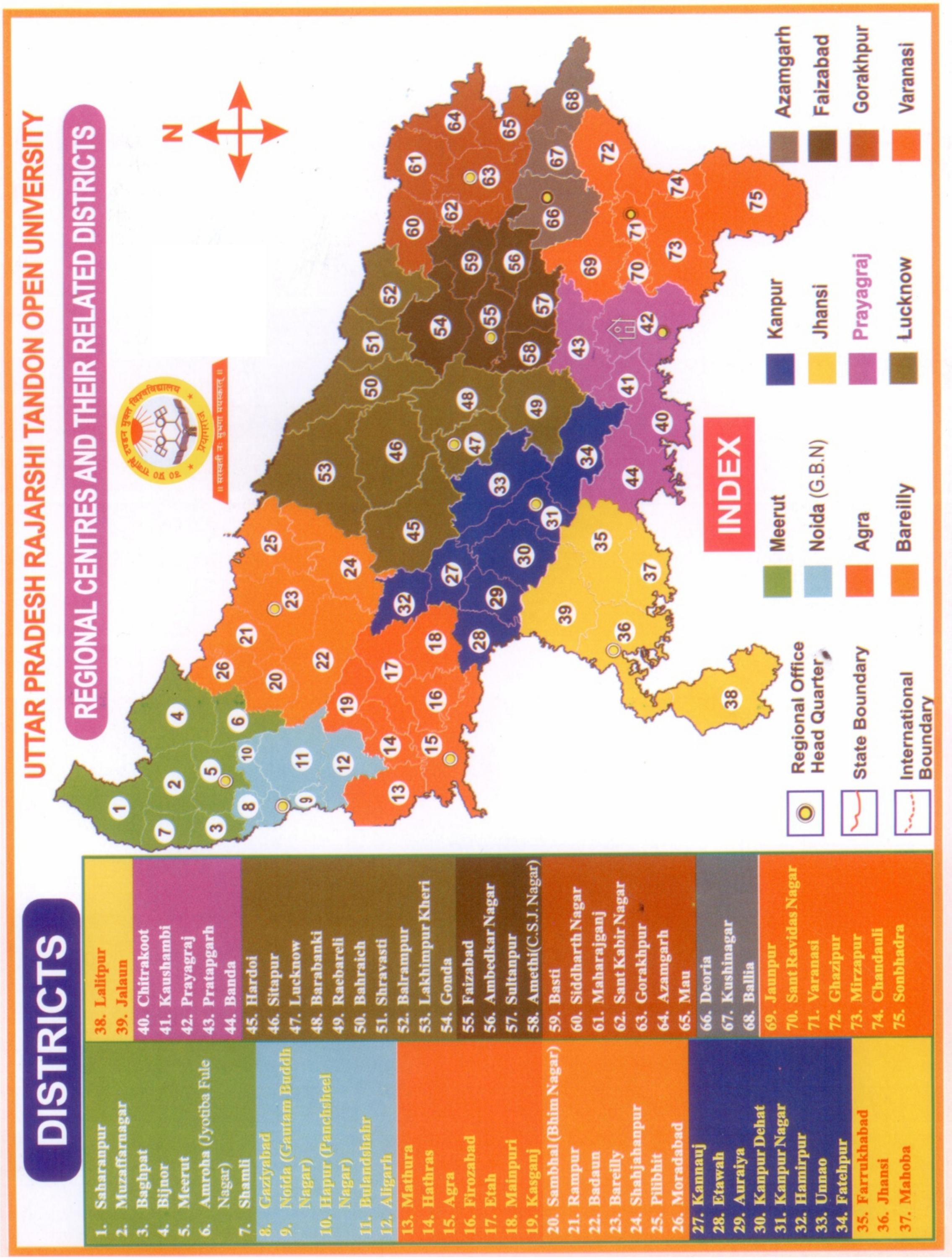

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333